शिशुपाल वधम् और किरातार्जुनीयम् के प्राकृतिक चित्रणों का समीक्षात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
पी0एच0डी0 (संस्कृत) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2005

निर्देशक
डॉ0 ओमकार मिश्र

प्रवक्ता संस्कृत विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा
सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

शोधार्थी आशीष कुमार सिंह
आशीष कुमार सिंह
आत्मज–श्री लाल बहादुर सिंह
खुरहण्ड, बाँदा (उ0प्र0)
फोन नं0– 05191–80418

अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा बाँदा

पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

निर्देशक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी पीएच0डी0 (संस्कृत) की उपाधि हेतु निर्धारित विषय – ***"शिशुपालवधम् और किरातार्जुनीयम् के प्राकृतिक चित्रणों का समीक्षात्मक अध्ययन"*** की आंशिक पूर्ति के रूप में शोधछात्र आशीष कुमार सिंह द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उनका मौलिक कार्य है जो मेरे निरीक्षण व निर्देशन में सम्पन्न हुआ। मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

निर्देशक

(डॉ0 ओमकार मिश्र)

प्रवक्ता संस्कृत विभाग

अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय अतर्रा (बांदा)

सम्बद्ध – बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

(उ0प्र0)

कृतज्ञता-ज्ञापन

जिन-जिन महानुभावों की कृतियों से मैं इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में लाभान्वित हुआ हूँ उनके प्रति मैं जिन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करूँ वे शब्द ढूँढ़े नहीं मिलते हैं। शब्दों के द्वारा कृतज्ञता- प्रकाशन एक प्रथामात्र है। वास्तविक कृतज्ञता ज्ञापन तो हृदय से होता है, अतः आप महानुभाव मेरी मूक पर सच्ची हार्दिक कृतज्ञता स्वीकार करें, यही मेरी विनम्र प्रार्थना है।

इस कृतज्ञता - ज्ञापन के प्रसंग पर मैं अपने निर्देशक डा० ओमकार मिश्र (प्रवक्ता संस्कृत विभाग) अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय अतर्रा (बांदा) को कभी नहीं भूल सकता, जिनके सहज सौजन्य से मुझे इस शोध प्रबन्ध के निर्माण का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी क्रम में मैं प्रो० राजाराम दीक्षित (विभागाध्यक्ष संस्कृत विभाग) अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय अतर्रा (बांदा) का आभार व्यक्त करता हूँ जिनके दिशानिर्देश तथा प्रोत्साहन के आधार पर मेरा रुझान पीएच०डी० (विद्यावारिधि) की उपाधि के प्रति लालायित हुआ और मैं आज इस पायदान पर पहुँचा।

अपने अकृत्रिम स्नेही माता- श्रीमती रोहिणी देवी, पिता- श्री लाल बहादुर सिंह (प्रधानाचार्य, अ०इ०का० कबरई, महोबा) के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशन करना मैं अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ, जिनके सौहार्द से मेरा सम्बन्ध शिक्षा के चरम बिन्दु से हुआ।

अंत में, शोध प्रबन्ध को मूर्तरूप देने के लिए प्रीती कम्प्यूटर्स, तेलियरगंज, इलाहाबाद के कर्णधार उमाशंकर पटेल भी बधाई के पात्र हैं, जिनके सहयोग से अल्प अवधि में यह शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो सका है।

आशीष कुमार सिंह

संकेत–सूची

1.	व0 जी0	वक्रोक्तिजीवितम्
2.	वि0 च0	विक्रमांकदेवचरितम्
3.	उ0 का0	उत्तरकाण्ड
4.	स0 क0	सरस्वती कण्ठाभरण
5.	सा0 द0	साहित्यदर्पण
6.	का0 प्र0	काव्य प्रकाश
7.	सं0 आ0	संस्कृत आलोचना
8.	स0 सा0 का इति0	संस्कृत साहित्य का इतिहास
9.	सं0 सा0 का समी0 इति0	संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
10.	सं0 दिग्दर्शिका	संस्कृत दिग्दर्शिका
11.	अ0 शा0	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
12.	किरा0	किरातार्जुनीयम्
13.	नै0 च0	नैषधीय चरितम्
14.	सां0 का0	सांख्य कारिका
15.	शि0 पा0 व0	शिशु पाल वधम्
16.	इ0ऐ0डि0 इन अर्ली टे0 ऑफ बु0 एण्ड जै0	इण्डिया ऐज डिसक्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म
17.	ऐ0 इ0 ऐ0 एण्ड एरियन	ऐन्सिमेण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन
18.	श्लो0	श्लोक
19.	स0	सर्ग
20.	पृ0	पृष्ठ
21.	ब्रा0	ब्राह्मण ग्रन्थ
22.	पं0	पण्डित

शिशुपाल वधम् और किरातार्जुनीयम् के प्राकृतिक चित्रणों का समीक्षात्मक अध्ययन

संक्षिप्त रूपरेखा

भू मि का

भूमिका

शिशुपाल/वधम्

और

किरातार्जुनीयम्

के प्राकृतिक चित्रणों का

समीक्षात्मक अध्ययन

भूमिका

संसार का यह सुन्दर देश (भारत) सदैव प्रकृति नारी का रमणीय रंग स्थल बना हुआ है। प्रकृति देवी ने अपने कर कमलों से सजाकर इसे शोभा का आगार तथा सुषमा का निकेतन बनाया है इसका वाह्यरूप कितना सुन्दर है – उत्तर में हिम से आच्छादित हिमकिरीटी हिमालय है, जिसका शुभ्र शिखर–श्रेणी का सौन्दर्य मूर्तिमान् अवतार है। दक्षिण में नील आभामय नीलाम्बुधि, जिसकी चपल लहरियाँ इसके चरण युगल को धोकर निरन्तर शोभा का विस्तार करती हैं। पश्चिम में अरब का प्रभा मण्डित, अर्णव और पूरब में श्यामल बंगाल की खाड़ी। मध्य देश में बहती है गंगा, यमुना की विमल धाराएं। इस वाह्य रूप के समान ही इसका आभ्यन्तर रूप भी सुन्दर तथा अभिराम हैं। इसे ललित कला तथा कमनीय कविता की जन्मभूमि मानना सर्वथा उचित है।

आलोचना शास्त्र की उत्पत्ति इस देश में अपेक्षाकृत प्राचीन समय में हुई तथा उसका विकास अनेक शताब्दियों के साहित्यिक प्रयास का परिणाम है। आलोचना शास्त्र का प्राचीन तथा लोकप्रिय अभिधान है– ''अलंकारशास्त्र'', ''साहित्यशास्त्र'' भी इसी का अभिधान है, परन्तु कालक्रम से इसकी उत्पत्ति मध्ययुगीन तथा अवान्तरकालीन है। ''अलंकार शास्त्र'' नामकरण उस युग की स्मृति बनाये हुए है जब अलंकार का तत्व काव्यमयी अभिव्यंजना के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। अलंकार युग हमारे शास्त्र के आद्य आचार्य भामह से भी प्राचीनतर है तथा वह उद्भट्, बामन तथा रुद्रट के समय तक विद्यमान था इनके ग्रन्थों के नाम से इसका पूर्ण रूपेण परिचय मिलता है भामह के ग्रन्थ का नाम है– काब्यालंकार।

इसके टीकाकार उद्भट के ग्रन्थ का अभिधान है– काब्यालंकार– सार संग्रह। वामन तथा रुद्रट के ग्रन्थों का नाम भी इसी शैली पर काब्यालंकार है। दण्डी के ग्रन्थ का नाम "काब्यादर्श" अलंकार के तत्व पर आश्रित नहीं है, फिर भी दण्डी अलंकार को काव्य में आवश्यक उपकरण मानने में इन सब आचार्यों में अप्रतिम हैं। साहित्य शास्त्र के आरम्भ युग में अलंकार ही कविता का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग था। अलंकार युग इस शास्त्र के इतिहास में अनेक दृष्टियों से महत्व रखता है। कारण यह है कि अलंकार की गहरी मीमांसा करने से एक ओर वक्रोक्ति का सिद्धान्त उद्भूत हुआ, तो दूसरी ओर दीपक, पर्यायोक्ति, तुल्ययोगिता आदि अलंकारों के द्वारा काब्य में प्रतीयमान अर्थ से सम्पन्न ध्वनि के सिद्धान्त का भी उद्गम हुआ। वक्रोक्ति तो अलंकार युग की ही देन है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, इसलिए इसके अप्रतिम आचार्य कुन्तक ने अपने ग्रन्थ "वक्रोक्तिजीवित" को काव्यालंकार के नाम से अभिहित किया है।[1]

कुमार स्वामी का यह कथन उपयुक्त है कि इस ध्वनि, गुण आदि विषयों के प्रतिपादक होने पर भी प्राधान्य–दृष्टि से ही इस शास्त्र का "अलंकारशास्त्र" अभिधान युक्तियुक्त है।[2] इस आलोचना शास्त्र में विवेच्य विषय विविध है – रस, ध्वनि, गुण, दोष आदि परन्तु प्राधान्य अलंकार का ही है।

1. – व0 जी0 1/3
2. प्रतापरुद्रीयटीका – रत्नार्पण, पृ0–3

मध्ययुग में हमारे शास्त्र के लिए साहित्यशास्त्र का अभिधान पड़ा। सर्वप्रथम राजशेखर ने इस शब्द का प्रयोग हमारे शास्त्र के लिए किया है– *"पंचमी साहित्यविद्या इति यायावरीयः।* [1] साहित्य शब्द की उत्पत्ति के मूल में शब्द तथा अर्थ के परस्पर वैयाकरण सम्बन्ध की घटना जागरूक है। इस शब्द की उत्पत्ति भामहकृत काव्यलक्षण से हुई। भामहकृत लक्षण है– *"शब्दार्थौ सहितौकाव्यम्"*।[2] आनन्दवर्धन के समय में इस शब्द की महत्ता अंगीकृत हो चली थी, परन्तु भोज और कुन्तक ने इस शब्द के वास्तविक महत्वपूर्ण तात्पर्य का प्रकाशन कर इसकी महिमा का स्फुटीकरण किया। कुन्तक 'साहित्य' के अभिप्राय प्रकाशक हमारे मान्य आलोचक हैं। उनके पश्चात् इस शब्द का गौरव बढ़ने लगा और रूय्यक ने "साहित्यमीमांसा' तथा कविराज विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' लिखकर, इस अभिधान को लिखकर और भी लोकप्रिय बनाया।

"सहितस्यभावः कर्म वा साहित्यम्" इस व्युत्पत्ति से सहित पद से ष्यञ् प्रत्यय जोड़कर 'साहित्य' पद निष्पन्न होता है। इस प्रकार साहित्य पद का सामान्य अर्थ होता है। सहित का भाव व कर्म। यह यौगिक अर्थ है। परन्तु संस्कृतवाङ्मय में *"हितेन सहितौ शब्दार्थौ सहितौ तयोर्भावः कर्म वा साहित्यकारः"* ऐसी व्युत्पत्ति से पूर्ववत् ष्यञ् प्रत्यय करने से यह पद योगरूढ़ हो जाता है इस प्रकार साहित्य का अर्थ हुआ काव्य। राजर्षि भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में कहा है–

1.– काव्यमीमांसा, पृ0–4
2.– काव्यलंकार, 1/16

साहित्य संगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाण हीनः।

तृणंन खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।[1]

ऐसा लिखकर काब्य के अर्थ में साहित्य शब्द का प्रयोग किया है।

इसी प्रकार महाकवि विल्हण ने भी अपने "विक्रमांकदेव–चरित" काव्य में कहा है– (1) *साहित्यपाथोनिधि मन्थनोत्यं काव्यामृतंरक्षतहेकवीन्द्राः।*

यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्याऽर्थ चौराः प्रगुणी भवन्ति।।[2]

ऐसा लिखकर साहित्य का अर्थ काव्य ही मान लिया है। इस प्रकार हम साहित्य और काव्य को समानार्थक और अलंकार, अलंकारशास्त्र, साहित्य विधा और काव्यशास्त्र, इनको पर्यायवाचक माना जाता है।

वामन ने "अलंकार" शब्द के अभिप्राय को और भी महत्वपूर्ण तथा उपादेय बताया है, उनकी दृष्टि में अलंकार केवल शब्द तथा अर्थ की वाह्य शोभा का वर्धक भूषणमात्र न होकर काव्य का मूलभूत तत्व है। वामन के लिए अलंकार सौन्दर्य का प्रतीत है – *"सौन्दर्यमलंकारः"*।[3] काव्य में जितने शोभाधायक तत्व है– दोषों का अभाव तथा गुणों का साद्भाव जिनके द्वारा काव्य की विशिष्टता अन्य प्रकार के शब्दार्थों से सिद्ध होती है, उन सबका सामान्य अभिधान है –अलंकार। वामन के हाथ में आकर इस शब्द ने अत्यन्त महत्व तथा गौरव प्राप्त कर लिया और यह सौन्दर्यशास्त्र का प्रतिनिधि माना जाने लगा।

हमारे आलोचकों की सूक्ष्म गवेषणा काव्य के तत्वों में सौन्दर्य पर जाकर टिकी थी वे भलीभांति जानते थे कि काव्य में सौन्दर्य ही मौलिक

---

1. नीति शतकम, श्लो0–12
2. वी0 च0 – 1/11
3. काव्यलंकार, 1/1/2

तत्व है जिसके अभाव में न तो अलंकार में अलंकारत्व रहता है और न ध्वनि में ध्वनित्व। दण्डी के शब्दों में काव्य में शोभा करने वाले धर्मों का ही नाम अलंकार है।–

"काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते"।[1] यदि अलंकार में शोभाधायक गुण का अभाव हो तो यह भूषण न होकर निःसन्देह दूषण बन जायेगा। अभिनव गुप्त ने अलंकार के लिए चारुत्व के अतिशय को नितान्त आवश्यक माना है–

तथा *जातीयानामिति चारुत्वातिशयवतामित्यर्थः। सुलक्षिता इति यत् किलैषां तद्विनिर्मुक्तिं रूपं च तत् काव्येऽभ्यर्थनीयम्। उपमा हि यथा गौस्तथा गवयः इति एवमन्यत् न चैवमारि काव्योपयोगीति।* [2]

चारुत्व के अतिशय से विरहित अलंकार की काव्य में कोई उपादेयता नहीं होती। जो सोने की अंगूठी अंगुलियों की शोभा बढ़ाने में समर्थ नहीं होती, वह सर्वथा त्याज्य ही है, स्पृहणीय नहीं। अतः अलंकार का सर्वमान्य गुण है, चारुत्व सौन्दर्य। भोजराज का भी यही मत है। उन्होंने दण्डी के मत का अनुसरण कर काव्य शोभाकरत्व को अलंकार का सामान्य लक्षण माना है और धूमोऽयमग्नेः (अग्नि के कारण यह धूम है) वाक्य किसी प्रकार के सौन्दर्य के अभाव में किसी भी अलंकार का उदाहरण नहीं बन सकता, ऐसा वे मानते हैं। अप्पय दीक्षित ने अपनी चित्र मीमांसा में इसी बात पर बल देते हुए लिख है–

---

1. काव्यादर्श, 2/1
2. लोचन (अभिनव गुप्त), पृ0 210

सर्वोऽपि अलंकारः कविमय प्रसिद्धयनुरोधेन हृदयता काव्यशोभाकर एवं अलंकारतां भजते। अतः गो सदृशो कवयः इति नोपमा।[1]

"गायसदृश गवय होता है इस वाक्य में सादृश्य होने पर भी अलंकार का इसलिए अभाव है कि यहाँ किसी प्रकार का सौन्दर्य नहीं है। अलंकार के लिए यह सामान्य नियम है कि हृदयावर्जक होता हुआ काव्य भी शोभा का विधायक होता है। अलंकार के लिए ही इस आवश्यक उपकरण की उपेक्षा नहीं रहती, प्रत्युत ध्वनि के लिए भी किसी काव्य में प्रतीयमान अर्थ का सद्भाव ही ध्वनि के लिए पर्याप्त नहीं होता प्रत्युत उसे सुन्दर भी होना चाहिए। असुन्दर प्रतीयमान अर्थ से ध्वनि का उदय कभी नहीं होता। अभिनव गुप्त का इस विषय में स्पष्ट कथन है कि ध्वनन व्याापर होने पर भी गुण अलंकार के औचित्य से सम्पन्न, सुन्दर शब्दार्थ शरीर वाले वाक्य को काव्य की पदवी दी जाती है। *"गुणालंकारौचित्यं सुन्दर शब्दार्थ शरीरस्य ध्वननाध्वनि आत्मनि काव्य रूपता व्यवहारः।"*[2] – इसलिए ध्वनन व्यापार होने पर ही ध्वनि की सत्ता सर्वत्र मानी नहीं जा सकती क्योंकि ध्वनि के लिए ध्वनन व्यापार की अपेक्षा नहीं रहती, प्रत्युत उसके सौन्दर्य मण्डित होने की भी नितान्त आवश्यकता रहती है। अभिनव गुप्त की उक्ति नितान्त स्पष्ट है–

"तेन सर्वत्रापि न ध्वनमतद्‌भवेऽपि तथा व्यवहारः।"[3] इसीलिए अभिनव गुप्त का यह परिनिष्ठित मत है– सौन्दर्य ही काव्य की कला की आत्मा है–

"चारुत्व प्रतीतिः तर्हि काव्यस्य आत्माः इति तह अंगीकुर्म एव नास्ति कोऽपि विवाद इति।"[4]

---

1. चित्रमीमांशा, पृ0 6
2. लोचन, पृ0 17
3. लोचन, पृ0 28
4. लोचन, पृ0 33

इन अभिधानों की अपेक्षा इस शास्त्र का एक प्राचीनतम नाम है– क्रियाकल्प, जिसका उल्लेख चौंसठ कलाओं की गणना में कामशास्त्र में किया गया है। काव्य क्रिया के अनन्तर दो सहायक विधाओं के नाम आते हैं– 1. अभिधान कोश, 2. छन्दोज्ञान। तदनन्तर क्रिया कल्प का नाम कलाओं की गणना में आता है। यह विद्या भी काव्यविद्या से ही सम्बद्ध होनी चाहिए। क्रियाकल्पका पूरा नाम है काव्य क्रियाकल्प, अर्थात् काव्य क्रिया की विधि पर आलोचना शास्त्र। इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग साहित्य ग्रन्थों में मिलता भी है। ललितविस्तर में, कलाओं की गणना में क्रियाकल्प का उल्लेख है। कामशास्त्र की टीका जयमंगला के अनुसार इसका अर्थ है।

''क्रियाकल्प इतिकाव्य करणविधिः काव्यालंकार इत्यर्थः।''[1]

दण्डी इस नाम से परिचित प्रतीत होते हैं उनका कथन है– *वाचां विचित्रमार्गाणां निवबन्धुः क्रियाविधिम्''।*[2] यह क्रियाविधि क्रियाकल्प का ही नामान्तर है और दण्डी के टीकाकारों ने इस शब्द की व्याख्या इसी अर्थ में की है, रामायण के उत्तरकाण्ड में अनेक कलाओं और विधाओं के साथ इस शब्द का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। *''क्रियाकल्प विदश्चैव तथा काव्यविदोजनाः।''*[3] व्याकरण तथा छन्दःशास्त्र के साथ अलंकार शास्त्र का निर्देश युक्ततर प्रतीत होता है। इस श्लोक में दो प्रकार के व्यक्तियों आ निर्देश किया गया है। एक तो वे हैं जो सामान्य रूप से काव्य को जानते हैं और दूसरे वे हैं जो काव्य की समीक्षा के वेत्ता हैं।

---

1. अलंकारशास्त्र, पृ0 55
2. काव्यादर्श, 1/9
3. वाल्मीकि रामा0 (उ0का0), श्लो0 7

भारतीय साहित्य शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ आलोचक आनन्दवर्धन इसी युग की विभूति है। इन्होंने इस सिद्धान्त की व्यवस्था काव्य में की तथा उसकी पूर्ण व्याख्या के लिए ध्वनि के सिद्धान्त की सद्भावना की। इतने से सन्तुष्ट न हुए, प्रत्युत उन्होंने अलंकार और रीति के सिद्धान्तों को भी अपनी काव्य पद्धति में समुचित स्थान दिया। इसका फल यह हुआ कि काव्य का सर्वांगीण वर्णन सर्वप्रथम अपने ग्रन्थ में उपस्थित किया। अलंकार शास्त्र के इतिहास में यह काल सुवर्ण युग माना जाता है। क्योंकि साहित्य शास्त्र के भिन्न–भिन्न मौलिक सम्प्रदाय इसी युग में उत्पन्न हुए और फले–फूले।

काव्य

काव्य को कवि का कर्म कहा गया है, कवि शब्द की निष्पत्ति डुकृञ् धातु से *"अचःइ"*[1] पाणिनी सूत्र से 'इ' प्रत्यय करने पर होती है।

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि को स्वयं प्रजापति या ब्रह्मा और काव्यसंसार को उसकी सृष्टि कहा है–

" अपारे काव्य संसारे कविरेवः प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वंतथेदं परिवर्तते।।'[2]

इस अपार काव्य संसार का निर्माता कवि है। उस कविप्रजापति की इच्छा और रुचि के अनुसार ही इस काव्य संसार की रचना होती है। प्राचीन अलंकारिकों की मर्यादा रही है कि वे काव्य को इस सृष्टि का रसमय प्रतिरूप मानते रहे हैं और कवि को रसमय काव्य जगत् का स्रष्टा। जैसे स्रष्टा और सृष्टि में शक्तिमान और शक्ति प्रचय की दृष्टि से अभेद ही रहा करता है। जैसे ही कवि और काव्य में भी यह तो वैदिक ऋषियों

1. अष्टाध्यायी
2. ध्वन्यालोक, पृ0 422

की ही तत्व दृष्टि रही है कि वे इस सृष्टि को ही काव्य और इसके रचयिता को कवि मानते रहे हैं।

"काव्यंतु जायते जातुकस्यचित् प्रतिभावतः।

शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम्।

विलोक्यान्यनिबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः।।"[1]

भामह ने कविता के उद्भव में, कवि के व्यक्तित्व का जो रहस्य देखा वह उपर्युक्त है। अर्थात् जो लोग ऐसे हो चुके हैं, जिनकी रचना काव्य है विरले ही लोग हैं, क्योंकि काव्य एक ऐसी वस्तु है जो सर्वदा नहीं बना करती अपितु कदाचित् ही प्रादुर्भूत हुआ करती है और सभी शब्दार्थ रचनाकार काव्य रचना नहीं किया करते अपितु वही काव्य रचना कर पाता है जिसमें प्रतिभा हुआ करती है। जिसे वस्तुतः सर्वतोभावेन काव्य कहते हैं। वह तो एक विशेष प्रकार की कवि शक्ति, कवि प्रतिभा का उन्मेष है, यह कवि प्रतिभा सर्वत्र नहीं पायी जाती है किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि लोग काव्यक्रिया के प्रति निराश हो जाए। काव्य क्रिया के प्रति सब को प्रयत्नशील होना चाहिए और इस प्रयत्नशीलता का अभिप्राय है– शब्द स्वरूप और अर्थ स्वरूप का पूर्ण परिचय, शब्दार्थ तत्व वैज्ञानिकों का सानिध्यलाभ और कवि कृतियों का अवलोकन वा अनुसन्धान।

भामह के इस काव्य हेतु विवेक में भी काव्य की उत्पत्ति प्रतिभा में ही छिपी लिपटी दिखाई देती है। यही बात आचार्य दण्डी के सम्बन्ध में भी प्रतीत होती है क्योंकि उनका भी यही कथन है–

---

1. काव्यलंकार 1/5

"नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रृतंचबहु निर्मलम्। अमन्द च्श्रभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसम्पदः।"[1]

काव्य पद की व्युत्पत्ति इस प्रकार है– काव्य शब्द की प्रकृति कवि शब्द है। यह पद अदादिगणस्थ "कुशब्दे" इस धातु से "कौति" इस व्युह्यति से "अचःइः"[2] इस सूत्र से इ प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। परन्तु भ्वादिगणस्थ "कुड. शब्दे" इस धातु से भी यह पद निष्पन्न होता है। किन्तु भ्वादिगणस्थ कुड्. धातु अव्यक्त शब्द में है। अतः जो रमणीय अर्थों के प्रतिपादक शब्दों को उच्चारण करता है वह कवि पद से अभिहित किया जाता है।

"कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्"[3] ऐसी व्युत्पत्ति कर कवि शब्द से" गुणक्वन ब्राह्मणादिभ्यः कर्म इस सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय होकर काव्य शब्द निष्पन्न होता है अर्थात् कवि के भाव वा कर्म को काव्य कहते हैं।

काव्य के लक्षण में विद्वानों में बहुत मतभेद दिखाई देता है–

व्यासमुनि ने अग्निपुराण में काव्य का लक्षण किया है–

"काव्यं स्फुटदलंकारं गुणवदोष वर्जितम्।"[4]

अर्थात् स्फुट अलंकार और गुण से युक्त दोष रहित अभीष्ट अर्थ से युक्त पदावली को काव्य कहते हैं। काव्यालंकार कर्ता भामह के मत में *"शब्दाऽर्थों सहितौ काव्यम्।"*[5] अर्थात् सम्मिलित शब्द और अर्थ काव्य है। काव्यादर्शकर्ता दण्डी का मत है– *"शरीरं तावदिष्टाऽर्थव्यवच्छिन्ना पदावली काव्यम्।"*[6] इष्ट अर्थ से व्यवच्छिन्न पदावली ही काव्य का शरीर है।

वामन के मत में–

1. काव्यादर्श 1/1/3
2. अष्टाध्यायी (पाणिनीय सूत्रम्)
3. अष्टाध्यायी (पाणिनीय सूत्रम्)
4. अग्निपुराण अ0 337
5. काव्यलंकार
6. काव्यादर्श

"काव्यं ग्राह्यमलंकारात्"[1] अर्थात् गुण और अलंकार से संस्कृत शब्द और अर्थ ही काव्य है।

रूद्रट के मत में— *"शब्दाऽर्थों काव्यम्"*[2] अर्थात् शब्द और अर्थ ही काव्य है।

ध्वनिवादी आनन्दवर्धनाचार्य के मत में *"काव्यस्यात्मा ध्वनिः।"*[3] अर्थात् काव्य की आत्मा ध्वनि है। वे ही अन्यत्र काव्य के सामान्य लक्षण के रूप में लिखते हैं— *"सहृदय हृदयाल्हादि शब्दाऽर्थ मयत्वमेव काव्य लक्षणम्।"*[4] अर्थात् सहृदय के हृदय को आह्लादित करने वाले शब्द और अर्थ ही काव्य स्वरूप हैं। कुन्तक के मत में काव्य का लक्षण इस प्रकार है—

"शब्दाऽर्थों सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादिकारिणि।।"[5]

अर्थात् कवि के वक्र व्यापार से शोभित, काव्य के जानने वालों को आहलाद करने वाले बन्ध (गुम्फ) में व्यवस्थित सम्मिलित शब्द और अर्थ काव्य है।

राजानक महिमभट्ट के मत में—

"विभावादिसंयोजनात्मना रसाऽभिव्यक्तव्यभिचार कविव्यापारः काव्यम्।"[6]

अर्थात् विभाव आदि के संयोजन स्वरूप, रस की अभिव्यक्ति में अव्यभिचारी कवि व्यापार काव्य है।

भोजदेव के मत में काव्य का लक्षण—

"निर्दोष गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्तिप्रीतिं च बिन्दति"।।[7]

---

1. काव्यलंकार सूत्र
2. काव्यलंकार (रुद्रट)
3. ध्वन्यालोक
4. ध्वन्यालोक
5. व०जी० (कुन्तक)
6. व्यक्ति विवेक
7. स०क० (भोजदेव)

अर्थात् दोषरहित, गुणसहित, अलंकारो सहित अलंकृत और रस से युक्त "काव्य" को बनाने वाला कवि कीर्ति और प्रीति को प्राप्त करता है।

औचित्यविचार चर्चाकार क्षेमेन्द्र के मत में काब्यलक्षण–

"औचित्यं काव्यजीवितम्"[1] अर्थात् औचित्य ही काव्य का जीवन है क्षेमेन्द्र ही अपने ग्रन्थ कविकण्ठा भरण में लिखते हैं–

"काव्यंविशिष्टशब्दार्थसाहित्यसदलङ्कृतिः।"[2] अर्थात् उत्तम अलंकार से युक्त विशिष्ट शब्द और अर्थ काव्य है–

विश्वनाथ के मत में– *"गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ। गद्यपद्योमयं .... काव्यं काव्य विधेविदुः।"*[3]

अर्थात् गुण और अलंकार से सहित दोष से वर्जित, शब्द और अर्थ को काव्य के जानकार काव्य कहते हैं।

बाग्भट् के मत में– *"शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्।"*[4] अर्थात् दोष रहित, गुण सहित और प्रायः अलंकार से अलंकृत शब्द और अर्थ काव्य माना गया है।

शौद्धोदनि के मत में– *"काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुख विशेषकृत्।"* अर्थात् रस आदि से विशिष्ट, सुख विशेष, उत्पन्न करने वाला वाक्य "काव्य" सुना गया है। एकावली में विद्याधर कहते हैं–

"शब्दार्थवपुस्तावत काव्यम्।"[5] अर्थात् काव्य, शब्द और अर्थ रूप शरीर वाला है।

---

1. औचित्यविचारचर्चा (क्षेमेन्द्र)
2. कविकण्ठाभरणम्
3. प्रतापरुद्रीय (विश्वनाथ)
4. काव्यनुशासनम्
5. एकावली (विद्याधर)

वाग्भट् ने बाग्भटाऽलंकार में काव्य का लक्षण इस प्रकार किया है–
"साधु शब्दाऽर्थसन्दर्भगुणाऽलंकार भूषितम्।"[1]

स्फुटरीतिरसोपेतंकाव्यंकुर्वीतकीर्तये।।" अर्थात् गुण और अलंकार से भूषित, स्फुटरीति और रस से युक्त साधु शब्दाऽर्थ गुम्फ को काव्य कहते हैं, कवि अपनी कीर्ति के लिए काव्य की रचना करें।

हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ काव्याऽनुशासन में काव्य का लक्षण किया है–

"अदोषौसगुणौ सालंकारो च शब्दार्थोकाव्यम्।"[2]

अर्थात् दोष से रहित गुण ओर अलंकार के सहित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

जयदेव के मत में– *"निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।*[3]

सालंकार रसाऽनेक वृत्तिर्वाक् काव्यनाम भाक्।।"

अर्थात् श्रुतिकटु आदि दोष से रहित, अक्षर संहति आदि लक्षण के सहित, पान्चाली आदि रीति से युक्त श्लेष, प्रसाद आदि गुण से भूषित, अनुप्रास और उपमा आदि अलंकार से सहित एवं श्रृंगार आदि रस तथा मधुरा आदि, और उसी तरह अभिधा आदि वृत्तियों से युक्त शब्द को काव्य कहते हैं।

केशवमिश्र के मत में– *"रसाऽलंकारयुक्तंसुखविशेषसाधनं काव्यम्।"*[4]

अर्थात् रस और अलंकार से युक्त सुख विशेष अनिर्वचनीय आनन्द का साधन काव्य है।

कविकुलशेखर राजशेखर अपने ग्रन्थ "काव्यमीमांसा" में काव्य का लक्षण करते हैं।

---

1. वाग्भटालंकार (वाग्भट्ट)
2. काव्यानुशासनम् (हेमचन्द्र)
3. चन्द्रालोक (जयदेव)
4. अलंकार शेखर

"गुणवदलंकृतं वाक्यमेवकाव्यम्।"[1] अर्थात् गुणविशिष्ट और अलंकार से अलंकृत वाक्य (पदसमूह) ही काव्य है।
साहित्यसार में अच्युतराज कहते हैं–

"तत्र निर्दोष शब्दाऽर्थ गुणतन्त्वे सति स्फुटम्।

गद्यादिबन्धरूयत्वं काव्यसामान्य लक्षणम्।।"[2]

अर्थात् दोषरहित शब्द और अर्थ गुण से युक्त होकर गद्य और पद्य से निबद्ध जो सन्दर्भ है वह काव्य का सामान्य लक्षण है।

धर्मसूरि अपने ग्रन्थ "साहित्य रत्नाकर" में काव्य का लक्षण करते हैं।

"सगुणाऽलंकृतीकाव्यंपदार्थौ दोषवर्जितौ।"[3] अर्थात् गुण और अलंकार के सहित, दोष से रहित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

अलंकार चन्द्रिका में न्यायवागीश के मत में–

गुणाऽलंकार संयुक्तौ शब्दार्थौरसभावगौ।

नित्यदोषविनिर्मुक्तौ काव्यमित्यभिधीयते।।"[4]

अर्थात् गुण और अलंकार से संयुक्त रस और भाव के प्रतिपादक और नित्य दोष से रहित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

आलंकारिक विश्वनाथ कविराज के मत में काव्य का लक्षण–

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।"[5] अर्थात् रस रूप आत्मा जीवनधायक वाला काव्य है।

---

1. काव्यमीमांसा
2. साहित्यसारम्
3. साहित्यरत्नाकर
4. अलंकार चन्द्रिका (न्यायवागीस)
5. सा0द0

पण्डितराज जगन्नाथ के शब्दों में–

"रमणीयाऽर्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।"[1] अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द ही काव्य है। यहां पर मम्मट और पण्डितराज के काव्यलक्षण में अन्तर है पण्डितराज शब्द को ही काव्य मानते हैं परन्तु मम्मट शब्द और अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं। मम्मट के समर्थन में महामहोपाध्याय गंगाधर शास्त्री ने कहा है कि शब्द मात्र काव्य होता तो शब्द मात्र में विद्यमान, दोष, गुण, अलंकार और ध्वनि का निरूपण होता। अर्थगत दोष गुणादिकों का निरूपण नहीं होता अतः काव्यत्व उभयनिष्ठ है अर्थात् काव्य शब्दार्थ उभयवृत्ति है।

महामहोपाध्याय महावैयाकरण नागेश भट्ट ने भी *"काव्यं पठितं,–श्रुतंकाव्यं बुद्धंकाव्यम्।"* इन प्रयोगों में शब्द और अर्थ दोनों में काव्य पद का व्यवहार देखने से काव्य पद का प्रवृत्तिनिमित्त व्यासज्यवृत्ति है, ऐसा मानकर प्राचीन आचार्य के मत का समर्थन किया है।

मम्मट का काव्यलक्षण –

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।"[2]

मम्मटाचार्यकृत काव्य लक्षण में प्रथमतः यह विशेष बात है कि वे शब्द तथा अर्थ दोनों की समष्टि को काव्य मानते हैं अकेला शब्द या अकेला अर्थ इनमें से कोई काव्य नहीं है, तत् यह सर्वनाम पद पिछली काव्यंयशसे इत्यादि कारिका में प्रयुक्त हुए काव्य पद का परामर्शक है। दोषों से रहित, गुणयुक्त और कहीं–कहीं अलंकार रहित शब्द और अर्थ अर्थात् दोनों की समष्टि ही काव्य कहा जाता है।

1. रसगंगाधर (पं0जगन्नाथ)
2. काव्य प्रकाश (मम्मट)

उदाहरण *''यः कौमारहरः स एवहि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः*

ते चोन्मीलितमालती सुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।

सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ

रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठते।।''[1]

जिन प्रियतम पतिदेव ने विवाह के बाद प्रथम सम्भोग द्वारा मेरे कुमारीभाव के सूचक योनिच्छद का भंग करके कौमार्य का हरण किया चिर उपभुक्त मेरे कौमार्य का हरण करने वाले वे ही पतिदेव हैं और आज फिर वे ही चैत्र मास की उज्जवल चांदनी से भरी हुई राते हैं, खिली हुई मालती की सुगन्ध से भरी हुई और धूलि कदम्ब की उन्मादक वायु बह रही है और मैं भी वही हूँ फिर भी वहाँ नर्मदा के तट पर उस बेल के पेड़ के नीचे उन काम–केलियों के लिए चित्त उत्कण्ठित हो रहा है।

काव्य प्रकाशकार मम्मट का ''तददोषौ शब्दार्थों सगुणावनलंकृती पुनःक्वापि।'' यह काव्य लक्षण अन्य लक्षणों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है। कुन्तक ने जिस बात को कई कारिकाओं में कहा है, मम्मट ने इस आधी कारिका में ही उसको समाविष्ट कर लिया। उसके साथ ही 'अदोषौ' तथा 'सगुणौ' पद जोड़कर उन्होंने काव्य–लक्षण का नया दृष्टिकोण भी उपस्थित किया है जिसका प्राचीन लक्षणों में इतना स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया था। मम्मट ने अपने काव्यलक्षण को शब्दों में भाव गाम्भीर्य के द्वारा अत्यन्त सुन्दर और उपादेय बना दिया है।

---

1. काव्यप्रकाश श्लो0 1/1

मम्मट का काव्यलक्षण काव्य की सभी विशेषताओं – सभी ऐतिहासिक वा वास्तविक काव्य तत्वों का सर्वप्रथम विश्लेषण है। किन्तु हमसे ऐसा कोई अहंभाव नहीं जिससे यह प्रकट हो जाए कि इसी में काव्य रहस्य बांध–छानकर रख दिया गया है। यदि ऐसी बात होती तो मम्मट जैसा काव्यशास्त्र का शास्त्रकार 'अनलंकृती पुनः क्वापि' जैसी रहस्य भाषा का प्रयोग काव्य लक्षण में कभी न करता। मम्मट की दूर दृष्टि तो 'काव्य' पर रस दृष्टि और रसानुभूति पर रमी है किन्तु लक्षण वाक्य में काव्य के माध्यमभूत तत्वों का विश्लेषण किया हुआ है। इन तत्वों के प्रसंग्यान में भी मम्मट को मम्मट काव्यरहस्यभावना का, ही हाथ दिखाई दे रहा है न कि काव्य लक्षण कारिकता का भाव तो ऐसे काव्य लक्षणों में ही झलका करता है–

"निर्दोषं गुणवत् काव्यमलंरैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।"[1]

अभिप्राय यह है कि काव्य के तत्व प्रसंग्यान में ही काव्य सर्वस्व की प्रत्यभिज्ञा समा जाती है।

मम्मट का काव्य लक्षण एक और रहस्य रखता है जिसे आधुनिक काव्य मर्मज्ञ इस प्रकार प्रकट करना चाहते है– काव्य की यदि परिभाषा की जाए और अवश्य करनी चाहिए तब सबसे पहले तो उसका आधारभूत विश्लेषण कर दिया जाए और बाद में जितनी भी काव्य की ऐतिहासिक विशेषतायें आवश्यक हो उन्हें भी उसमें जोड़ दिया जाए जिसमें काव्य साहित्य का स्वरूप पता चल जाए। किन्तु यदि कोई यह सोंचें कि उसका

1. सरस्वतीकण्ठाभरणम्

काव्यलक्षण सर्वथा सर्वलक्षण–दोषरहित हो तब तो वह काव्य का लक्षण नहीं करता, अपितु काव्यशास्त्र के ऐतिहासिक अनुसन्धानों का लेखा जोखा किया करता है। शेक्सपियर की कविता की परिभाषा शेक्सपियर के समस्त काव्य और उनकी बृहती विमर्शिनियों के अतिरिक्त और क्या हो सकती है?

अपने काव्यलक्षण में मम्मट ने भी यही सुदूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाया है। मम्मट का काव्यलक्षण न तो केवल कविता की भाषा को कविता की कसौटी मानता है और न केवल कविता की अनुभूतियों में कविता की रूपरेखा रचता है। मम्मट के काव्यलक्षण का वास्तविक रहस्य यही है कि जिसे कविता कहा जाता है वह कोई अवांगमनसगोचर रहस्य मात्र नहीं, अपितु वह वस्तु है जिसे कवि अपनी काव्यमय भाषा में सोंच समझकर प्रकाशित किया करता है।

–: काव्य भेद :–

जिस काव्य के सम्बन्ध में इतनी विवेचना की गयी है उस काव्य के भेद के विषय में आचार्यों ने अपने अलग–अलग मत प्रकट किये हैं। वाग्देवताकार आचार्य मम्मट ने (1000ई0) में अपने ग्रन्थ 'काव्य प्रकाश' में काव्य के भेदों के विषय में विस्तार से चर्चा की है। आचार्य मम्मट ने काव्य के मुख्य रूप से तीन भेद माने हैं[1], जो निम्न प्रकार से हैं–

1. उत्तम काव्य या ध्वनिकाव्य–

"इदमुत्तममतिशयिनिव्यंगये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैःकथितः।"[2]

1. काव्यप्रकाश, पृ0 28
2. का0प्र0 1/4

जहां वाक्य से व्यंग्य अर्थ में अधिक चमत्कार होता है उसे ध्वनि काव्य या उत्तम काव्य कहते हैं। ध्वनि शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से वैयाकरणों ने किया था और साहित्यशास्त्र में आनन्दवर्धन आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने व्याकरणशास्त्र के इस ध्वनि शब्द को अपना लिया। जैसे कि–

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौं।

व्यंक्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरितिसुरिभिः कथितः।।"[1]

जहां अर्थ वाच्य विशेष या शब्द वाचक विशेष उस प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं, वह विशेषकाव्य ध्वनि है। ध्वनि के इस लक्षण में यह भी कहा गया है कि अर्थ अपने को या शब्द अपने अर्थ को उपसर्जनीकृत करते हैं इससे स्पष्ट है कि व्यंग्य की प्रतीति शब्द और अर्थ दोनों से होती है। लक्षणामूलक ध्वनि में मुख्य रूप से शब्द के द्वारा व्यंग्य की प्रतीति होती है। अभिधा मूलक ध्वनि में मुख्य रूप से अर्थ द्वारा व्यंग्य की प्रतीति होती है। शब्द और अर्थ से ध्वनि की प्रतिति होती है, इस दृष्टि से ध्वनि को शब्द शक्ति मूलक और अर्थ शक्ति मूलक इन दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। कौन सी ध्वनि शब्द शक्ति मूल है और कौन सी अर्थशक्तिमूल है इसका निश्चय अन्वय व्यतिरेक से किया जा सकता है।

साहित्य दर्पणकार तथा रस गंगाधर ने भी यद्यपि काव्य के इन्हीं पूर्वोक्त भेदों को स्वीकार किया है तथा उनकी मान्यता में थोड़ा भेद है।[2]

---

1. ध्वन्यालोक 1/13
2. सा0द0 पृ0 56

आचार्य विश्वनाथ तो अव्यंग्य (ब्यंग्यरहित) काब्य को काब्य ही नही मानते हैं। हॉ यदि अब्यंग्य का अर्थ ईषद् ब्यंग्य युक्त' माने तो प्रश्न उठता है कि वह ईषदव्यंग्य आस्वाद्य है अथवा अनास्वाद्य। यदि आस्वाद्य है तो फिर उसका अन्तर्भाव पूर्व भेदों (उत्तम एवं मध्यम) में ही हो जायेगा। और यदि वह ईषद् ब्यंग्य अनास्वाद्य है[1] तो फिर उसे काव्य नही माना जा सकता है।

आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ भी मम्मट द्वारा निर्देशित काव्य भेदों को ही स्वीकार करते हैं परन्तु चित्रकाव्य के सन्दर्भ में उनकी मान्यता थोड़ी भिन्न है।वह अर्थचित्र को शब्दचित्र से श्रेष्ठ मानते हुए काव्य के चार भेदों की चर्चा करते हैं–:

1– उत्तमोत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य)

2– उत्तम काव्य (गुणीभूत व्यंग्य)

3– मध्यम काव्य (अर्थचित्र)

4– अधम काव्य (शब्द चित्र)

''शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमत्यर्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम्।'' [2]

जिसमें शब्द और अर्थ दोनों अपने को गौण बनाकर किसी चमत्कार जनक अर्थ को अभिव्यक्त करें, व्यन्जना वृत्ति द्वारा समझाये तो उसे उत्तमोत्तम काव्य कहते हैं। जैसे–

1. मेघदूतम् पृ० 15
2. रसगंगाधर 1/2

"निःशेषच्युत चन्दनं स्तनतटं निर्भृष्टरागोऽधरो।

..

वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।"[1]

2– दूसरे क्रम पर साहित्याचारों ने काव्य के द्वितीय भेद मध्यम काव्य का निरूपण प्रस्तुत किया है। राजानक मम्मट ने काव्य के द्वितीय भेद को मध्यम् काव्य कहा है–

"अतादृशिगुणीभूतव्यंग्यं मध्यमम्।" [2]

जहां व्यंग्य अर्थ प्रधान न होकर गौण हो जाय, वहां गुणीभूतव्यंग्य या मध्यम काव्य होता है। अर्थात् पद्य में व्यंग्य अर्थ की सत्ता तो अवश्य है, परन्तु वाच्य अर्थ व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा कहीं अधिक सुन्दर है।[3] ऐसी दशा में मध्यं कोटि का काव्य होता है। ध्वनिकाव्य से इसका अन्तर स्पष्ट है। ध्वनि काव्य में व्यंग्य अर्थ की प्रधानता तथा रुचिरता रहती है, परन्तु गुणीभूत व्यंग्य में वाच्य अर्थ का चमत्कार ध्वनि की अपेक्षा गौण कहीं अधिक होता है और इसलिए यहाँ व्यंग्यार्थ वाच्य की अपेक्षा गौण या अप्रधान रहता है।

पं0 जगन्नाथ ने गुणीभूत व्यंग्य को उत्तम काव्य की श्रेणी में रखा है जिसका लक्षण निम्न है–

"यत्र व्यंग्यम प्रधानमेव सच्चमत्कारणंतद् द्वितीयम्।"[4]

जिस काव्य में व्यंग्य अप्रधान होकर ही चमत्कार का कारण हो वही उत्तम काव्य होता है। उदाहरण स्वरूप–

---

1. काव्यप्रकाश पृ 30
2. काव्यप्रकाश पृ0 31
3. संस्कृत–आलोचना पृ0 93
4. रसगंगाधर पृ0 66

"ग्राम तरुणं तरुण्या नववन्जुलमन्जरी सनाथकरम्।

पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया।।"[1]

'ग्राम तरुण' इस पद से यह व्यक्त होता है कि ग्राम में एक ही तरुण है, अनेक युवतियों द्वारा प्रार्थ्यमान होने से उसका दुबारा जल्दी मिलना कठिन है। इसलिए पश्चाताप का अतिशय सूचित होता है। यहां व्यंग्य अर्थ की अपेक्षा वाच्य अर्थ के ही अधिक चमत्कारी होने से गुणीभूत व्यंग्य का यह उदाहरण दिया गया है।

इस प्रकार काव्य के ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य रूप उत्तम तथा मध्यम भेदों के लक्षण एवं उदाहरण का यहां तक अध्ययन किया गया तत्पश्चात काव्य के तीसरे भेद 'चित्रकाव्य' का लक्षण तथा उदाहरण विभिन्न आचार्यों द्वारा प्रस्तुत किये हैं उनकी समीक्षा करते हैं–

3– आचार्य मम्मट ने काव्य के तीसरे एवं अन्तिम भेद को अधम काव्य या चित्र काव्य कहा है तथा उसका लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

"शब्दचित्रंवाच्यचित्रमव्यंग्यंत्ववरंस्मृतम्।"[2]

अर्थात् व्यंग्य अर्थ से रहित 'शब्द चित्र' तथा 'अर्थ चित्र' दो प्रकार का अधम काव्य कहा गया है। इसी की व्याख्या पं0 बल्देव उपाध्याय ने निम्न प्रकार से प्रस्तुत की है– वह काव्य जिसमें व्यंग्य अर्थ का अभाव हो तथा वाच्य अर्थ की ही केवल मात्र सत्ता हो वह अवर या अधम काव्य कहलाता है।[3] इसी को चित्रकाव्य कहते हैं। इसमें अलंकार की प्रधानता

---

1. काव्यप्रकाश पृ0 31
2. काव्यप्रकाश 1/5
3. संस्कृत आलोचना पृ0 94

रहती है। शब्दालंकार के प्राधान्य होने पर होता है, शब्दचित्र। अर्थालंकार की प्रधानता होने पर होता है अर्थचित्र। इस काव्य में कवि का लक्ष्य केवल शब्द या अर्थ को ही सुशोभित करने का या सजाने की ओर रहता है और इसलिए वह अन्य काव्यांगों के लिए उद्योगशील नहीं होता है।

काव्य प्रकाश की समीक्षा करते हुए पं० जगन्नाथ ने द्वितीय भेद को 'मध्यम काव्य' ही कहा है और लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत करते हैं–

''यत्रव्यंग्यचमत्कारा समानाधिकरणो वाच्य चमत्कारास्तत्तृतीयम्।''[1]

वाग्देवताकार आचार्य मम्मट ने जो अधम काव्य के दो भेद किये पूर्वोक्ति भेदों को पं० जगन्नाथ ने भिन्न–भिन्न करके काव्य के चार भेद कर दिये हैं। मम्मट की दृष्टि से मध्यम काव्य ही अर्थचित्र अधम काव्य है। अर्थचित्र का उदाहरण मम्मट ने निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

''स्वच्छन्दोच्छल .... मन्दाकिनी मन्दताम्।।''[2]

4– इसी क्रम में पं० जगन्नाथ ने काव्य का एक चतुर्थ भेद प्रस्तुत किया है जिसे अधम काव्य कहते हैं। उन्होंने अधम काव्य का लक्षण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

''यत्रार्थचमत्कृत्युपस्कृता शब्द चमत्कृतिः प्रधानं तदधमं चतुर्थम्।''[3]

जिस काव्य में वाच्य अर्थ के चमत्कार से परिपोषित होकर शब्द का चमत्कार प्रधान हो उसे अधम काव्य कहते हैं। इस काव्य में भी कुछ न

---

1. रसगंगाधर पृ० 76
2. काव्यप्रकाश पृ० 32
3. रसगंगाधर पृ० 78

कुछ व्यंग्य अवश्य रहता है। परन्तु वह रहकर भी चमत्कार जनक न होने के कारण अविवक्षित रहता है अतः उसकी प्रधानता नहीं रहती है।

पंण्डित जी के इस चतुर्थ भेद को राजानक मम्मट ने शब्द चित्र के अन्तर्गत समाहित कर दिया है।[1] इस काव्य का उदाहरण पंण्डित जी ने निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

"मित्रात्रिपुत्रनेत्राय, त्रयीशात्रवशत्रवे।

गोत्रारिगोत्रजत्राय, गोत्रात्रे ते नमोनमः।।"[2]

कोई भक्त भगवान् की स्तुति करता है– मित्र–सूर्य और अग्निपुत्र चन्द्र जिनके नेत्र हैं, त्रयी– वेदों के शत्रुओं के जो शत्रु हैं तथा गोत्र – पर्वत के अरि–शत्रु (इन्द्र) के गोत्रजों – वंशजों (देवताओं) के रक्षक हैं उन गोपाल अथवा शिव आपको बार–बार नमस्कार है।

–: काव्य प्रयोजन :–

प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों ने काव्य के प्रयोजन पर विचार किया है क्योंकि किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने के लिए उसके प्रयोजन या फल को जानना आवश्यक हे, निष्प्रयोजन कार्यों में प्रवृत्ति नहीं होती है। इसमें सर्व प्रथम भरतमुनि ने नाट्य अथवा काव्य के प्रयोजन को बताते हुए कहा कि –

"दुःखातीनां श्रमातीनां शोकातीनां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजननं काले नाट्यममेतद् भविष्यति।।"[3]

---

1. संस्कृत आलोचना पृ0 95
2. रसगंगाधर पृ 79
3. नाट्यशास्त्र 1/174

आलंकारिक भामह का प्रयोजन निम्न है–

"धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।"[1]

इसी प्रकार रीतिवादी आचार्य वामन ने भी काव्य–प्रयोजन पर अपना विचार स्पष्ट करते हुए कहा है कि–

काव्यंसद्दृष्टादृष्टार्थंप्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्।[2]

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य को व्यवहार, ज्ञान, यश और धन प्राप्ति के साथ–साथ सत्यः परि निवृतये और शिवेतरक्षसये कहकर रस द्वारा निरतशम आनन्द की उपलब्धि तथा जीवन का शिव निर्माण या भव्य आदर्श बताया है।

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सव्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।"[3]

इसी प्रकार अन्य काव्य शास्त्रियों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से काव्य के प्रयोजनों का निर्धारण किया है। आचार्य विश्वनाथ ने भी इसी परिपाटी का अनुसरण करते हुए काव्य के प्रयोजन में स्व सम्मत दिया है–

"चतुर्वर्गफल प्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।

काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते।।"[4]

अर्थात् अल्पबुद्धि वालों को भी सरलता से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप–चतुर्वर्गफल की प्राप्ति काव्य से ही होती है। इस प्रकार इन पुरुषार्थों की प्राप्ति ही काव्य का प्रयोजन है।

---

1. काव्यलंकार 1/2
2. काव्यलंकार शूत्र 1/1/5
3. काव्यप्रकाश 1/2
4. साहित्यदर्पण 1/2

रामायण आदि काव्यों के अनुशीलन से अन्ततोगत्वा *"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिति कृत्याकृत्य प्रवृत्ति निवृत्ति उपदेशः।"*

अर्थात् रामादि की तरह हमारी सत्कार्यो में प्रवृत्ति होनी चाहिए और रावणादि के द्वारा किये गये अपकृत्यों से हमें दूर रहना चाहिए– इस उपदेश को प्राप्त करके इस जीवन का भव्य निर्माण करने लगते हैं। यही धर्म है। काव्य से धर्म प्राप्ति तो इष्टदेवताओं (विष्णुआदि) के चरणाविन्द द्वारा प्रसिद्ध ही हैं वेद के वाक्य–

("एकः शब्द सुप्रयुक्तः सम्मग्ज्ञातः स्वर्गलोके कामदुभवति।")

भी इस विषय में प्रमाण हैं।

काव्य से अर्थ प्राप्ति तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही है। कविजन काव्य की रचना करके धनोपार्जन करते हैं और जब काव्य से धन प्राप्त होगा तो काम नामक पुरुषार्थ की सिद्धि भी सम्भव है और यदि सहृदय व्यक्ति धर्मादिफल की इक्षा का परित्याग कर दे तो मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो जाती है क्योंकि शुभ कर्मों के फलत्याग और अशुभ कार्यों के अनाचरण से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः काव्य से ही मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है।

इस प्रकार काव्य से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि स्फुट है। इसके समर्थन में भामह ने भी समर्थन किया है। यद्यपि वेदशास्त्र भी चतुर्वर्ग की प्राप्ति के साधन हैं किन्तु नीरस होने के कारण केवल प्रौढ़ बुद्धि वालों को ही धर्मादि प्राप्ति का साधन बन सकते हैं किन्तु काव्य सरस होने के कारण सरल बुद्धि–जनों के लिए इसका सुगम साधन है। प्रश्न उठता है कि तब तो परिपक्व बुद्धि– वालों के लिए काव्य की कोई उपयोगिता नहीं होगी। इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं–

"कटु कौषधीयशयनीयस्य रोगस्य सितशर्करोपशमनीत्वे।

कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसीनस्मात्।।"[1]

अर्थात् कड़वी, कषैली औषधि से शान्त होने योग्य कोई रोग यदि मीठी सुन्दर सफेद खांड़ से दूर होने लग जाय तो कौन ऐसा अभागा रोगी होगा जो खांड़ खाना पसंद नहीं करेगा। अतः परिपक्व बुद्धि वालों के लिए भी काव्य की उपयोगिता होती है।

काव्य की उपयोगिता अग्निपुराण में उद्धृत है–

नरत्वं दुर्लभं लोके विख्यातत्र सुदुर्लभा।

कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तंत्र सुदुर्लभा।।[2]

अर्थात् पहले तो संसार में जन्म मिलना कठिन है, फिर विद्या प्राप्त होना और भी दुर्लभ है। इस पर भी कवित्व प्राप्त करना अति दुर्लभ धौर उसमें सामर्थ्य प्राप्त करना अर्थात् कविता की स्वाभाविक शक्ति पाना परम दुर्लभ है।

अग्नि पुराण में ही काव्य अथवा नाट्य को "त्रिवर्गसाधनम्" कहा गया है। विष्णु पुराण में समस्त काव्य साहित्य को विष्णु का ही अंश बताया गया है।

"काव्यालापाश्च ये केचिद् गीतमान्याखिलानि च।

शब्दमूर्तिधरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः।।"[3]

अर्थात् सभी काव्य और सम्पूर्णगीत शब्द रूपधारी महात्मा विष्णु के ही अंश हैं।

---

1. साहित्यदर्पण 1/2
2. अग्निपुराण (व्यास)
3. विष्णुपुराण (पराशर)

—: महाकाव्य की पृष्ठभूमि :—

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। जिसने भारतीय संस्कृति के विभिन्न रूपों, विधाओं का वर्णन किया है। संस्कृत साहित्य में काव्य (पद्य) का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जैसे की हमें 6000ई0पू0 (तिलक के अनुसार)[1] ऋग्वेद में ही प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् सामवेद तो पूर्णतः गेय ही है जिसमें ऋग्वेद के सूक्तों के साथ अन्य 150 सूक्तों[2] को जोड़कर पूर्ण किया गया है। इसी क्रम में उपनिषद काल आता है। जिन्हें वेद का अन्तिम भाग कहा जाता है।

इसी काल क्रम में वेद और लौकिक संस्कृत के बीच की कड़ी कहे जाने वाले 'पुराणों' का काल आता है। जिनमें पद्यों का पर्याप्त शंकलन प्राप्त होता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गये हैं।

महाकाव्य की सर्वप्रथम रचना महर्षि बाल्मीकि कृत रामायण है। इसी ग्रन्थ की समीक्षा करने पर ''महाकाव्य'' की कल्पना को आलंकारिकों ने प्रतिष्ठित किया महाकाव्य की महत्ता स्वरूप जन्य नहीं है। प्रत्युत गुणजन्य है। कोई भी काव्य अपने विपुलकाय के कारण महाकाव्य की पदवी से विभूषित नहीं किया जा सकता।[3] उसके लिए कतिपय लक्षणों की स्थिति अनिवार्य होती है।

---

1. सं0सा0का स0 इति0 –1/1/30
2. सं0 सा0 का इति0 – 1/2/10
3. संस्कृत आलोचना पृ0 102

रामायण और महाभारत के बाद कालिदास की उत्पत्ति तक जो महाकाव्य लिखे गये थे, वे केवल नाम मात्र ही शेष हैं। कालिदास की अलौकिक प्रतिभा और व्युत्पत्ति ने सभी पूर्ववर्ती काव्यों और महाकाव्यों को निष्प्रभ कर दिया। फलस्वरूप उनका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया। संस्कृत के कवियों की मनोरम वाणी में भारत की राष्ट्रीयता का अपूर्व सन्देश उल्लसित होता है। वे भारत को एक राष्ट्र ही नहीं मानते प्रत्युत उसे स्वर्ग से भी बढ़कर मानते हैं। कर्मभूमि भारत, भोगभूमि स्वर्ग से निःसन्देह महनीय विशाल तथा महत्तम हैं– इस तथ्य का स्पष्ट वर्णन संस्कृत काव्यों में विशदता के साथ किया गया है।

वैदिक प्रार्थना में समष्टि भावना का पूर्ण साम्राज्य विराजमान है। वैदिक ऋषि व्यष्टि के कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना नहीं करता है, प्रत्युत वह समग्र समष्टि के मंगल के लिए आशीर्वाद चाहता है। वह व्यक्ति तथा समाज से ऊपर उठकर समस्त विश्व के सुख–समृद्धि तथा मंगल के निमित्त ही प्रार्थना करता है।

मन्त्रों का प्रामाण्य इस विषय में अक्षुण्य है–

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।

यद् भद्रं तन्न् आसुव ।।"[1]

हे देव सविता, समस्त पापकर्मों को हमसे दूर करो। हमारे लिए जो भद्र वस्तु कल्याणकारी पदार्थ हो, उसे हमें प्राप्त कराइये।

---

1. यजुर्वेद 30/3

* * * * *

अध्याय एक
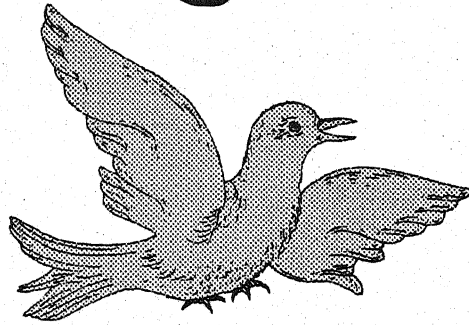
—: महाकवि माघ का जीवन परिचय :—

शिशु पाल वधम् के कर्ता का नाम माघ है। डॉक्टर याकोबी का मत है[1] कि जिस प्रकार भारवि ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए भारवि (सूर्य का तेज)[2] का नाम रखा उसी प्रकार शिशु पाल वध के अज्ञात नामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए माघ[3] का नाम धारण किया क्यों कि माघ मास से सूर्य की किरणें ठण्डी पड़ जाती है। परन्तु यह कल्पना बिल्कुल निराधार जान पड़ती है। शिशुपाल वध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही माघ है। उपाधि नही, माघ की जीवन घटनाओं का पता भोज प्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणि से लगता है। दोनो पुस्तकों में प्रायः एक सी कहानी दी है। माघ ने ग्रन्थ के अन्त में अपना थोडा परिचय भी दिया है।

"इति श्री भिन्नमाल वास्तब्य दत्तक सूनोर्महावैयाकरणस्य

माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये..... ।"[4]

इन सबको एकत्रित करने पर माघ के जीवन की रूप रेखा को हम जान सकते हैं। माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक और प्रधान मत्री भी था। अतः माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढ़्य ब्राहमण कुल में हुआ था।[5]

---

1. सं० सा० का इति पृ० 199
2. सं० हि० को० पृ० 737
3. सं० हि० को० पृ० 790
4. सं० सा० का समी० इति० पृ० 199
5. शि० पा० व० (भूमिका) पृ० 2

—: आविर्भावकाल :—

इनके पिता दत्तक बड़े विद्वान तथा दानी थे। गरीबो की सहायता में इन्होंने अपना धन अधिकांश लोगों में लगा दिया माघ का जन्म भीन माल में हुआ। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था, जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त 625 ई0 के आस पास अपने "ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त" को यही बनाया।[1] इन्होंने अपने को भीन मल्लाचार्य लिखा है। हुवेन सांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है। पिता की दान शीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। इसलिए ये भी खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी। राजा भोज का इन्होंने अपने घर पर बड़े आव भगत से सत्कार किया– धीरे–धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गये। इतिहास इसे असंभव सिद्ध कर रहा है। अतएव कुछ लोग भोज प्रबन्ध की कथा पर विश्वास नहीं करते परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे एक तो प्रसिद्ध धारा नरेश भोज (1010–50 ई0) थे और दूसरे भोज सातवीं सदी के उत्तरार्ध में हुये।[2]

संभवतः इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुये थे। भोजप्रबन्ध ने दोनों भोजों की कथाओं में गड़बडी मचा डाली है। माघ अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिए आये। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास

---

1. सं0 दिग्दर्शिका पृ0 233
2. सं0 सा0 का इति0 पृ0 200

"कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोज खण्डम्" आदि पद्यको जो माघ काव्य के प्रभात वर्णन (11सर्ग) में मिलता है लेगयी। इस पद्य को सुन कर राजा ने प्रभूत धन दिया। उसे लेकर माघ–पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बॉट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उनकी पत्नी के पास एक कौड़ी भी न बच रही परन्तु याचकों का ताँता बंधा ही रहा । कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राण छोड दियें प्रातः काल भोज ने माघ का यथोचित अग्नि संस्कार किया और बहुत दुःख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गई । माघ के जीवन की यही घटना ज्ञात है। यह सच्ची है या नही परन्तु इतना हम निःसंदेह कह सकते हैं कि माघ परम्परानुसार एक प्रतिष्ठित धनाढ़य ब्राहमण कुल में उत्पन्न हुये थे। जीवन के सुख की समग्र सामग्री इनके पास थी।

पिता ने इन्हें शिक्षा दी थी। पिता के समान ही दानी और उपकारी थे। संभवतः भोज के यहॉ इनका बड़ा मान था। माघ के समय निरूपण के लिए एक सन्देह हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्द वर्धन ने शिशुपाल बध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उदाहरण के लिए उद्धृत किया है।

"रम्याइति प्राप्तवतीः पताकाः।"[1] तथा *"त्रासा कुलः परिपतनम्।।"*[2]

फलतः माघ आनन्द वर्धन (नवम शती का पूर्वार्धे) से प्राचीन है। एक शिला लेख से इसका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ कीलहार्न राजपुताने के बसन्त गढ़ नामक किसी स्थान से वर्मलात राजा का एक शिला लेख मिला है। शिलालेख का समय संवत् 682 अर्थात् 625 ई0 है। शिशुपाल बध की हस्त लिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रय दाता का नाम भिन्न–भिन्न मिलता है। धर्मनाम वर्मनाम, धर्मलात, वर्मलात आदि अनेक पाठ भेद पाये जाते है। भीन माल के आस पास के

---

1. शि0पा0व0 3/53
2. शि0पा0व0 5/26

प्रदेश में इस शिला लेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न वर्मलात को असली पाठ मानकर तथा राजा सुप्रभदेव के आश्रय दाता को यथार्थतः भिन्न मानते है। अतः सुप्रभदेव का समय 625 ई0 के आस पास है। अतएव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई0 से लेकर 700 ई0 तक होगा।[1]

—: ग्रन्थवैशिष्ट्य :—

माघ का आविर्भाव काल सातवी सदी का उत्तरार्ध मानना उचित है। माघ की कीर्तिलता केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपाल बध' रूपी वृक्ष पर अवलम्बित है। श्री कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णन है। यही शिशुपाल 'महाकाव्य का ' वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणा स्रोत मुख्यतया श्री मद्भागवत है गौण रूप से महाभारत। वैष्णव माघ के ऊपर भागवत अपना प्रभाव जमाये था।[2] फलतः उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। सर्गो की संख्या 20 तथा श्लोकों की संख्या 1650 है। द्वारिका में श्री कृष्ण के पास नारद पधार कर दुष्टों के वध के लिए प्रेरणा देते है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाने के लिए बलराम तथा उध्दव के मन्त्रणा द्वारा निश्चय किया जाता है। श्री कृष्ण दल बल के साथ इन्द्रप्रस्थ की यात्रा करते है।

---

1. सं0 सा0 का इति0 पृ0 200
2. सं0 आ0 (भूमिका) पृ0 4

तदनन्तर महाकाव्य के पूरक विषयों का वर्णन आरंभ होता है। रैवतक का (4सं.) कृष्ण के रैवतक निवास का (5सं.) श्रतुओं बन बिहार का जल क्रीडा का सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का (9सं.) मधुपान और सुरत का (10सं.) प्रभात का (11सं.) प्रातः कालीन अभियान का (12सं.)

पाण्डवों से मिलन तथा सभा प्रवेश का (13सं.) राज सूर्य यज्ञ तथा दान का (14सं.) शिशुपाल द्वारा विद्रोह का (15सं.) दूतों की उक्ति प्रत्युक्ति का (16सं.) सभासदों के तथा युद्धार्थ कवच धारण का (17सं.) युद्ध का (18 तथा 19 सं.) तथा श्री कृष्ण और शिशुपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन 20 सर्ग में निष्पन्न होता है। इस विषय सूची पर आपाततः दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि लघु काय वृत्त को परिवृहित कर महाकाव्य के निर्वाह के लिए माघ के आठ सर्गो की योजना (4स. –11स.) अपनी प्रतिभा के बल पर की है। अलंकृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिवृहण कर हमारा काव्य साहित्य समृद्ध सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

माघ के महाकवि होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। माघ ने सम्प्रदायिक प्रेम से उत्तेजित होकर अपने पूर्ववर्ती भारवि से बढ़ जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। भारवि शैव थे[1] जिनका काव्य शिव के वरदान के विषय में है, माघ वैष्णव थे जिन्होने विष्णु विषयक महाकाव्य की रचना की। वह स्वयं अपने ग्रन्थ को *"लक्ष्मी पतेश्चरित कीर्तन मात्र चारू"* कहते है।

भारवि की कीर्ति को ध्वस्त करने में माघ नें कुछ भी उठा नहीं रखा। किरातार्जुनीयम् को अपना आदर्श मानकर ही माघ ने अपने काव्य में बहुत कुछ

1. शि०पा०व० (भूमिका) पृ० 3

अलौकिकता पैदा कर दी है। किरात के समान ही माघ काव्य भी मंगलार्थक श्री शब्द से आरम्भ होता है।

" श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि।

वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्य गर्भांगभुवं मुनिंहरिः।।" [1]

किरात के आरम्भ में श्रियः कुरूणमधिपस्य पालनी है, उसी प्रकार माघ के प्रारम्भ में श्रियः पति श्री मति शासितु जगत है। भारवि ने किरात में प्रत्येक सर्ग के अन्त में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है। माघ में इसी तरह अपने काव्य के सर्गान्त पद्यों में श्री का प्रयोग किया है।

" ओमित्यक्तवतोऽथ शांगि इति ब्याहृत्यवाचंनभ

स्तस्मिन्नुत्पतितेपुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं विभ्रति।

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यंप्रति

व्योम्नीवभ्रकुटिच्छलेन बदने केतुश्च कारास्पदम्।।" [2]

शिशुपाल वध तथा किरातार्जुनीय के वर्णन क्रम में समानता है। दोनो महाकाव्यों के प्रथम सर्ग में सन्देश कथन है। दूसरे सर्ग में राजनीति कथन है। अन्तर दोनों में यात्रा का वर्णन है। ऋतु वर्णन भी दोनों में है किरात के चतुर्थ सर्ग में तथा माघ के षष्ठ सर्ग में पर्वत का वर्णन भी एक समान है– किरात के पॉचवें सर्ग में हिमालय का तथा माघ के चौथे सर्ग में रैवतक पर्वत का अन्तर दोनो में संध्याकाल, अन्धकार, चन्द्रोदय, सुन्दरियों की जल केलि आदि विषयों के वर्णन कई सर्ग में दिये गये है।

---

1. शि०पा०व० 1/1 इत्यादि
2. शि०पा०व० 1/75 इत्यादि

किरात के तेरहवे तथा चौदहवें सर्ग में अर्जुन तथा किरात रूपधारी शिव में बाण के लिये वाद विवाद हुआ है। माघ के सोलहवें सर्ग में ऐसा ही विवाद शिशुपाल के दूत तथा सात्यकि के बीच हुआ है। किरात के पन्द्रहवें तथा माघ के उन्नीसवें सर्ग में चित्र बन्धों में युद्ध वर्णन हैं इस प्रकार समता होने पर भी रसिक जन माघ के सामने भारवि को हीन समझते हैं। *तावद भा भारवेर्भाति यावत् माघस्यनोदयः।*

उपमा अर्थ गौरव तथा पदलालित्य इन तीनों गुणों का सुभग दर्शन हमें माघ की कामनीय कविता पर होता है। बहुत से आलोचक पूर्वोक्त वाक्य को किसी माघ भक्त पण्डित का अविचारित रमणीय आभाणक में सत्यता है। माघ में कालिदास जैसी उपमाए भले न मिले, फिर भी इनमें न सुन्दर उपमाओं का आभाव है, न अर्थ गौरव की कमी। पदों का ललित विन्यास तो निःसन्देह प्रशंसनीय है। माघ की पद शयया इतनी अच्छी है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नही जा सकता। माघ केवल सरस कवि ही नही थे प्रत्युत एक प्रकाण्ड सर्व शास्त्र तत्वज्ञ विद्वान् भी थे।

—: राजनीतिक चिन्तन :—

भारवि में राजनीतिक पटुता अवश्य दिखाई पड़ती है। श्री हर्ष में दार्शनिक उद्भटता अवश्य उपलब्ध होती है, परन्तु माघ में सर्व शास्त्रों का जो परिनिष्ठित ज्ञान दृष्टि गोचर होता है। वह उन दोनो कवियों में विरल है। उनमें भी पण्डित्य है। परन्तु वह केवल एकांगी है। परन्तु माघ का पाण्डित्य सर्वगामी है। वेद तथा दर्शनों से लेकर राजनीति तक का विशिष्ट परिचय इनके काव्य में पाया जाता है। माघ श्रुति विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशंशनीय है। प्रातः काल के समय इन्होने अग्नि होत्र का सुन्दर वर्णन किया है। हवन कर्म में आवश्यक सामधेनी ऋचाओं का

उल्लेख है।[1] वैदिक स्वरों की विशेषता भी आपको भली भाँति मालुम थी। स्वर भेद से अर्थ भेद हो जाया करता है। इस नियम का उल्लेख मिलता है।[2] एक पद में होने वाला उदात्त स्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना डालता है। एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर अनुदात्त हो जाते है। इस स्वर विषयक प्रसिद्ध नियम का माघ ने शिशुपाल के वर्णन में बड़ी सुन्दर रीति से किया है। *"निहन्त्यरीनेक पदे यः उदात्तः स्वरानिव"* [3]। चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का बडा विस्तृत तथा सुन्दर वर्णन किया हुआ मिलता है।

—: दार्शनिक विश्लेषण :—

दर्शनों का भी विशिष्ट ज्ञान माघ में दिखाई पडता है। साख्य के तत्वों का निदर्शन अनेक स्थलों पर पाया जाता है। प्रथम सर्ग में नारद ने श्री कृष्णचन्द्र की जो स्तुति की है।

" उदासितारं निगृहीतमानसै –

गृहीतमध्यात्मदृशाकथंचन।

बहिविकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः,

पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।। [4]

वह सांख्य के अनुकूल है। योग शास्त्र की प्रवीणता भी देखने में आती है। *"मैत्र्यादि चित्त परिकर्म विदो विधाय।"* [5] आदि पद्य में चिन्त परिकर्म सबीज योग सत्व पुरूषन्यथाख्याति योग शास्त्र के परिभाषित शब्द हैं। आस्तिक दर्शनों को कौन कहे नास्तिक दर्शनों में भी माघ का ज्ञान उच्च्य कोटि का था। माघ बौद्ध

---

1. शि0पा0व0 11/41
2. शि0पा0व0 14/24
3. शि0पा0व0 2/95
4. शि0पा0व0 1/23
5. शि0पा0व0 4/45

दर्शनों से भी भली भाँति परिचित थे।[1] वे उसके सूक्ष्य विभेदों के भी ज्ञाता थे। वे राजनीति के भी अच्छे जानकार थे। बलराम तथा उद्धव द्वारा राजनीति की खूबियाँ दिखलायी गयी है। माघ में नाट्य शास्त्र के विभिन्न अंगों की उपमा बड़ी सुन्दरता से की है। माघ एक प्रवीण वैयाकरण थे। उन्होंने व्याकरण के सूक्ष्म नियमों का पालन अपने काव्य में भलीभाँति किया है। व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थों का भी उल्लेख उन्होने किया है। माघ सांख्य योग के पारखी कवि है, तो श्री हर्ष अद्वैत वेदान्त के मर्मज्ञ कवि हैं। माघ का ज्ञान ललित कलाओं में भी उँची कक्षा का था। वे संगीत शास्त्र के सूक्ष्म विवेचक थे।[2]

जगह–जगह पर संगीत शास्त्र के मूल तत्वों का निदर्शन कराया गया है। अलंकार शास्त्र में माघ की प्रवीणता की प्रशंसा करना व्यर्थ है। वह तो कवि का अपना क्षेत्र है माघ ने राजनीति के गूढ़ तत्वों को सम्यक् रूप से समझाने के लिये अलंकार शास्त्र के नियमों का सहारा लिया है। माघ ने एक सच्चे कवि अलंकारिक के ऊँचे पद से शब्द तथा दोनो को काव्य माना है। कहने का सारांश यह है कि माघ एक महान् कवि पण्डित थे। उनका ज्ञात हिन्दू दर्शन नाट्य शास्त्र, अलंकार शास्त्र, व्याकरण, संगीत आदि शास्त्रों में बडा उत्कृष्ट था। माघ ने अपना सम्पूर्ण ज्ञान कविता– कामिनी को अर्पण कर दिया। उन्होने कविता की बॉकी छटा दिखाने के लिए समग्र संस्कृत साहित्य के उपयोग करने में कुछ भी उठा नहीं रखा।

---

1. शि0पा0व0 2/28
2. शि0पा0व0 11/1

—: आधारग्रन्थ :—

संस्कृत भारती के महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के कथा वस्तु को श्री मद्भागवत के आधार पर ही मुख्यतया प्रस्तुत किया है।[1] काव्य की प्रधान घटना का मुख्य आधार भागवत पुराण ही है। माघ की काव्य शैली अलंकृत शैली चूड़ान्त दृष्टान्त है। जिसका प्रभाव अवान्तर कवियों के ऊपर बहुत ही अधिक पड़ा।

माघ परिष्कृत पद विन्यास के आचार्य है। सीधे—साधे शब्दों में पदार्थ निरूपण उँचे काव्य की कसौटी नहीं है। प्रत्युत वक्रोक्ति से मण्डित तथा शाब्दिक और आर्थिक चमत्कार के उत्पादक अलंकारों से सुसज्जित पद विन्यास ही माघ की दृष्टि में सच्चे काव्य का निदर्शन है।[2] फलतः इनके काव्य में समासों की बहुलता, विकट वर्णो की उदारता गाढबन्धों की मनोहरता पाठकों के हृदया वर्जन में सर्वथा समर्थ होती है। माघ के प्रवीण पद्य उस गुलदस्ते के समान है जिसे माली ने अपने रंगीन फूलों के मन्जुल मिश्रण से तैयार किया है।[3] और जो खूब कटे छँटे नपे तुले विदग्ध जनों के मनो विनोद के लिए प्रस्तुत एक नयनाभिराम कलात्मक पदार्थ होता है। परन्तु कहीं—कहीं विशेषतः उन्नीसवें सर्ग में युद्ध वर्णन के प्रसंग में चित्रालंकारों का बाहुल्य कवि शाब्दिक चमत्कारिणी प्रतिभा का निर्देश होने पर भी आलोचकों के नितान्त वैरस्य का कारण बनता है।[4] अर्थालंकारों का उपन्यास बड़ी ही मार्मिकता से किया गया है। माघ ने नाना प्रकार के लघुकाय गीति छन्दों का प्रयोग कर अपनी सहृदयता तथा विदग्धता का परिचय दिया है।

---

1. श्रीमद्भागवत् 10/71—75
2. सं0 सा0 का इति0 पृ0 204
3. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 203
4. सं0 आ0 (भूमिका) पृ0 4

—: भाषा प्रौढ़ता :—

मालनी छनद के तो माघ रस सिद्ध आचार्य हैं। एकादश सर्ग में प्रभात के वर्णन में प्रयुक्त मालनी की शोभा अप्रतिम है।

"प्रतिशरणमशीर्ण ज्योतिरन्याहितां

विधिविहित विरब्धैः सामिधेनीरधीत्य।

कृतगुरुदुरितौघध्व समध्वर्युवर्यैर्हु

तमयमुपलीढ़े साधु सान्नाय्यमग्निः।। [1]

माघ पण्डित कवि है। इन्होने नाना प्रकार शास्त्रों के विषयों का उपयोंग अपनी उपमा तथा उत्प्रेक्षा जमाने के लिए बड़ी सुन्दरता से किया है। उदात्त चरित शिशुपाल एक ही चाल में अपने शत्रुओं को उसी प्रकार मार भागाता है जिस प्रकार एक ही पद में विद्यमान उदान्त स्वर अन्य स्वरों को निघात स्वर (अनदान्त) बना देता है। इस उपमा वैदिक व्याकरण के मूल तथ्य का पाण्डित्य पूर्ण संकेत है। यही कारण है कि सामान्य जनों के लिए यह काव्य कुछ कठिन सा भान होता है। माघ के वर्णनों में चाहे वे प्राकृतिक हो या मानुसिक अपूर्व सजीवता है। कवि के प्राकृतिक पर्यवेक्षण का परिणाम उसके स्वाभाविक वर्णनों में खूब ही झलकता है। माघ ने अपने काव्य के उपवृंहण के लिए पर्वत, ऋतु, जल, क्रीडा, चन्द्रोदय प्रभात आदि का चित्र बड़ी ही कुशल तूलिका से चित्रित किया है। माघ का प्रभात वर्णन अपनी स्वाभाविकता तथा सरसता के कारण साहित्य संसार में अद्धितीय है।

शिशुपाल वध का समग्र एकादश सर्ग प्रातः कालीन रंग भरे दृश्यों की भव्य

---

1. शि0पा0व0 11/41

झाँकी प्रस्तुत करता है। ''रैवतक'' के वर्णन मे उद्भावित एक नवीन कल्पना माघ के ''घण्टा माघ'' अभिधान का कारण बनती है। पर्वत की हाथी से तथा उसके दोनों ओर लटकने वाले सूर्य तथा चन्द्र की घण्टा से तुलना प्राचीन आलोचकों को इतनी रूची कि उन्होंने मुग्ध होकर उन्हे घन्टा माघ का सिम्बल दे डाला।[1]

नवीन चमत्कारी उपमा का विन्यास माघ की विशिष्टता है। माघ के पात्रों में खूब सजीवता है। आकाश से उतरने वाले काले–काले मेघों के नीचे कर्पूर पाण्डुर महर्षि नारद के रूप चित्रण में कवि जितना सफल है उतना ही उनके सन्देश कथन में भी भगवान् श्रीकृष्ण का रूप तथा उनका सहिष्णु चरित्र बड़ा ही सुन्दर है। कवि आलोक सामान्य प्रतिभा सामान्य पदार्थो में भी विशिष्टता उत्पन्न कर देती है।[2] नित्य परिचित वस्तुओं में भी नवीनता का संचार करती है। वह प्रकृति के हृदय को समझता तथा मधुर शब्दों में उसे अभिव्यक्त करता है। प्रातः कालीन दिवाकर का बालक रूप में चित्रण कवि के सरस हृदय का परिचायक है। प्राची में सूर्योदय का यह रंगीन दृश्य एक चिरस्मरणीय वस्तु है।

वितत पृथु वरत्रा तुल्य रूपैर्मयूखैः

कलश इव गरीयान् दिग्भिरा कृष्य माणः।

कृतचपलवहंगालापकोलाहलाभि–

र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः।।[3]

चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सी के समान किरणों के द्वारा खीचा जाता हुआ बडे भारी कलश के समान यह सूर्य दिशारूपी नारियों द्वारा समुद्र के जल से

---

1. सं० सा० का इति० पृ० 203
2. सं० आ० (भूमिका) पृ० 4
3. शि०पा०व० 11/44

निकाला जा रहा है। जिस प्रकार कलश रस्सों की सहायता से बाहर निकाला जाता है। उसी प्रकार पूर्व समुद्र में डूबे हुये सूर्य दिशाएँ किरण रूपी रस्सियों से खीचकर निकाल रही है। जिस प्रकार जल में डूबे घडे को जल से निकालने के समय बडा कोलाहल मचता है। उसी प्रकार प्रातः काल की चुहचुहाती चिडिया शोर मचा रही है। उसी प्रकार प्रातः काल के समय पक्षीगणों का मनोहर कोलाहल कर्णपुट को सुख देता है। चारों ओर किरणे फैलने वाले बाल सूर्य का यह सुन्दर वर्णन है। रैवतक से बहने वाली नदियों के वर्णन में कवि अपने प्रेमी हृदय का परिचय देता है।

अपशंकमंकपरिवर्तनोश्चिताश्चलिताः

पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।

अनुरोदितीव करूणेन पत्रिणां

विरूतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।। [1]

पहाडी नदियाँ कल–कल शब्द करती हुई बह रही है। ये निडर होकर उसकी गोद में लोट–पोट किया करती हैं। अतः वे रैवतक की बेटियाँ है। आज वे अपने पति समुद्र से मिलने के लिए जा रही हैं। इस कारण रैवतक चिड़ियों के करूण स्वर के द्वारा जान पडता है कि प्रेम के कारण रो रहा है। कन्या के पतिगृह जाने के समय पिता का हृदय पिघल जाता है। वह कितना भी कठोर हो परन्तु द्रवीभूत अवश्य हो जाता है। *"पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेष दुखैर्नवैः।"* [2] अतः रैवतक भी पक्षियों के करूण स्वर से कन्याओं के लिए रो रहा है। ठीक है, पिता का हृदय कोमल होता ही है।

---

1. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 211
2. अ0शा0 4/6

भारवि के समान माघ में भी अर्थ गौरव के उत्पादनमें विशेष क्षमता थी।[1] वे भली भाँति जानते है कि कतिपय वर्णो के ही विन्यास से वाड़मय में अनन्त विचित्रता उसी प्रकार उपजती है जिस प्रकार केवल सात स्वरों से ग्रथित होने वाला गायन अनन्त रूप से विचित्र बन जाता है।

इसलिए वे वाणी के प्रतान को पटी के प्रसार के समकक्ष मानते है। अर्थ के गाम्भीर्य से माघ काव्य भरा पूरा है। यह दर्शनिक तथ्यों के उद्‌घाटन के अवसर पर विशेष रूप से खुलता है।

तस्य सांख्य पुरूषेण तुल्यतां

विभ्रतः स्वयम कुर्वतः क्रियाः।

कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्

वृत्ति भाजि करणे यथर्त्विजि।। [2]

होम आदि क्रियाओं को न करते हुए सांख्य शास्त्र में वार्णित पुरूष की समानता धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को अन्तः करण के समान ऋत्विजों द्वारा अधिष्ठित यज्ञ की भावना से कर्तापन की प्राप्ति हुई । चतुर्दश सर्ग में याग का वर्णन इतना विशद है[3] कि कवि के अनुष्ठान विधिज्ञता पर याज्ञिक जनरीझ उठते है। मन्त्र के उच्चारण का विधान इस प्रकार ऋत्विज लोग कह रहे थे कि उसके अर्थ समझने में किसी प्रकार के सन्देह का स्थान नहीं था।

संशयाय दधतोः सरूपतां दूर भिन्न फलयोः क्रियां प्रति।

शब्द शासन विदः समासयोर्विग्रहं ब्यवससुः स्वरेण ते।। [4]

---

1. किरा0 (भूमिका) पृ0 10
2. शि0पा0व0 14/19
3. शि0पा0व0 4/11
4. सं0 सा0 का इति0 पृ0 205

आशय है कि मन्त्रों में जहाँ कही ऐसे सन्देह उत्पन्न करने वाले समास आ जाते थे। जिनका विग्रह कई प्रकार से हो सकता था तो ऐसे स्थलों पर व्याकरण के ज्ञाता ऋत्विज् गण स्वर के ही द्वारा यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय विग्रह के द्वारा कर रहे थे। आदर्श राजा के स्वरूप का यह चित्रण कितना समुचित तथा चमत्कारी है।

बुद्धि शस्त्रः प्रकृत्यंगो धनसंवृन्तिकंचुकः।

चारेक्षणो दूत मुखः पुरूषः कोऽपि पार्थिवः।।[1]

शास्त्र जिसकी बुद्धि है जिसके अंग प्रकृति स्वामी अमात्य आदि हैं जिसका कवच दुर्वेद्य मन्त्र की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर है जिस का मुख संदेश वाहक दूत होता है। ऐसा राजा सामान्य जन न होकर अलौकिक पुरूष होता है। इस अल्पकाय श्लोक में अर्थ का गौरव पूरी मात्रा में विद्यमान है। माघ तो पद विन्यास के बाद शाह ठहरे न केवल शब्दों तथा पदों के ललित विन्यास में ही माघ निपुण थें, प्रत्युत नित–नूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के वो मानों श्लाघ्य शिल्पी है।

नूतन–नवीन शब्दों का इन्होने इतना अधिक प्रयोग किया है कि संस्कृत में यह आभाणक ही प्रसिद्ध है कि माघ के नवसर्ग बीतने पर नव शब्द मिलता ही नही *"नव सर्ग गते माघे नव शब्दों न विद्यते।"* यह कथन अर्थवाद नही है। प्रत्युत तथ्यवाद है। पद माघुर्य की निपुणता के आचार्य माघ की कविता कामनी की प्रशस्ति किन शब्दों में की जाय? उनके शब्दों में इतनी संगीतात्मक एक रसता है कि वीणा के तारों की झंकार की भाँति अर्थवबोध की प्रतीक्षा बिना किये ही वह

1. शि०पा०व० 14/24

श्रोताओं के हृदय को रसाप्लुत बना देती है। वसन्त की सुषमा का संकेत कितनी सुन्दरता से शाब्दी ध्वनि द्वारा विद्योतित हो रहा है।

"मधुरयामधुबोधितमाघवीमधुसमृद्धसमेधितमेधया।

मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षर मुज्जगे।।"[1]

श्लोक के सरस वर्णो के उच्चारण के समय जीभ फिसलती हुई मानो चली जाती है। बिना किसी परिश्रम के अनायास ही बिना अन्त तक पहुँचे वह ठहरने का नाम नही लेती। कर्ण कुहरों में अमृत रस घोलने वाली मधुर पदावली ही पर्याप्त आन्नद देने वाली है।[2]

इन पद्यों का स्वाद साधारण पाठक भी ले सकता है परन्तु माघ के पाण्डित्य मण्डित अर्थो को समझना उसकी समझ से बाहर की बात है। उचित ही है कि कवि पण्डित माघ की काव्य कला परखने के लिए हृदय के साथ मस्तिष्क की भी नितान्त आवश्यकता होती है। विचित्र मार्ग[3] के उद्भावक भारवि और माघ की अलंकृत शैली का प्रभाव केवल भारत वासी कवियों पर ही नहीं पडा प्रत्युत वृहत्तर भारत के भी कवि उससे उतने ही प्रभावित हैं जितने भारतीय कवि।

माघ काव्य की अनेक टीकाओं की उपलब्धि होती है। जिसमें से मुख्य है।1– बल्लभ देव निर्मित सन्देह विषौषधि 2– रंग राज रचित 3–एक नाथ रचित 4– चारित्र वर्धन प्रणीत 5– मल्लिनाथ रचित सर्वाकंषा 6– भरत मल्लिक रचित सुबोधा 7– दिनकर मिश्र रचित सुबोधनी 8– गोपाल रचित हसन्ती।[4] इनमें भी

---

1. सं0 सा0 का इति0 पृ0 206
2. शि0पा0व0 5/20
3. रघुवंश (भूमिका) पृ0 3
4. सं0 सा0 का इति0 पृ0 206

काल क्रम की दृष्टि से बल्लभ देव की टीका सर्व प्राचीन है। बल्लभ देव काश्मीर के निवासी होने से राजानक उपाधि से मण्डित थे। इनके पौत्र कैयट के उल्लेखानुसार इनका वंश क्रम इस प्रकार है आनन्ददेव बल्लभ देव–चन्द्रादिव्य–कैयट।

भारवि ने अपनी रचना किरातार्जुनीय के आरम्भ में श्री शब्द का प्रयोग कर मंगला चरण किया है। और प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोकों में भी उसी श्री शब्द के पर्याभूत लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है।

"श्रियः कुरुणामधिपस्य पालनीं

प्रजासु वृतिं यमयुङ.क्त वेदितुम्।

सवर्णिलिंगी विदितः समाययौ

युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।"[1]

तो माघ ने भी अपनी कृति शिशुपालबध में श्री शब्द का प्रयोग कर मंगला चरण किया है।[2] और प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोकों में लक्ष्मी शब्द का नहीं किन्तु उसी श्री शब्द का प्रयोग कर भारवि से भी अधिक चमत्कार ला दिया है। भारवि ने प्रथम सर्ग में अपनी रचना के लक्ष्य भूत दुर्योधन का प्रसंग किरात मुख से उपस्थित किया है तो माघ ने भी उसी सर्ग में अपनी रचना के लक्ष्य भूत शिशुपाल वध का प्रसंग देवर्षि नारद जी के मुख से उसके जन्मान्तरीय दुराचारों का वर्णन कराते हुये विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। भारवि ने तपश्चर्या में प्रवृत्त अर्जुन को तपस्या में बाधा डालने के लिये देवांगनाओं का प्रसंग उपस्थित किया है तो माघ ने भी यादवड़नाओं का प्रसंग उपस्थित कर किरातार्जुनीय की अपेक्षा अपनी कृति को श्रेष्ठ प्रमाणिक कर दिया है।

---

1. किरा0 1/1
2. किरा0 1/46

उभय कवियों के प्रभात वर्णन में अत्यधिक साम्य है। भारवि ने अर्जुन की कठोर तपश्चर्या का वर्णन किया है तो माघ ने भी महाराज युधिष्ठिर की यज्ञ सभा एवं राज सूय यज्ञ का विस्तृत वर्णन किया है। भारवि ने अर्जुन के समक्ष किरात वेषधारी शिव जी के दूत–मुख से अपने स्वामी शिवजी की प्रशंसा कराई है।[1] भारवि कृत अर्जुन तथा किरात वेषधारी शिव जी के भयंकर युद्ध के वर्णन से भी बढ़चढकर माघ ने शिशुपाल तथा यादव पाण्डवों के रोमांच कारी मल्ह युद्ध का बहुत विस्तृत वर्णन किया है। भारवि ने पंचदश सर्ग में युद्ध वर्णन प्रसंग में गोमूत्रिका बन्ध सर्वतोभद्र अर्द्धभ्रमक प्रति लोमानुपाद यमक आदि विकट बन्ध मय छन्दों की रचना की है[2] तो माघ ने भी उन्नीसवें सर्ग में श्री कृष्ण भगवान तथा शिशुपाल के युद्ध वर्णन तथा भारवि ने अपने ग्रन्थ को अठारहसर्गो में समाप्त किया है तो माघ ने शिशुपाल को वीससर्गों में समाप्त कर यह सिद्ध कर दिया है कि भारवि की कृति अठारह तो मेरी बीस अर्थात माघ भारवि से आगे बढने में सफल हुये है।

—: प्रकृति प्रेम :—

युद्ध का विचार स्थगित कर देने से सौम्य मूर्ति श्री कृष्ण भगवान अनेक विधि बहुमूल्य, श्वेतच्छत्र, चामर, मुकुट, कुण्डल, केयूर, कंकण, मुक्ताहार, कौस्तुभ मणि मेखला, करधनी, आदि। भूषण तथा तप्त सुवर्णवत् चमकते हुये पीताम्बर को धारण कर साथ में कौमोद की गदा नन्दक खडग शारंग धनुष[3] पांचजन्य शंख[4] को ग्रहण कर सर्वत्र अप्रतिहत गति रथ पर सवार हुये जिस पर गरूण चिन्हाकित

---

1. किरा0 पृ0 200
2. सं0 दिग्दर्शिका पृ0 234
3. मेघदूतम् 2/50
4. गीता 1/15

पताका फहरा रही थी और उनके पीछे बडी–बडी पताकाओं को फहराती हुई अपरमित चतुरंगिणी सेना चल रही थी। उनको देखने के लिए नागरिकों की भीड़ आगे निकलने वाली गलियों के रास्ते पहले पहुँच जाती थी। श्री कृष्ण भगवान् की राजधानी सुवर्णमयी द्वारिका पुरी समुद्र को मध्य में विदीर्ण कर ऊपर निकली हुई बड़वानल[1] की ज्वाला सी शोभती थी। उस पार की श्यामल बनावलि[2] बहुत सुहावनी लगती थी। तट पर मोती विखर रहे थे और शीतल मन्द सुगन्ध वायु से सैनिकों का श्रम दूर हो जाता था। ऐसे समुद्र के तट पर पडाव डालकर सैनिकों ने लवंग के फूलो का कर्णभूषण पहना और छक कर नारियल का पानी पिया।

आगे चलते श्री कृष्ण भगवान ने बडी–बडी चट्टानों के ऊपर उठते हुये बादलों से सूर्य मार्ग को पुनः रोकने के लिए उद्यत विन्ध्य पर्वत के समान प्रतीयमान रैवतक को देखा। भगवान् को उत्कण्ठित देख उनका सारथि दारूक उस रैवतक पर्वत का वर्णन करने लगा। उसने कहा सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर दोनो पार्श्वो में लटकते हुये दो घण्टाओं वाले हाथी के समान यह पर्वत शोभता है।

"उदयति विततोर्ध्व रश्मिरज्जा

वहिभरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।

दहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा

द्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।[3]

1. कादम्बरी (सुक0) पृ0 18
2. मेघदूतम् 1/17
3. (a) शि0पा0व0 4/20
   (b) सं0 सा0 का स0 इति0 पृ0 203
   (c) सं0 सा0 का इति0 पृ0 202

यहाँ कम्बल विचरते है स्त्री सहित सिद्ध गण विहार करते है रात्रि में औषधियाँ चमकती है। पुष्पित कदम्ब को कम्पित करती हुयी सुखकर वायु बहती है। यहाँ दरिद्रय नाशक रत्नों की खाने है तथा यह किन्नरों की बिहार स्थली हैं यहॉ चमरी गायें तथा विशाल काय हाथी विचरते हैं अनेक प्रकार से भोग भूमि होता हुआ भी यह पर्वत सिद्ध भूमि भी है। क्योंकि यहॉ मैत्री आदि चारों वृत्तियों के ज्ञाता अविद्या आदि पॉच क्लेशों का त्यागकर सवीज योग को प्राप्त हुये है। इस प्रकार परम श्रेष्ठ यह पर्वत ऊपर उठते हुये श्यामल मेघों से मानों आपका अभ्युत्थान करने के लिए ऊपर उठ रहा है।

दारूक से रैवतक पर्वत का उदात्त वर्णन सुनकर उस पर बिहार करने के लिये श्रीकृष्ण भगवान् ने सेना पति सहित प्रस्थान किया कहीं झूमते हुये गजराजों के झुण्ड चल रहे थे तो कही बडे–बडे घोडे पंक्ति बद्ध होकर अपने पदा घातों के द्वारा नगाड़ा बजाते हुये से चल रहे थे। एक ओर रथ श्रेणि भूमि की धूलि को महीन करती हुयी चल रही थी तो दूसरी तरफ झुण्ड के झुण्ड भारवाही ऊँट चल रहे थे। इस प्रकार आगे बढती हुयी सेना यथास्थान पहुँचकर अपनी–अपनी इच्छा के अनुकूल स्थानों पर ठहर गयी। उस सेना निवेश में एक ओर पर्वताकार विशालकाय हाथी के झुण्ड चुबा रहे थे और दूसरी ओर खूटे को उखाडकर भागते हुये घोडे सैनिको को व्याकुल कर रहे थे एक ओर कोई बैल बोझा उतारने पर पेड़ के नीचे बैठकर जुगाली कर रहा था तो दूसरी ओर कोई नदी तट को उखाडता हुआ उच्चस्वर से गरज रहा था।

" अपशंकमंक परिवर्तनोचिताश्चलिताः

पुरः पतिमुपेतुमात्मजः।

अनुरोदितीव करूणेन पत्रिणां

विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।"[1]

इस प्रकार पड़ाव में स्थित यादव नृपतियों की प्रशस्तियों को यथा समय वैतालिक गा रहे थे और वहॉ पर सान्ध्य मेघ के समान अरूण वर्ण के मण्डप शोभ रहे थे।

इस प्रकार रैवतक पर्वत पर बिहार करने की इच्छा करने वाले श्री कृष्ण भगवान् की सेवा करने में वसन्तादि छहों ऋतुयें एक साथ प्रवृत्त हुयीं। वसन्त ऋतु के आने पर वृक्षों ने नव पल्लवों को तथा लताओं ने सुरक्षित पुष्पों को उत्पन्न कर दिया।

"मधुरया मधुबोधितमाधवी

मधुसमृद्धसमेधितमेधया।

मधुकरांगनया मुहुरुन्मद

ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।" [2]

शीलत मन्द सुगन्ध हवा बहने लगी कुरूबक चम्पा बकुल के फूल विकसित हो गये। आम के पेडो पर मज्जरियॉ लग गयी कोयले कुहुकने लगी भौरे गुंजार करने लगे और काम पीडित रमणियों की दूतियाँ उनके पति के पास जा जा कर उनकी अवस्थाओं का वर्णन करके उन्हें रमणियों के पास जाने के लिए कहने लगी। हेमन्त ऋतु के उपस्थित होने पर हाथी डूब जाने योग्य अगाध जलाशयों का पानी जमकर कम हो गया, परन्तु वियोगिनी रमणियों के आँखों से गर्म ऑसुओं की धारा बहने लगी। कामी जन परस्पर विविध प्रकार से सुरत में प्रवृत्त हो गये और शिशिर ऋतु[3] के उपस्थित होने पर पुस्पित प्रियड.गु लता पर भ्रमर

1. शि0पा0व0 4/47
2. शि0पा0व0 6/20
3. ऋतुसंघारम (भूमिका) पृ0 6

गुंजार करने लगे। सूर्य किरणों का वेग मन्द पड गया। रमणियाँ प्रियतमों का आलिंगन कर पयोधरस्थ अपनी उष्णता को सार्थक करने लगी।

छहों ऋतुओं का एक साथ प्रादुर्भूत होने पर श्री कृष्ण भगवान और यादव लोग भी अपनी अपनी रमणियों के सहित उपवन बिहारार्थ शिविर से चल पडे । उस समय रमणियां अनेक प्रकार के काम जन्य विलास करती हुई पतियों केसाथ जा रही थी। यादवगण भी विविध प्रकार से काम कला का प्रदर्शन करते हुये उनकी विलासिता को बढा रहे थे। नदियों के तीर पर बोलते हुये सारस पक्षियों का शब्द काम धनुष के टंकार के समान कामिजनों को प्रतीत हो रहा था। गुंजार करते हुये भ्रमर[1] समूह रमणियों साहित यादवों को मानो दूर से ही बुला रहे थे। अर्द्धविकसित कलियाँ वायु के स्पर्श एवं भ्रमरों के बैठने से पूर्णतः विकसित होकर रमणियों का काम वर्धन कर रही थी। कोई हाथो को ऊपर[2] उठा कर अंगडाई लेती हुयी पति के सामने अपना मनोभाव प्रकट कर रही थी किसी नवोढा के पसीने को पोछने के बहाने उसका नायक चतुरता से उसका आलिंगन कर रहा था। अन्त में प्रियतम के बार–बार पोछने से भी पसीना बहना बन्द न होने पर रमणियों ने जलक्रीडा से उसे दूर करना चाहा।

वन बिहार से थकी हुयी यादवांगनाएँ अर्धनिमीलित नेत्रा होकर जलाशय की ओर बढी उनकी संख्या अधिक होने से मार्ग ठसा–ठस भरा था जलाशय के मार्ग में कही पर हंसिनी बैठी थी कहीं पर पत्थरों से टकराती हुयी नदियाँ द्रुत वेग से बह रही थी कहीं मोती बिखरे हुये थे और भ्रमर समूह पुष्प को छोडकर

---

1. शि०पा०व० पृ० 139
2. सं० सा० का स० इति० पृ० 202

अधिक सौरभ के लोभ से रमणियों के मुख पर आ रहे थे। चकवा–चकई का चुम्बन कर रहा था।[1] ऐसे मार्गो से जब यादवांगनाएँ जलाशय के पास पहुँची तब पक्षियों के कलख से स्वागत करते हुये जलाशय ने कमल युक्त तरंगों से यादवांगनाओं के लिए अर्ध्य देकर उनका आतिथ्य किया। उस समय भगवान की पटरानियों के पाणि कमल से जलाशय के कमलों की शोभा तुच्छ हो रही थी। जल में पति के साथ प्रवेश करना नहीं चाहती हुयी किसी नवोढा को जब उसकी सखियों ने जब उसे पानी में ढकेल दिया तब डूबने के भय से पति की देह में चिपक गयी। पानी में भीगे केश को सुखाती हुयी किसी रमणी के केश पति के समीपस्थ होने के कारण स्वेद युक्त होते रहने के कारण भीगे ही रहते थे। रमणियों के इस प्रकार जलक्रीड़ा कर बाहर निकलने पर सूर्य भगवान अस्तोन्मुख हो गये।

"अभिताप संपद मथोष्ण रूचिर्निज तेजसाम सहमान इव।
पयसि प्रतिपत्सुरपराम्बु निधेरधिरोढुमस्त गिरिमभ्यपतत्।।" [2]

इस (जल तरंगों में डूबने की इच्छा करने) के बाद अपने तेज समूह के अतिसय तीव्र सन्ताप को मानों नहीं सहन करते हुये सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में गिरने के इच्छुक होकर अस्ताचल पर चढ़ने के लिये दौड पडे। पक्षि समूह कलख करते हुये अपने निवास वृक्ष की ओर जा रहे थे। सन्ध्या के प्रादुर्भूत होने पर मदोन्मत्त कामनियाँ नेत्रों पर सुरमा लगा रही थी क्योंकि दिन में शिथिल पडी हुयी रमणियों की कामवासना जाग्रत हो गयी थी। उसी समय शेषनाग की

1. सं० सा० का इति० पृ० 203
2. शि० पा० व० पृ० 206

मणियों की किरणों के समान पूर्व दिशा में चन्द्रिका छिटकने लगी। कोई रमणी जघनस्थ पर हाथ में कपोल मण्डल रखकर अव्यक्त मधुर गीत गाती हुयी पति के आगमन के लिए उत्कंठित हो रही थी। कोई युवक आते ही प्रियतमा का गाणालिंगन कर रहा था। कोई मानव स्त्री प्रियतमा को देखते ही नीवी के शिथिल होने से लज्जित हो अधोमुखी हो रही थी किन्तु मद्यपान करने से लज्जा छोड़कर सभी रमणियाँ सुरत में अग्रसर होने लगी।

कामी लोग मद्यपान करते समय उससे भी अधिक सुस्वादु रमणियों का अधर पान कर रहे थे। भ्रमर समूह मद्य के सौरभ से आकृष्ट होकर उस पर गूँज रहे थे। मदिरा के प्याले में प्रियतम का मुख प्रतिबिम्बित हो रहा था। कोई नायक प्रियतमा के द्वारा पीकर दिया गया मद्य अभूत पूर्व स्वाद युक्त मानकर पी रहा था। पति द्वारा गाढालिंगन करने पर[1] रमणी के स्तनाग्र कठोरतम होने से दब नहीं रहे थे। पति के आलिंगन करने पर स्वेद से प्रियतम का वस्त्र गीला शरीर पुलकित और नीवी[2] नीचे की ओर खिसक रही थी। इस प्रकार बाह्य रति करने के बाद आभ्यन्तर सुरत करने की इच्छा करते हुये नायक रमणियों के स्तनादि पर हाथ बढ़ा रहे थे। किन्तु मुस्कराती हुई रमणियॉ पति की सम्भोगेच्छा का विरोध करती हुई उसके हाथ को रोककर पति भर्त्सिना कर रही थी और अधर दंशन तथा स्तन मर्दन से आनन्द पाती हुयी भी बनावटी रोना रोकर अपने पति को वशीभूत कर रही थीं। उस समय रमणियों के सीत्कार करूणा प्रेम तथा निषेध सूचक वचन स्मित और भूषण ध्वनि कामिजनों की काम वृद्धि में सहायक बन रहे थे।

1. अ0शा0 3/14
2. मेघदूतम् 1/24

श्री कृष्ण भगवान को जगाने के लिए मधुर कण्ठ वाले बन्दी लोग उच्च स्वर से प्रभाती गाने लगे।

"उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छिता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्र्यन्तावामयः स च।।"[1]

बन्दियों की प्रभाती सुनकर भी कामी लोग सुरत के आलस्य से करवट बदल रहे थे। चन्द्रमा के अस्त प्राय होने से पूर्वदिशा स्वच्छ हो रही थी। चन्द्र की शुभ्र किरणों से पश्चिम दिशा कुछ अरूण वर्ण होकर शोभ रही थी। पाण्डुवर्ण चन्द्रमा की कान्ति रमणियों की कान्ति से हीन हो रही थी। नवोढा नायिकाएं रात्रि के विविध सम्भोग वृत्तान्तों का स्मरण कर स्वयं लज्जित हो रही थी। द्विज लोग अग्नि होत्रादि प्रातः कृत्य प्रारम्भ कर रहे थे। नदियों की धारा सूर्य किरणों के सम्पर्क से लाल हो रही थी। चन्द्र किरणों से स्फटिक मणि निर्मित सा प्रतीत होता हुआ रात्रि का वह सुधाधवल प्रासाद इस समय सूर्य किरणों के सम्पर्क से कुंकुम जल से स्नात सा प्रतीत हो रहा था। इस प्रकार कल्पान्त में जगत् का संहार कर क्षीर समुद्र में सोये हुये विष्णु भगवान के समान सूर्य तारा समूह को नष्ट कर आकाश में सोता हुआ प्रतीत होने लगा।

प्रातः काल सूर्योदय के बाद भी श्रीकृष्ण भगवान सर्वगुण सम्पन्न मनोरम रथ पर आरूढ होकर शिविर से बाहर निकले। रथ तथा हाथियों के शब्द परस्पर मिश्रित होने पर स्पष्ट नहीं मालुम पडते थे केवल घोडो की हिन हिनाहट सुन पडती थी। और विशाल सेना के नदी पार करते समय नदी का प्रवाह उल्टा ही बहने लगता था। हाथियों के प्रवेश करने के पहले ही घोडों की टापों से नदी

---

1. (a) शि०पा०व० 2/10
   (b) सं० सा० का स० इति० पृ० 213

पंकिल हो जाती थी तथा हाथी दाँतो से तटो को तोड तोड़कर, नदी को स्थल तथा अपने मद जल के प्रवाहों से स्थल को दूसरी नदी बना देते थे। इस प्रकार वह विशाल सेना[1] बहुत से नगरों को पार करती हुयी अगम अथाह यमुना नदी[2] के तट पर आकर रूक गयी। उस समय वह यमुना नदी बल से पृथ्वी को पार करने के लिए उद्यत श्री कृष्ण सेना की सीमा जैसी ज्ञात हो रही थी। इस प्रकार यमुना को पार कर भी कृष्ण भगवान की वह सेना हस्तिनापुर की ओर बढती जा रही थी।

श्री कृष्ण भगवान की सेना के यमुना के पार आजाने का समाचार सुनकर भीमादि चारों अनुजों के साथ उनकी अगवानी के लिए अत्यन्त द्रुतगति से आते हुये महराज युधिष्ठिर के रथ के घोडो की टापों से उत्पन्न शब्द एक प्रकार का बाजा बजा रहा था। श्री कृष्ण भगवान को दूर से ही देखकर युधिष्ठिर रथ से पहले उतरना चाहते थे किन्तु श्री कृष्ण भगवान् झट उनसे भी पहले रथ से उतर पडे अपने गौरव को बढाते हुये त्रिलोक वन्दित भगवान श्री कृष्ण ने बुआ[3] के पुत्र युधिष्ठिर को नम्र होकर प्रणाम किया और युधिष्ठिर ने छाती से लगाकर भगवान का आलिंगन किया[4] नाग मणियों के बने हुये उस सभा स्थल का प्रांगण मेघ के गरजने से वैदूर्य मणियों [5] के अंकुरो से युक्त हो जाता था उस सभा स्थल पर नलिनी पत्रों से पानी बिल्कुल ढक गया था। इस प्रकार के सभा स्थल में पहुँच कर भगवान श्री कृष्ण तथा युधिष्ठिर रथ से उतर कर उच्चतम मनोहर रत्न जटित स्वर्ण सिंहासन पर दोनो एक ही साथ बैठे।

---

1. शि0पा0व0 2/9
2. शि0पा0व0 पृ0 208
3. शि0पा0व0 (भूमिका) पृ0 34
4. सं0 सा0 का स0 इति0 पृ0 215
5. मेघदूतम् 2/16

सिंहासन पर आरूढ भगवान श्री कृष्ण से युधिष्ठिर ने कहा हे भगवान! मैं इस समय यज्ञ करना चाहता हूँ[1] आप आज्ञा देकर अनुग्रहीत कीजिए क्योकि मुझे आपके ही कारण धर्मराज कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।[2] दोष हीन यज्ञ करने का इच्छुक मै सम्पूर्ण यज्ञ सामग्रियों को एकत्रित कर आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपके सन्निध्य से मेरा यज्ञ निर्विध्न पूर्ण हो जायेगा। इत्यादि बाते सुनकर भगवान ने कहा हे राजन मैं आपके शासन में रहता हुआ कठिनतम आज्ञा का भी पालन करने में सर्वदा तत्पर हूँ आप मुझे अर्जुन से भिन्न न कीजिए। जो राजा आपके बतलाये हुये कार्य को भृत्यवत् बनकर नहीं करेगा। उसके शिर को मेरा यह सुदर्शन चक्र पृथक कर देगा। युधिष्ठिर ने भगवान की आज्ञा लेकर युद्ध किया और अमूल्य उपहारों का दान कर ब्राह्मणों की आज्ञा से ब्राह्मणों तथा राजाओं के समुदाय में सर्व गुण सम्पन्न ब्रह्म के अंश योगियों के ध्येय एवं सृष्टि पालक संहार करने वाले भगवान श्री कृष्ण को प्रथमाहर्य देकर महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ सम्पन्न किया।

महाकवि माघ संस्कृत काव्य परम्परा में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। भारवि ने जिस अलंकृत काव्य शैली का श्री गणेश किया था, माघ में उसका पूंण विकास हुआ था। पुरातन कवियों से माघ की उत्कृष्टता को प्रतिपादित करते हुये पण्डितों ने इस उक्ति को प्रस्तुत किया है। कालिदास में उपमा का सौन्दर्य है, भारवि में अर्थ गौरव का वैशिष्टय तथा दण्डी में पदलालित्य का चमत्कार परन्तु माघ में उक्त तीनों गुण पाये जाते है।

---

1. शि0पा0व0 (भूमिका) पृ0 33
2. शि0पा0व0 11/41

"उपमा कालिदासस्य भारवेअर्थ गौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघेसन्ति त्रयोगुणाः।।" [1]

—: उपमा :—

महाकवि माघ की उपमायें अत्यन्त सुन्दर हैं। जिस प्रकार उपमा सौन्दर्य से प्रभावित होकर कालिदास को दीप शिखा की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसी प्रकार माघ को उपमा के कारण घष्टा माघ की उपाधि से विभूषित किया गया। उपमा का उदाहरण कितने सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत करते है।

"उभौ यदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा

वाकाशगंगापयसः पतेताम्।

तेनोपमीयेत तमालनीलमा

मुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः।।" [2]

अर्थात यदि आकाश में आकाशगंगा के जल से दो पृथक्—पृथक् प्रवाह गिरे। उसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण के गगन सदृश नीलवर्ण के वक्षः स्थल पर पडा हुआ मोतियों का हार सुशोभित हो रहा है।

—: अर्थगौरव :—

माघ के काव्य में अर्थ गौरव की प्रधानता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक—

---

1. दश0च0 (भूमिका) पृ0 5
2. शि0पा0व0 3/8

"उदयशिखरि श्रृंगप्रांगणेष्वेष रिंगन्

सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।

विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः

परिपतति दिवाऽङके हेलया बालसूर्यः।।"[1]

जिस प्रकार कोई छोटा बालक ऑगन में खेल रहा है, स्नेहिल माँ उसे बुला रही है और वह हंसते हुये अपने कोमल कर फैलाकर उसकी गोद में जा गिरता है, उसी प्रकार यह बालसूर्य भी उदयाचल के शिखर रूपी प्रांगण में थिरकता हुआ खिले हुये कमल मुखों से हॅसती हुई कमलिनियों को देखते–देखते अपने कोमल करों को फैलाकर पक्षियों के कलख के व्याज से पुकारती हुई अपनी आकाश रूपी मॉ की गोद में लीला पूर्वक उछल रहा है।

माघ ने अपने काव्य में पदों की सुन्दर योजना की है। इनकी भाषा साहित्यिक सरसता के साथ ही साथ प्रकृष्ट पाण्डित्य से पूर्ण है। उन्होने प्रायः नये से नये शब्दों का प्रयोग किया है। अतेव उनके विषय में प्रसिद्ध है – *"नवसर्गगते माघ नवशब्दों न विद्यते।"*[2] भाषा में प्रौढ़ता[3] या सरसता प्रसंगानुकूल पायी जाती है। यही इनके ग्रन्थ की विशिष्टता है। महाकवि माघ नें अलंकृत काव्य शैली का आश्रय लिया है। अलंकारो के विषय में भारवि से एक पग आगे बढगये हैं। यही कारण है कि उनकी काव्यशैली में कृत्रिमता, समास बहुलता, विकट वर्णो की अधिकता, प्रगाढ बन्धों की कठोरता आ गयी है। अपने ग्रन्थ में

1. शि0पा0व0 11/47
2. किरा0 (भूमिका) पृ0 10
3. सं0 सा0 का इति0 पृ0 204

महाकवि माघ ने जिस प्रकार उपमा, अर्थगौरव, पदलालित्य पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है।[1] उन्ही विशेषताओं से ग्रन्थ का वैशिष्ट्य सर्वोपरि है। इस अध्याय में महाकवि माघ का जीवन परिचय, आविर्भाव काल एवं ग्रन्थ की विशिष्टता पर विचार किया गया है। सच ही कहा गया है –

कविता वनितावृतवन्धवरः,

सरसालिरसालरसान्वितधीः।

रसभावविभाभृतभूरियशाः,

कविमाघवरः कृतिचित्तहरः।।[2]

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (भूमिका) पृ0 89
2. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 198

* * * * *

अ
ध्या
य
छो
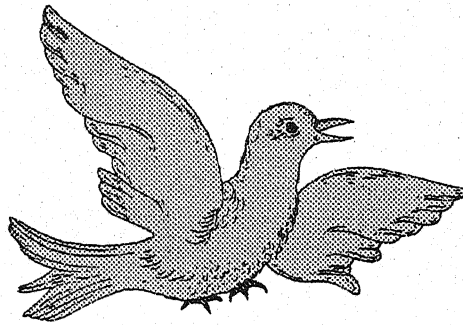
महाकवि भारवि का जीवन परिचय

भारवि के जीवन वृत्त के विषय में उनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम् एक दम मौन है। दक्षिण के 'एहोल' शिलालेख में इनका नामोल्लेख पाया जाता है।

"पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासुच।

समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।।" [1]

अनुमान यही होता है कि भारवि दक्षिण भारत के रहने वाले थे। सौभाग्य वश दण्डी ने अवन्तिसुन्दरीकथा के आरम्भ में अपने पूर्वजों का वृत्तान्त कुछ विस्तार के साथ दिया है। लिखा है कि दण्डी के चतुर्थ पूर्व पुरूष, जिनका नाम दामोदर था, नासिक के समीपस्थ अपनी जन्म भूमि को छोड. कर दक्षिण प्रान्त में चले गयें। अवन्ति सुन्दरी कथा के सम्पादक पं0 रामकृष्ण कवि ने इन्हें दामोदर के साथ भारवि की एकता मानी है।[2] अर्थात उनकी सम्मति में भारवि ही आचार्य दण्डी के चतुर्थ पूर्व पुरूष (प्रपितामह) थे, परन्तु जिस वाक्य के आधार पर यह अभिन्नता मानी गयी थी उसका पाठ अशुद्ध होने के कारण इस सिद्धान्त को अब बदलना पड़ा है भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे, बल्कि प्रपितामह के मित्र थे,[3] क्योंकि भारवि की सहायता से ही दामोदर, राजा विष्णुवर्धन की सभा में प्रविष्ट हुये। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारवि दक्षिण भारत के निवासी थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णु वर्धन के (सप्तम शतक) सभा पण्डित थे।

---

1. सं सा0 का समी0 इति0 पृ0 183
2. किरा0 (के0के0 त्रिपाठी) पृ 13
3. सं सा0 का इति0 पृ0 181

"स मेधावी कविर्विद्वान् भारविः प्रभवो गिराम्।

अनुसाध्याकरोन्मैत्रीं नरेन्द्रे विष्णुवर्धने।।" [1]

भारवि परम शैव थे।[2] यह बात किरातार्जुनीय के कथानक तथा अवन्तिसुन्दरी कथा के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होती है। राजाओं के सहवास से जान पड़ता है कि ये राजनीति के बडे भारी जानकार हो गये थे। राजशेखर ने लिखा है– कालिदास तथा भर्तृमेण्ठ की भॉति भारवि की भी उज्जयिनी में परीक्षा ली गयी थी जिसमें उत्तीर्ण होने पर इनकी ख्याति बढ़ी थी। भारवि की 'आतपत्र' भारवि संज्ञा थी । रसिकों ने जिस सुन्दर अर्थ से मुग्ध होकर इन्हें यह नाम दिया था वह नीचे के पद्य में व्यक्त किया गया है–

उत्फुल्ल स्थल नलिनीव नाद –

मुष्मादुद्धूतः सरसिज संभवः परागः।

वात्याभिर्वियति विवर्तितः

समन्तादाधत्ते कनक पयात पत्र लक्ष्मीम् ।। [3]

स्थल कमलों के वन खिले हैं। उनमें पीत पराग झर रहे हैं। हवा झोके से बह रही है वह पराग को उडा कर आकाश में फैला दे रही है। इस प्रकार कमल का पराग सोने के बने छाते की शोभा धारण कर रहा है। आकाश में फैला हुआ पराग सोने के बने पीले छाते की तरह जान पडता है। श्लोक का भाव बिल्कुल अनूठा है। सहृदयों को भारवि का कनक मय आतपत्र का सुन्दर प्रयोग इतना अच्छा लगा कि इन्होने भारवि का नाम ही इसी कारण "आतपत्र भारवि"[4] रख दिया।

---

1. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 182
2. का0 प्र0 (भूमिका) पृ0 2
3. किरा0 5/39
4. शि0पा0 व0 (भूमिका) पृ0 34

—: आविर्भाव काल :—

कालिदास के साथ भारवि का नाम दक्षिण के चालुक्य वंशी नरेश पुलकेशिन द्वितीय के समय के एहोल के शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख दक्षिण के बीजापुर जिले के 'एहोल' नामक ग्राम में एक जैन मन्दिर में मिला है। इस शिलालेख का समय 556 शकाब्द (अर्थात् 634 ईस्वी) है। शिलालेख की प्रशस्ति पुलकेशिन के आश्रित रविकीर्ति नामक किसी जैन कवि की है। प्रशस्ति के अन्त मे रविकीर्ति अपने को कविता निर्माण करने में कालिदास तथा भारवि के समान यशस्वी बतलाता है।

येनायोजि न वेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारविकीर्तिः।।[1]

गंग नरेश दुर्विनीत के समय के शिलालेख से जान पड़ता है। कि दुर्विनीत ने किरा तार्जुनीय के पन्द्रहवें सर्ग में टीका लिखी थी। टीका लिखना उचित ही था क्योकि पूरे महाकाव्य में यही सर्ग सबसे अधिक क्लिष्ट है क्याकि भारवि ने इस सर्ग में चित्रकाव्य लिखा है। राजा दुर्विनीत का समय वि0 स0 538(ई0 481) है। दुर्विनीत के इस उल्लेख से भारवि का समय 450 ई0 के आस पास ठहरता है पंचम शती का मध्य काल उचित ठहरता है।

—: ग्रन्थवैशिष्ट्य :—

भारवि की अमरकीर्ति जिस काव्य पर अवलम्बित है वह है सुप्रसिद्ध किरातार्जुनीय नामक महाकाव्य जो महाभारत के एक सुप्रसिद्ध आख्यान के ऊपर आश्रित है। (वन पर्व का किरात पर्व अ0 38—41) द्यूत क्रीडा में हारकर युधिष्ठिर

1. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 183

द्वैत वन में रहते थे। दुर्योधन की शासन प्रणाली देखने के लिए उन्होंने वनेचर को भेजा।[1] वनेचर पूरी जानकारी प्राप्त कर लौटा और दुर्योधन के सुव्यवस्थित शासन की बातें बतलायी। भीम और द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध करने के लिए उत्तेजित किया। परन्तु धर्मराज ने प्रतिज्ञा तोड़ समर छेडने की बात कथमपि स्वीकार नहीं की। इसी बीच में भगवान वेदव्यास भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होने अर्जुन को पाशुपतास्त्र पाने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने के हेतु भेजा। अर्जुन ने कठिन तपस्या की। व्रत भंग करने के लिए दिव्यांगनायें भी आयी परन्तु व्रती अर्जुन व्रत से तनिक भी नहीं डिगा। भगवान इन्द्र स्वयं अर्जुन के आश्रम पर आये और मनोरथ सिद्ध के लिए शिव जी की उपासना करने का उपदेश दे गये। अर्जुन ने और भी दत्त चित्त होकर शिव जी की आराधना की, मुनिगणों के कहने पर शिव ने अर्जुन के तपोबल की परीक्षा करने के लिए किरात का रूप धारण किया एक मानवी सूकर अर्जुन की ओर भेजा गया अर्जुन ने सूकर पर अपने बाण छोड़े साथ ही साथ किरात ने भी अपने शरों को छोड़ा।[2] अर्जुन का बाण सुअर का काम तमाम कर पृथ्वी में चला गया। बचे हुये बाण के लिए झगड़ा छिड गया कभी धनंजय की विजय होती तो कभी किरात का पक्ष प्रबल होता। अन्ततोगत्वा दोनो बाहु युद्ध पर तुल गये।

गाण्डीवी के बल से प्रशन्न होकर भगवान शंकर ने स्वयं अपना दर्शन दिया और अपना अमोघ पाशुपतास्त्र देकर अर्जुन की अभिलाषा पूरी की।

किरात में 18 सर्ग हैं[3] जिसमें ऊपर वर्णित कथानक का वर्णन किया गया है परन्तु बीच में कई सर्गो में भारवि ने महाकाव्य के कथनानुसार ऋतु[4] पर्वत सूर्यास्त तथा जल क्रीडा का बहुत कुछ विस्तार किया गया है। पूरा चौथा सर्ग

1. सं० सा० का समी० इति० पृ० 189
2. सं० सा० का इति० पृ० 182
3. किरा० सर्ग 4

शरद ऋतु, पंचम हिमालय पर्वत, षष्ठ युवति प्रस्थान, अष्टम सुरांगना बिहार तथा नवम सुर सुन्दरी सम्भोग के वर्णन से युक्त हैं।[1] किरात में प्रधान रस वीर है। श्रृंगार रस भी गौण रूप से वर्णित किया है। वह मुख्य रस का अंगभूत ही है। किरात का आरंभ श्री शब्द (*श्रियः करूणामधिपस्यपालनीम्*) से होता है। तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में लक्ष्मी शब्द आया है। भारवि ने *'मंगलान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते'* के अनुसार अन्त में मंगलार्थक लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है।

—: भारवेरर्थ गौरवम् :—

भारवि का काव्य अपने 'अर्थगौरव' समीक्षा विवेचकों में प्रसिद्ध है "भारवेरर्थ गौरवम्"। अल्प शब्दों में विपुल अर्थ का सन्निवेश कर देना अर्थगौरव की पहिचान है। भारवि ने बड़े से बडे अर्थ को थोडे से शब्दों के द्वारा प्रकट कर वास्तव में अपनी अनुपम काव्य चातुरी दिखलाई है। भारवि ने भीम के भाषण की प्रशंसा युधिष्ठिर के द्वारा जिन शब्दों में कराई है। वे ही शब्द उनके कविता के भी यथार्थ निर्देशन है।

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थ गौरवम्।

रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्य मपोहितं क्वचित्।।[2]

भारवि की दृष्टि में सत् काव्य के लिए इन बातों की आवश्यकता होती है। पदो की स्फुटता, अर्थगौरव का विस्तार, शब्दों की पृथक्ता भिन्न—भिन्न अर्थो की द्योतना। ये शोभन गुण उनके काव्य में विशेष रूप से पाये जाते हैं।[3] भारवि ने

1. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 185
2. किरा0 2/27
3. मेघदूतम् (भूमिका) पृ0 5

कविता के नैतिक तत्वों की ओर अपना ध्यान खूब ही दिया है। वे कविता में नैतिक सिद्धान्त का प्रकाशन अवश्य मानते है।

इस विषय में उनका व्यवहारिक तथा शास्त्रीय अनुभव इतना प्रौढ़ और परिपक्व है कि उनके वाक्य उपदेशमय होने से पण्डित जनों की जिह्वा पर आज भी नाचा करते हैं। वे जानते हैं– कि हितकारक वचन का मनोहर होना नितान्त दुर्लभ है। (*हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः*)[1] सब को मनोहर लगने वाली वाणी दुर्लभ होती है। (*सुदुर्लभाः सर्व मनोरमा गिरः*)[2] गुण से ही किसी का आदर बढता है, वैदिक विस्तार से नहीं (*गुरूतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः*)[3] प्रियता का कारण परिचय न होकर गुण ही होता है। (*गुणाः प्रियत्वे अधिकृता न संस्तवः*)[4] सज्जन के साथ विरोध भी लाभप्रद होता है। (*वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः*)[5] सेवक का काम मालिक को ठगना नहीं होता (*नवंचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः*)[6] । इन दृष्टान्तों के प्रदर्शन का यह अर्थ नहीं है कि भारवि में लोक व्यवहार की ही प्रचुरता है तथा हृदयार्जन के सामर्थ्य का अभाव है। भारवि की कविता में कोमल भावों को प्रदर्शन करने की पूरी क्षमता है।

किरातार्जुनीय काव्य का मूल आधार महाभारत के वन पर्व (अ0 38–41)[7] तथा शिव पुराण (ज्ञान सहिता) (अ0 63–67)[8] की प्रख्यात घटना पाशुपत अस्त्र की अर्जुन के द्वारा प्राप्ति है परन्तु इतनी थोडी सी अरूचिकर घटना को नवीन

1. किरा0 1/4
2. किरा0 14/5
3. किरा0 12/10
4. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 197
5. किरा0 1/8
6. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 197
7. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 185
8. सं0 सा0 का इति0 पृ0 182

कोमल उपादानों से पुष्ट कर रूचिर तथा सरस बनाना भारवि की कला वैशिष्ट्य है। भारवि की यह नयी सामग्री (सर्ग 6–10) काव्य के विकास में बाधक न होकर सर्वथा साधक है। इन्द्रकीलपर्वत पर अर्जुन की घोर तपस्या पर्वत वासी गुह्यकों को इतना भयभीत बना देती है कि इन्द्र के पास उपचार के लिए पहुँचते हैं। जो गान्धर्वो तथा अप्सराओं को अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए भेजते है। ये देव योनि के गण अपनी कार्य सिद्धि के लिए प्रस्थान करते हैं। परन्तु रास्ते में प्रकृति की सुषमा से मुग्ध होकर जंगलों में पुष्पचयन में आसक्त हो जाते हैं तथा जल क्रीड़ा करते हैं। (अष्टम सर्ग) सूर्य के अस्त होने पर रात आती है तथा चन्द्रिका की चांदनी में ये लोग रति लीला में लग जाते है (नवम् सर्ग) तथा प्रभात होने पर अपने कार्य की ओर अग्रसर होते हैं और अर्जुन को डिगाने के लिए प्रयत्न करते हैं। देखने में यह सामग्री पाण्डित्य का प्रदर्शन भले ही करे परन्तु वह नायक के चरित्र के उत्कर्ष को द्योतित करती है। इतने प्रभाव शाली दैवी विघ्नों का विजेता पुरूष सत्य की महनीय वीर तथा अभिनन्दनीय शूर सिद्ध होता है फलतः यह नवीन सामग्री अनुपयोगी न होकर सर्वथा उपादेय है।

भारवि ने अपने काव्य को अलंकार से विभूषित करने का खूब प्रयत्न किया है। इनका एकाक्षर श्लोक दृष्टब्य है।

"न नोननुन्नो नुन्नोनो ना ना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेन नुन्न नुन्ननुन्ननुत्।।" [1]

ऋतु, जल क्रीड़ा, चन्द्रोदय का वर्णन, बड़ी सुन्दर भाषा में किया है। चतुर्थ सर्ग में शरद ऋतु का वर्णन इतना नैसर्गिक और हृदय ग्राही हुआ है– कि इस

---

1. किरा0 15/14

जोड का दूसरा वर्णन ढूढ निकालना कठिन है। अन्य प्रकृति दृश्यों का वर्णन खूब अनूठा हुआ है। उपमा, श्लष आदि अलंकारों का प्रयोग भी उचित स्थान पर किया गया है। भारवि ने चित्र काव्य लिखने में अपनी चातुरी दिखलाने के लिए एक समग्र सर्ग–पंचदश ही लिख डाला है।[1]

इस सर्ग में सर्वतो भद्र, यमक, विलोम तथा अन्यान्य चित्र काव्य की शैली के नमूने पाये जाते हैं। भारवि ने एक अक्षर वाला भी एक श्लोक लिखा है। जिसमें न के सिवाय अन्य वर्ण हैं ही नहीं । अतः कहीं–कहीं इनका काव्य कठिन सा हो गया है। इसी लिये मल्लिनाथ ने इनके काव्य को 'नारिकेल पाक' नारिकेल फल के समान बतलाया है।[2]

इतना होने पर भी इनकी कविता में एक विचत्र चमत्कार है, जो पाठकों के हृदय को अपनी ओर खींच लेता है।[3] राजनीति का भी विशिष्ट वर्णन किरातार्जुनीय में उपलब्ध होता है। द्वितीय सर्ग में भीमसेन और युधिष्ठिर का संवाद राजनीति के गूढ तत्वों से भरा हुआ है अन्य सर्गो में राजनीति के ऊँचे सिद्धान्त उचित स्थान पर रखे गये हैं। भारवि में वक्तृत्व शक्ति बड़े ऊँचे दर्जे की है। भारवि का विषय प्रतिपादन वक्ता के दृष्टि कोण को हमारे सामने निर्मल दर्पण के समान रखने में सचमुच समर्थ है।

भीम का ओजस्वी भाषण और युधिष्ठिर का सौम्य भाषण सुनके पाठकों का हृदय वक्ता की ओर बरवस आकृष्ट हो जाता है। भारवि को यह गुण निश्चय ही राजदरबार के सम्पर्क से प्राप्त हुआ होगा। इस काव्य में इसी लिए व्यवहारिक ज्ञान की प्रौढता चमत्कारिणी है।

---

1. सं० सा० का समी० इति० पृ० 184
2. सं० सा० का समी० इति० पृ० 197
3. नै० च० (भूमिका) पृ० 9

भारवि ने बहुत से छन्दों में कविता की है, परन्तु सबसे अधिक सुन्दरता से वंशस्थ का प्रयोग किया है। ज्ञानेन्द्र ने वंशस्थ वृत्त को राजनीतिक विषयों के वर्णन के लिए सबसे अधिक उपयुक्त माना है।

"षाड़ गुण्य प्रगुणानीति वंशस्थेन विराजते।" [1]

अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं कि राजनीति के विशेषज्ञ भारवि का वंशस्थ प्रयोग सबसे अच्छा हुआ है। लेखक को तो यही प्रतीत होता है कि भारवि के द्वारा वंशस्थ के सुचारू प्रयोग की सुषमा के कारण ही संभवतः क्षेमेन्द्र ने वंशस्थ को राजनीत वर्णन के लिए उपयुक्त माना है।[2] ज्ञानेन्द्र ने भारवि की प्रशंसा में यह श्लोक लिखा है।

वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता।

प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता।। [3]

भारवि का संसार का अनुभव उच्चकोटि का है। संसार के सुख दुख की पहचान इन्हें खूब है, ये बड़े मानी प्रतीत होते हैं। उनकी दृष्टि में स्वात्माभिमान का बडा आदर है। द्रौपदी तथा भीम ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए युधिष्ठिर को जिस प्रकार उत्साहित किया है, वह मनन करने का विषय है। कवि के स्वभाव में जितना मान का गौरव है, उससे कहीं अधिक विनय का महत्व है। किरात में जितने संभाषण मिलते हैं उनमें कही भी शिष्टाचार तथा विनय का उल्लंघन नहीं है। उनके पात्रों में अपने विरोधियों की बातें शांत चित्त से सुनने की क्षमता है। वे अपने पक्ष का मण्डन बड़े तर्क से करते हैं तथा अपने विपक्षियों के कथन का भी खूब खण्डन करते हैं। परन्तु उनमें उद्वेग नहीं दीखता है।

---

1. सं० सा० का इति० पृ० 185
2. किरा० पृ० 1 से 105 तक
3. सं० सा० का समी० इति० पृ० 196

भारवि मॉगने को बडा बुरा मानते थे।[1] इसे वे पण्डितों की मर्यादा को भंग करने वाली बतलाते है– *"धिग् विभिन्नबुधसेतुमर्थिताम।"* वे जानते हैं कि गुण प्रेम में रहते है, वस्तु में नहीं। *"बसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि"* [2] सज्जनता के विशिष्ट गुणों का वे मर्म जानते है कि सज्जनो की वाणी निन्दा करना जानती ही नहीं, केवल गुणों का ही प्रकाश करती है– *"आयतपूर्वा परिवादगोचरं सतां हि वाणी गुणमेव भाषते।"* राजनीति का उनका ज्ञान सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन का फल नहीं हैं प्रत्युत व्यवहारिक कार्यो के अवलोकन का परिणाम है। राजनीति के तत्वों का तथा राजदूतों का इतना सजीव वर्णन किरात में मिलता है कि वह कवि कल्पना नहीं हो सकता– वह तो आँखों से देखा हुआ स्वानुभूत यथार्थ वर्णन हो सकता है। भारवि की कविता में गीतिमय माधुर्य की अपेक्षा वर्णनात्मक तथा तर्कात्मक ओज का ही प्राधान्य है।

भारवि सुश्लिष्ट पद विन्यास के आचार्य है। कालिदास के समान प्रसाद मयी हृदया वर्जक पदावली का अस्तित्व इनके महाकाव्य में तो सचमुच नहीं है, परन्तु अर्थ गौरवमय[3] पदो का विलास पूर्ण मात्रा में है। राजनीति[4] के सिद्धान्त का तार्किक रीति से प्रतिपादन तथा प्रकृति के दृश्यों[5] का मनोहर वर्णन भारवि की भव्य कला के प्रौढ अंग हैं। संसार की विपुल अनुभूति की पृष्ठभूमि पर किरातार्जुनीय में व्यवहारिक तत्त्व ज्ञान[6] का वर्णन कवि के अनुभव की विशालता, राजनीति की पटुता,[7] तथा कथनोपकथन की चातुरी प्रदर्शित करने का पर्याप्त

---

1. सं0आ0 पृ0 99
2. किरा0 8/37
3. अ0 शा0 (भारतीटीका) भूमिका पृ0 81
4. किरा0 पृ0 28
5. किरा0 सर्ग 4
6. किरा0 1/41, 1/37
7. किरा0 पृ0 100

साधन हैं। भारवि से हम बहुत ही बडी बातों की आशा नही कर सकते, परन्तु जितना उन्होने लिखा है प्रौढ़ता अनुभूति तथा भावुकता के साथ लिखा है और यह भारवि की निजी विशेषता है। संस्कृत काव्य की एक नवीन शैली– विचित्र मार्ग– की सृष्टि करने के लिये भी भारवि प्रबन्ध काव्यों के विकाश में एक गौरव पूर्ण स्थान धारण करते हैं।

भारवि के पात्रों का चित्रण महाभारत की अपेक्षा अपनी विशिष्टता रखता है। भारवि के पात्र मूल महाभारत की अपेक्षा कोमल तथा सौम्य हैं उन्माद उनमें नहीं है। महाभारत में भीष्म अपने उन्माद के लिये वदनाम है परन्तु भारवि के काव्य में वह मर्यादा के भीतर ही काम करते हैं द्रौपदी का चरित्र अपमान से जलने वाली उदात्तनारी का चरित्र है। मूल में द्रौपदी स्वार्थी के रूप में चित्रित की गई है परन्तु यहॉ वह मनोज्ञ है। शान्त युधिष्ठिर के मानस में पाण्डवों की दुर्दशा का चित्र दिखलाकर युयुत्सा उत्पन्न करना तथा क्षत्रियोचित मार्ग से विचलित न होने पर आग्रह दिखलाना द्रौपदी का विशिष्ट कार्य है।

अर्जुन तो इस काव्य का नायक ही ठहरा और उसमें समग्र नायक के गुण एकत्र होकर अपनी विभूति दिखलाते हैं। इस प्रकार पात्र चित्रण में भी भारवि का वैशिष्टय है। यह सच्ची बात है कि भारवि की अनुभूति राजनीति के विषय में बड़ी मार्मिक तथा तलस्पर्शिणी है, परन्तु प्रेम के कोमल राज्य में भी उनका प्रवेश कम नहीं था। छोटी परन्तु गम्भीरार्थ–प्रकाशिनी उक्तियों से भारवि का काव्य भरा–पूरा है।

" पुनरपि सुलभं तपोऽनुरागी युवतिजनो नाप्यतेऽनुरूपः ।।" [1]

1. किरा 10/50

ऐसी ही सुन्दर उक्ति है। *"नास्ति तज्जगति सर्व–मनोहरं यत्"* व्यक्ति विवेकस्थ इस सौन्दर्य सिद्धान्त से वे पूर्ण तथा परिचित थे। वे जानते थे कि भविष्य में उपकार करने वाला उतना प्रिय नहीं होता किसी कृतज्ञ व्यक्ति के लिए जितना कि उपकार का सम्पादन करने वाला–

"न तथा कृतवेदिनां करिष्यन् प्रियतामेति यथा कृतावदानः।" [1]

इन्ही सदगुणों के कारण भारवि का काव्य इतना लोक प्रिय रहा है कि भारत में ही नहीं भारत के बाहर भी जावा के साहित्यिक विकास के ऊपर किरातार्जुनीय का प्रभाव विद्वानों के आश्चर्य का विषय बना हुआ है।

भारवि की भाषा उदात्त तथा हृदय को शीघ्र प्रभावित करने वाली है। जितनी उग्र भावों के प्रकाशन में भाषा तथा शैली के विषय में भारवि ने अपने आदर्श का संकेत इस प्रख्यात पद में किया है।

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपिद्विषाम्।

प्रवर्ततेनाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती ।। [2]

पुण्य शाली व्यक्तियों की सरस्वती प्रसन्न तथा गम्भीर पदों से युक्त होती है। उसके सुन्दर अक्षर पृथक रूप रखते हैं। तथा कानों को प्रसन्न करते हैं। वह शत्रुओं के हृदयों को भी प्रशन्न करती हैं। 'प्रसन्न' का लक्ष्य शाब्दिक सुष्ठुता से है तथा 'गम्भीर' का तात्पर्य अर्थ की गम्भीरता है। भारवि की शैली का यही मर्म हैं वह प्रसन्न होते हुये भी गम्भीर हैं।

मित्र आलोचकों को प्रसन्न करने के साथ ही दुष्ट आलोचकों को भी आवर्जित करती है। फलतः 'प्रसन्नगंभीरपदा सरस्वती' भारवि की भाषा तथा शैली

---

1. किरा० 13/12
2. किरा० 14/3

का द्योतक महनीय मन्त्र है। इनकी कविता के स्वरूप–ज्ञान के लिए दो उदाहरण पर्याप्त होगे।

मृणालिनी नामनुरंजितं त्विषा–

विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया।

पयः स्फुरच्छालिशिखापिशंगितं–

द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहि–विद्विषः।। [1]

धान के खेतों में जल कितना सुन्दर मालुम पड़ता है। कमलिनी खिली है। कमलता के हरे रंग के कारण जल भी हरा हो गया है। कमल के पत्तों की शोभा के साथ जल की शोभा मिल रही है। खेत में धानों की पकी पीली शिखा हिल रही है। जिनसे जल भी पीला हो गया है। खेत का यह रंजित जल ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों वृत्र के शत्रु इन्द्र महाराज रंग–विरंगा धनुष गलकर पानी के रूप में बह रहा है। यह अनोखी कल्पना है–

मुखैरसौ विद्रुमभंग लोहितैः

शिखाः पिशंगीः कलमम्य विभ्रती।

शुकावलिर्व्यक्त शिरीषकोमला

धनुः श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति।। [2]

शरद का सुहावना समय है। सुग्गों की पात उड़ रही है। शिरीष के फूल की तरह कोमल हरे शुकों की पॉत मूँगे के टुकड़े के समान लाल–लाल चोचों में धान की पीली–पीली बालियों को लिये आकाश में उडी जा रही है। मालूम पडता हैं कि इन्द्र धनुष आकाश में उगा हो। सुग्गों का शरीर है हरा, चोंच है लाल, उन

---

1. किरा० 4/37
2. किरा० 4/36

चोंचों में ली हुई धान की बालियाँ है पीली। इन रंगों की मिलावट क्या इन्द्रधनुष से कम सुहावनी लगती है। भारवि ने शरद के इस शोभन दृश्य को कितने सरल शब्दों में वर्णन किया है। कल्पना एक दम नई है। वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक हैं। संस्कृत के आलोचना जगत् में भारवि अपने अर्थगौरव के निर्मित नितान्त प्रख्यात हैं। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थो की अभिव्यक्ति को हम अर्थ गौरव की कसौटी मानते है।[1]

अपने अभिव्यंजनीय भावों के प्रकटीकरण के लिये कवि उतने ही शब्दों को चुनता हैं जितने उस कार्य के लिये आवश्यक होते हैं। भारवि का अर्थगौरव उनकी गम्भीर अभिब्यंजना शैली का फल है।[2] और इस शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों के सुडौल पन की स्निग्धता है। भारवि गम्भीर व्यक्तित्व से मण्डित महाकवि हैं। उनकी कविता में भावों की उदात्तता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अन्तराल में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्य कला में भले ही विद्यमान हो, परन्तु लोक सम्बन्ध तथ्यों के विवरण देने में वे सर्वथा कृतकार्य हैं।[3] अर्थगौरव की कमनीयता का उदय श्लेषालंकार के अभ्युदय के कारण अनेक स्थानों पर दृष्टि गोचर होता है। श्लेषानुप्रणिता, उपमा का प्रदर्शन कारी यह प्रख्यात पद्य अर्थगौरव का चमत्कारी दृष्टान्त प्रस्तुत करता है–

---

1. शा0 द0 पृ0 150
2. सं0 सा0 का इति0 पृ0 181
3. किरा0 1/43

कथा प्रसंगेन जनैरुदाहृता–

दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।

तवाभिधानाद् व्यथते नताननः

सुदुः सहान्मन्त्रपदादिवोरगः।।[1]

जिस प्रकार सॉपविष वैद्य के द्वारा उच्चरित गरूण और वासुक के नामों से युक्त, अतेव असह्य मन्त्र पद से गरूण के पराक्रम का स्मरण कर नत मस्तक हो जाता है। उसी प्रकार जन समूह में चर्चा के अवसर पर दुर्योधन आपका (युधिष्ठिर) का नाम सुनकर इन्द्र पुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण कर अपना सिर (लज्जा तथा सन्ताप के कारण) झुका लेता है। इस पद्य के कतिपय श्लिष्ट पद अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है– तवाभिधानात्– तुम्हारे नाम से, त (तार्क्ष्य गरूण) तथा वासुक नाम धारण करने वाला। एक देश के ग्रहण से पूरे नाम का ग्रहण होता है। इस न्याय से तव शब्द तार्क्ष्य तथा वासुकि का वाचक माना गया है।

'आखण्डलसूनुविक्रमः' इन्द्र के सूनु (पुत्र– अर्जुन) के विक्रम (पराक्रम) का स्मरण करने वाला इन्द्र के सूनु (अनुज–विष्णु के विपक्षी गरूण) के क्रम (पाद विक्षेप) का स्मरण करने वाला फलतः सभंगश्लेष की महिमा से सम्पन्न होने के कारण कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक शब्दों का समावेश इस पद्य को सौष्ठव प्रदान कर रहा है–

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसा मिवाशयः।

स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।।[2]

---

1. किरा0 1/24
2. किरा0 2/3

जिस प्रकार विषम गम्भीर जलाशय सीढ़ी बना देने पर स्नान के योग्य बन जाता है। उसी प्रकार समस्याओं की विकटता के कारण विषम नीति शास्त्र किसी योग्य विद्वान के द्वारा व्याख्यात होने पर सुगमता से प्रवेश किया जा सकता है।

इतना होने पर भी वह व्यक्ति विशेष दुर्लभ है जो कार्य के मार्ग का सम्यक् प्रतिपादन करता है। शास्त्र का प्रतिपादन सुलभ है। परन्तु तदनुसारी व्यवहार का प्रतिपादन दुष्कर है।

परिणामसुखे गरीयसि व्यथ केऽस्मिन् वचसि क्षतौजसाम्।

अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः।। [1]

परिणाम में लाभप्रद श्रेष्ठ क्षीण बल वाले रोगियों को कष्टप्रद अत्यन्त वीर्य से सम्पन्न अल्प मात्रा वाले रसायन में जिस प्रकार अनेक गुण दीखते है। उसी प्रकार परिणाम में हितकर सारगर्भित क्षीण शक्ति वाले व्यक्तियों को सन्तापकारी अत्यन्त ओजस्वी एवं अल्पाक्षर द्रोपदी के वचन में अनेक गुण पाये जाते हैं।

रसायन के गुण का प्रतिपादक यह गम्भीरार्थक पद्य नितान्त विशद तथा अन्तरंग है। निष्कर्ष यह है कि भारवि की प्रमुखता वर्णनात्मक तथा तार्किक प्रसंगों में विशेष है। लय समन्वित गीत काव्यों चित्त माधुर्य का उनमें अभाव है। वे हिमालय के वर्णन में तथा राजनीतिक समस्याओं के तार्किक समाधान में जितने सर्मथ है। उतने किसी कोमल भावों की अभिव्यंजना में नहीं।

कविप्रोक्त महाकाव्य के लक्षण से युक्त होने के कारण यह किरातार्जुनीय महाकाव्य कहलाता है और यह वृहत्त्रयी काव्यों में अन्यतम माना जाता है। इसकी कथावस्तु महा भारतीय वन पर्व से ली गयी है। यह काव्य प्रारम्भ में श्री शब्द में विभूषित है।[2] इसके प्रत्येक सर्गान्त में लक्ष्मी शब्द का सन्निवेश है।[3] इस काव्य में

1. किरा0 2/4
2. किरा0 1/1 तथा अन्य
3. किरा0 1/46 तथा अन्य

पाण्डुपुत्र अर्जुन और किराताधिपति भगवान शंकर का परस्पर युद्ध की ही मुख्यता होने के कारण इस काव्य का नाम किरातार्जुनीय पड़ा है। इस काव्य में राजनीति का प्रदर्शन करते हुये कवि ने साम, दाम, दण्ड और भेद का बहुत गम्भीरता से वर्णन किया है। भारत वर्ष की स्त्रियों का कितना गम्भीर विचार था, यह द्रोपदी की उक्ति से स्पष्ट मालूम होता है भारवि ने पात्र के अनुसार ही शब्दों का निवेश किया है यह भीमोक्ति से विदित होता है विवेचना के विषय में किसी कार्य को करने से पहले इसकी पूरी विवेचना करके ही उसको करने में प्रवृत्त होना चाहिये। ऐसा युधिष्ठिर की उक्ति द्वारा विदित है–

सहसा विदधीत न क्रियायमविवेकः परमापदांपदम्।

वृणते हि विमृश्य कारिणं गुण लुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।। [1]

इस काव्य में प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन अत्यन्त मनोहर है। प्राकृतिक दृश्यो में कवि का हदय सदा विनम्र था। यह सायंकालिक मनोहर वर्णन से प्रतीत होता है–

मध्यमोपलनिभेलसदंशावेक तश्च्युतिमुपेयुषि भानौ।

धौरूवाहपरिवृत्ति विलोलांहारयष्टिमिव वासरलक्ष्मीम्।। [2]

इस श्लोक में 'परिवृत्ति विलोला' अत्यन्त मनोहर है। तात्पर्य यह है कि 'जिस तरह चपला लक्ष्मी चंचल हो रही है।' कवि ने स्थान–स्थान पर पर्वत, जलाशय, कुंज, वापी आदि का बहुत ही रम्य वर्णन किया है। चित्रकाव्य, यमक, अनुप्रास, एकाक्षर श्लोक पंचदश सर्ग में अधिक सुन्दर हैं। यह सर्ग अपेक्षाकृत

---

1. किरा0 2/30
2. किरा0 9/2

कठिन भी है। वीर अर्जुन के बाण प्रहारों से सारे भूत वर्ग भयभीत हो गये। महादेव जी की सेना अपने आयुधों को छोड़कर भाग गयी सामने विद्यमान शिव जी को भी भय के मारे घबड़ा कर नहीं देख सकी। उसकी दुर्दशा देखकर धनंजय को भी दया आगयी।

एक महान व्यक्ति को भी कमजोर शत्रु पर दया आ जाती है। तदनन्तर वह अर्जुन चाप सन्धान कर कार्तिकेय की ओर लडने के लिए आगे चल पडे। भय के मारे भागते हुये कार्तिकेय के सैनिको के पीछे वे भी चल पडे। अर्जुन के बाणों से पीडित सैनिक गणों को देखकर कुछ घबडा कर कर्तिकेय जी तसल्ली देते हुये, मत भागें! आप के बाण पातजन्य दुःखों को मै खुद दूर करना चाहता हूँ आप लोग घबडाये नहीं कौन सी विपत्ति सभी आप लोगों पर आ पडी जिसको दूर करने के लिए आप लोग युद्ध भूमि को छोड कर भागना चाहते हैं। यह तो एक साधारण मनुष्य है। इसको छोड़कर क्यो भागना चाहते है। इसके पास तो रथ, घोडा, हांथी, पैदल सेना अदि साधन भी नहीं है। इसलिए आप को यहॉ से नही भागना चाहिए।

अन्यथा अपयश होगा। पूर्व जमाने में असुरों के साथ युद्ध करके प्राप्त सुयश को भी आप लोग अभी क्यो लुप्त कर रहें है। इस तरह कार्तिकेय द्वारा समझाये जाने पर गणों को शिवजी ने अपनी मुस्कुराहट से अभय वाक्य प्रदान करते हुये आश्वासन देकर संतुष्ट किया। बाद में शिव और अर्जुन में तुमुल संग्राम होने लगा। अर्जुन द्वारा प्रक्षिप्त बाणों को शिव जी ने बडी चतुराई से छिन्न भिन्न कर दिया।[1] अर्जुन भी शिवबाणों का निवारण करते हुये संग्राम भूमि में विचरने

1. किरा0 14/16

लगे और गाण्डीव धनुष कांपते हुये सूर्यवत् चमकने लगे शिवजी की कृपा से द्रवित होकर मर्म भेदी बाणों को नहीं भेदा।[1] अर्जुन उनके अनेक बाणों से आहत होकर भी नहीं घबडाये इस तरह इन दोनों के रोमांचकारी संग्राम को देखकर महर्षि देव और प्रमथादि गण सब चकित हो गये। तपस्वी अर्जुन किरातपति की संग्राम कुशलता को देखकर एवं चकित सा होकर अनेक प्रकार के तर्क वितर्क करने लगे। अहो इस संग्राम में अलंकृत महारथी भी नही है बड़े वेगशाली होकर दौडने वाले घोड़े भी नहीं है न तो अत्यन्त लडाकू वीर भट योद्धा गण ही दिखाई नहीं पड़ते। वीरों के उत्साह वर्धक रणभेरी दुंदुभि, नगाडे भी नहीं बजाये जा रहे हैं। रूधिर की नदियाँ भी शोणितों से भरपूर होकर नहीं बह रही है।

फिर भी यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि इस किरात युद्ध में सकल वीरों को मथित करने वाली मेरी शक्ति क्यों अवकुंठिण्त हो रही है ? क्या यह कोई माया है ? या मुझे भी मति भ्रम हो रहा है। या मै वह अर्जुन ही नहीं हूँ । जिससे कि मेरे गाण्डीव[2] से निर्मुक्त अबाधबाण भी लक्ष्य से टकरा कर खण्ड –खण्ड हो जाता है। वास्तव में यह किरात नहीं मालूम पडता क्योकि अपने धनुष टंकार से आकाश को विदारण करता हुआ सा लक्षित होता है। और धनुष को खीचने एवं प्रत्यंच्चा को तानने तथा बाणों का सन्धान आदि में अद्‌भुद ही स्थिति प्रतीत होती है। इससे दूसरों के छिद्र को ढूँढने की पटुता और अनेक विवरों के संरक्षण की कुशलता पायी जाती है वेसी तो वीर शिरोमणि भीष्म–द्रोण में भी नहीं है इसलिए इसके पराक्रम को दिव्यास्त्र प्रयोग द्वारा ही दूर करना चाहिए नहीं तो

---

1. किरा० 14/16
2. भगवत गीता (भूमिका) पृ० 2

महान अनर्थ होगा। यह सोचकर अर्जुन अपने गाण्डीव धनुष पर प्रस्थापन नामक महास्त्र को चढाया।[1] उसके प्रभाव से सारी शत्रु सेना अंधकारों से ढक गयी और नशा में पड़ मुर्छित सी हो गयी। किसी के हाथ से तलवार ही गिर पडी। उस समय किरात वेश से ढके हुये चन्द्र शेखर महादेव जी के ललाट से क्रोध के मारे आग की चिनगारी निकलने लगी उसके प्रकाश से अन्धकार रहित होकर प्रमथगण भी मुर्छित को त्यागकर फिर से तलवार धारण कर संनद्ध हो गये दिशाएं प्रशन्न हो गयी। सूर्य किरणें चमकने लगी। अर्जुन ने प्रस्थापनास्त्र को विफल जानकर नागपाशों को चढाया। नाग पाशों के प्रभाव से आकाश के पक्षिगण इधर–उधर भाग गये। बाद में भगवान शंकर ने गरूडास्त्र से उन नाग पाशों को दूर करने के लिए आकाश मण्डल को ही गरूड बना दिया। गरूड के परों के कम्पन से पवन अत्यन्त वेग से बहता हुआ वन वृक्षों को ही जड़ से उखाडकर आकाश में ले गया। सर्प समूह भी सहसा शान्त हो गया। अर्जुन ने अपने नागास्त्रों को वैरी के प्रभाव से विफल समझकर क्रुद्ध होते हुए प्रलयकालिक महाप्रचण्ड ज्वलज्ज्वाला वाली आग को देखकर भगवान शंकर ने उसको शान्त करने के लिए वरूणास्त्र का प्रयोग किया उससे तुरंत ही आकाश की घटा छा गयी।

महाकवि भारवि नवीन काव्यशैली के उद्‌भावक माने जाते है। वे कवि के साथ–साथ प्रकाण्ड पण्डित भी हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा में काव्यगत वैशिष्टय के साथ पण्डित प्रदर्शन की प्रवृत्ति पायी जाती है। उनकी भाषा सशक्त एवं स्पष्टार्थ प्रकाशिका है।

काव्य जगत् का सृष्टा कवि अपनी विशेष प्रतिभा द्वारा साहित्य दिशा को नवीन दिशा प्रदान करता है।[2] संस्कृत साहित्य के महाकवियों ने भी अपने काव्यों

1. किरा0 14/12
2. ध्वन्यालोक (भूमिका) पृ0 5

में नूतन शैली एवं विशेषता प्रदान कर साहित्य जगत में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है। महाकवि कालिदास उपमा के लिए सिद्धहस्त है[1] तथा महाकवि भारवि अर्थ–गौरव के लिये।[2] अल्प शब्दावली द्वारा विस्तृत भावों को व्यक्त करने की क्षमता भारवि के काव्य में सहज ही प्राप्त होती है। किसी महाकवि द्वारा प्रस्तुत 'भारवेरर्थगौरवम्' उक्ति महाकवि भारवि के काव्य में पूर्णरूपेड चरितार्थ होती है।

अल्पशब्दों में अर्थ बाहुल्य को ही अर्थ–गौरव कहते हैं। कवि की कविता परिणाम में सुखप्रद होती है। अल्प औषध भयंकर रोगों के विनाश की क्षमता रख कर अपने गणों को प्रदर्शित करती है। उसी प्रकार भारवि की कविता बाणों के लिए परिणाम में सुखद है। किरातार्जुनीय महाकाव्य राजनीति के गूढ तत्वों को विश्लेषण करने में विशेष क्षमता रखता है। यही इनके ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली की विशिष्टता है।

प्रसड़ानुकूल उनके पात्र अपनी–अपनी क्षमताओं से युक्त है। भारवि का प्रत्येक पात्र अपना व्यक्तिगत अस्तित्व, सजीवता, स्वाभाविकता तथा चारित्रिक दृढता आदि गुण रखता है। महाकवि भारवि अपनी अर्थ गौरव सम्बन्धी काव्य विषयक विशेषता को स्पष्ट करते हैं कि उस काव्य में अल्प पदों द्वारा ही अत्यधिक भावों की अभिव्यक्ति हुयी है।[3] उनके काव्य में कठिन तथा सरल सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग ही काव्यगत वैशिष्टय का बोधक है।

राजनैतिक सत्यता का कवि कितना सुन्दर विश्लेषण करते हैं उनका मत है कि *'शठे शाठ्यं समाचरेत्'* की नीति कवि को अभीष्ट है।

---

1. रघुवंश (भूमिका) पृ0 3
2. किरा0 पृ0 21
3. सं0 सा0 का इति0 पृ0 183

"विहाय शान्तिं नृपधाम तत्पुनः
प्रसीद सन्धेहि विधाय विद्विषाम्।

व्रजन्ति शत्रून वधूय निःस्पृहाः

शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।।" [1]

महाकवि भारवि अलंकृत काव्य–शैली के कवि है। काव्य में अलंकारों का प्रयोग होते हुये भी अर्थगौरव क्षीण नहीं हुआ यह शैली ही उनके काव्य की विशष्टता का ज्ञान कराती है। राजनैतिक गतिविधियों का विश्लेषण करते हुये अर्थगौरव को सुरक्षित रखकर परिष्कृत तथा अलंकृत पदावली का प्रयोग कर कवि ने अपने महाकाव्यों को उत्कृष्ट बनाया है। अल्प शब्दों में अधिक अर्थ का बोध कराना ही उनके ग्रन्थ का वैशिष्टय है। उक्त विश्लेष्णों के द्वारा इस अध्याय में भारवि का जीवन परिचय, आविर्भाव काल एव ग्रन्थ का वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया गया है। भारवि के विषय में प्रस्तुत पद्य द्रष्टव्य है–

"अर्थदीधितिसंवीता, सन्नीरज सुहासिनी।

अज्ञोलूकनिरानन्दा, भारवेरिव भारवेः।।" [2]

1. किरा0 1/42
2. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 180

* * * * *

अ
ध्या
य
ती
न
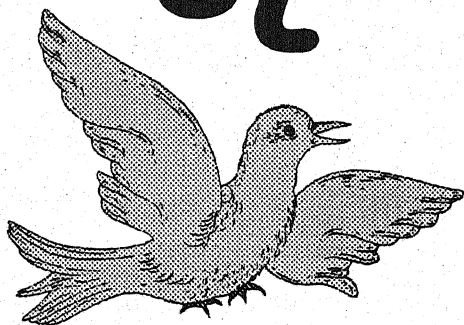
शिशुपाल वधम् में प्राकृतिक चित्रण

संस्कृत भाषा संसार की प्राचीनतम भाषा है।[1] इसका वैदिक वाड्गमय अपनी प्राचीनता सरसता एवं पूर्णता के लिये जगत् प्रसिद्ध है। यह भाषा प्राचीन भारत की लोकभाषा, राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा रही है। प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान इसी भाषा में विद्यमान है। यदि हम भारतीय संस्कृति, विज्ञान, कला, साहित्य, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि का यदि हम यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो संस्कृत भाषा के स्वरूप को सम्यक् समझना नितान्त आवश्यक होता है। प्राचीन से लेकर अर्वाचीन काल तक जो पवित्र ज्ञान गंगा की धारा प्रवाहित हुई है। उसका शुद्ध सलिल भाषा में संरक्षित है।[2] भारत वर्ष में अनेक कवियों का जन्म हुआ है और सभी अपनी अपनी दृष्टि से ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा बरसते रहे हैं। जिस प्रकार से उपमा सौन्दर्य से प्रभावित होकर कालिदास को 'दीपशिखा' की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसी प्रकार माघ को उपमा के कारण 'घष्टामाघ' की उपाधि से विभूषित किया गया है।

महाकवि माघ संस्कृत महाकाव्य परम्परा में अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। भारवि ने जिस अंलकृत काव्य शैली का श्री गणेश किया था। माघ में उसका पूर्ण विकास हुआ है। यद्यपि माघ असाधारण मेधावी तथा अक्षुण्य कवित्व शक्ति सम्पन्न थे। परन्तु अलंकार एवं चमत्कार के व्यामोह में फंसकर वे अपने कवि हृदय को खो बैठते हैं। इसलिए उनके काव्य में भावुकता के स्थान पर बुद्धिचातुर्य, चमत्कार एवं कृत्रिमता के दर्शन होते है। महाकवि माघ ने शिशुपाल वधम् में बहुत ही मार्मिक एवं स्पष्ट शब्दों में प्राकृतिक चित्रणों का वर्णन किया है।[3]

---

1. भाषा विज्ञान – प्रथम अध्याय
2. सं0 सा0 का इति0 पृ0 4
3. शि0 पा0 व0 पृ0 149

निः श्वासधूमं सह रत्नभाभि–

र्भित्वोत्थितंभूमिमिवोरगाणाम्।

नीलोत्पलस्यूतविचित्रधातु–

मसौगिरिंरैवतकं ददर्श।। [1]

इन्हीं (श्री कृष्ण भगवान्) ने इन्द्रनीलमणियों से सम्बद्ध (गेरू, मैनसिल आदि)अनेक विध विचित्र धातुओं वाले, रत्नों की कान्तियों के साथ भूमि को फाड़कर ऊपर निकले हुये सर्पो के श्वासवायु के छुये के समान स्थित रैवतक पर्वत को देखा। बडे–बडे चट्टानों के ऊपर चारों ओर से उठते हुये मेघ समूहों से सूर्य के मार्ग को रोकने के लिए पुनः तत्पर विन्ध्य पर्वत के समान आचरण करते हुये रैवतक पर्वत को देखा।

क्रान्तं रूचा कांचनवप्रभाजा, नवप्रभाजालभृतां मणीनाम्।

श्रितं शिलाभ्यामलताभिरामं, लताभिरामन्वितषट्पदाभिः।। [2]

नये प्रभा समूह वाले रत्नों की सुवर्ण शिखरों पर फैली हुई कान्ति से युक्त चटटानों या इन्द्रनीलमणियों की श्यामलता (कृष्णिमा)से मनोहर तथा सौरभ से भ्रमरों को बुलाती अपनी ओर आकृष्ट करती हुई लताओं से युक्त पर्वत को भगवान ने देखा। महाकवि माघ ने आमन्त्रितषट्पदाभिः– *"मकरन्द पूरितत्वादाहूत मृड़ाभिः लताभिः श्रितं व्याप्तम्।"* [3] बहुत ही मार्मिक दृष्टि से शब्दों की व्याख्या करते है। वह पर्वत ऐसा प्रतीत होता है जैसे सहस्रों शिखरों से आकाश में तथा सहस्रों पादों से पृथ्वी में फैलकर स्थिर तथा सूर्य और चन्द्रमा को दोनो नेत्र रूप में धारण करते हुये सहस्रों मस्तकों से आकाश में तथा सहस्रों चरणों से पृथ्वी में

---

1. शि0पा0व0 4/1
2. शि0पा0व0 4/3
3. शि0पा0व0 पृ0 150

व्याप्त होकर स्थित सूर्य और चन्द्र जिसके नेत्र हैं। ऐसे हिरण्य गर्भ वृद्धा के समान उस पर्वत की प्रकृतियां है।[1] इस श्लोक के माध्यम से कवि यह दर्शाना चाहता है कि उसके नेत्र, पैर कैसे हैं? कैसे व्याप्त है ? किसी भाग में जल के बरस जाने से शुभ्र वर्ण धुले हुये दुपट्टे के समान कान्तिवाले मेघों को धारण करते हुये, पार्वती के शरीर स्पर्श से पोछे गये भस्म वाले शिव जी के समान उस पर्वत की रमणीय स्थिति है। जहाँ–जहाँ शुभ्र मेघ थे, वहाँ–वहाँ शिवजी के भस्म युक्त शुभ्र के समान शरीर तथा जहाँ–जहाँ पार्वती के शरीर की स्पर्श से भस्म छूट गयी थी, वहाँ–वहाँ शिवजी के भस्म रहित शरीर के समान उस पर्वत की प्रकृति स्थिति थी। जिनके स्कन्धों में मोटी–मोटी दो शाखाओं के मूलभागों पर मोर बैठे है, कन्धे पर नीलवर्ण युक्त कण्ठवाले अनेक लतारूपिणी भुजाओं के अग्रभाग को कम्पित करते हुये तथा बडे–बडे सर्पो से लिपटे हुये अंगों वाले वृक्षों की अनेक रूद्रों के समान धारण करते हुये उसकी रमणीयता थी। लटकते हुये नलकमल रूपी कर्णभूषणावली, और नये–नये तृणविशेष से अलंकृत संकेत के समान कान्ति वाले शैवालयुक्त निर्मल जल को धारण करते हुये, के समान उसकी कान्ती प्रतीत हो रही थी। कमल श्रेणियों के अधीन और चंचल भ्रमरों वाले, वृक्षश्रेणियों से धूप को दूर करते हुये श्रेष्ठ केशाग्रवाली देवांगनाओं को राक्षसोपद्रवहीन की तरह प्रतीत हो रहा था।

विलम्बिनीलोत्पलकर्णपूराः कपोलभित्तीरिव लोध्रगौरीः।
नवोलपालंकृतसैकताभाः शुचीरपः शैवलिनीर्दधानम्।।[2]

"राजीवराजीवशलोलभृंग मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।
कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम्।।"[3]

1. शि० पा० व० 4/4
2. शि०पा०व० 4/8
3. शि० पा० व० 4/9

"अर्थात् राजीवराजीनां पक्षपडक्तीनां वशा अधीना लोलाश्चला भृंगा यस्मिंस्तं राजीव राजीव शलोलभंगं तरूणां ततिभिः संघैरूष्णमातपमुष्णन्तं हरन्तुं कान्ता रम्या अलकांतास्तू कुन्तलाग्राणि यासांताः कान्तालकान्ताः।" [1]

—: माघेसन्तित्रयोगुणाः :—

प्राकृति वर्णन हो या उपमा हो कवि माघ बहुत ही सुन्दर मार्मिक शब्दों की सरलतया व्याख्या करते है। पुरातन कवियों से माघ की उत्कृष्टता को प्रतिपादित करते हुये पण्डितों ने इस उक्ति को प्रस्तुत किया है। कालिदास में उपमा का सौन्दर्य है, भारवि में अर्थगौरव का वैशिष्ट्य तथा दण्डी में पदलालित्य का चमत्कार परन्तु माघ में उक्त तीनों गुण पाये जाते है।

उभौ व्योम्नि पृथक्प्रवाहावा काशगंगापयसा पतेताम्।

तेनोपमीयेत तमालनीलमा मुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः।। [2]

मुदे मुरारेरमरैः सुमेरोरानीय यस्योपचितस्य श्रृंगैः।

भवन्ति नोद्दामगिरां कवीनामुच्छायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः।। [3]

अर्थात् यदि आकाश में आकाश गंगा केजल से दो पृथक–पृथक प्रवाह गिरें। उसी प्रकार भगवान् कृष्ण के गगन सदृश नील वर्ण के वक्षः स्थल पर पड़ा हुआ मोतियों का हार सुशोभित हो रहा है।[4]

श्री कृष्ण भगवान हस्तिनापुर को उसी मार्ग से जायेगे यह जानकर उनको प्रसन्न करने के लिये देवों ने सुमेरू पर्वत से उसके शिखरों को ला–लाकर इसे

---

1. शि०पा०व० पृ० 177
2. सं० सा० का इति० पृ० 180
3. शि०पा० व० 4/10
4. शि० पा० व० पृ० 110

सजाया तथा उँचा किया अत एव अत्यन्त छोटे भी इस रैवतक पर्वत का इतना उदात वर्णन किया है, वह प्रगल्भ वक्ता कवियों को असत्यभाषी नहीं बना रहा है। अर्थात् इस रैवतक के वास्तिविक गुणों का ही वर्णन कवियों ने किया है।

जहाँ पर पर्वत से घिरा हुआ चट्टान खिले हुये पुष्परूप सहस्र नेत्रों वाले ऊपर से स्थित ऊँचे वृक्ष से इन्द्र जिस पर आरूढ हैं। ऐसे ऐरावत हाथी की शोभा के समान उस पर्वत की स्थित शोभायमान हो रही थी। सूर्य सारथी अरूण से परिवर्तित रंग वाले लालिमा को प्राप्त सूर्य के घोड़े जिस पर्वत पर बासों के कोपलों के समान श्याम वर्ण मरकत रत्नों से अपनी कान्ति हरीतिमा को मानों फिर धारण कर लिया है।

यत्रोज्झिताभिर्मुहुरम्बुवाहै, समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भि: ।

वनं बबाधे विषपावकोत्था विपन्नगानामविपन्नगानाम् ।। [1]

ऊपर लटकते हुए मेघों ने जल बरसाकर सर्प वेष्टित वृक्षों के वन को अत्यन्त आर्द्र कर दिया था, अतएव उस वन को सर्पो के विष से उत्पन्न अग्नि नहीं जला सकती थी। प्राकृतिक वर्णन करते समय कवि बहुत ही रमणीय शब्दों से समानता दिखलाते है।

फलादिभरूष्णांशुकराभिमर्शात्

कार्शानवं धाम पतंगकान्तैः ।

शंशस य: पात्रगुणाद् गुणानां

संक्रान्तिमाक्रान्त गुणातिरेकाम् ।। [2]

1. शि० पा० व० 4/15
2. शि० पा० व० 4/16

—: रैवतक पर्वत वर्णन :—

उस रैवतक पर्वत पर बहुत से सूर्यकान्त मणि थे, यह सर्वत्र फैलती हुई सूर्य किरणों के सम्पर्क से सूर्यकान्त पत्थर आग उगल रहे थे। इस कारण गुण की वृद्धि अच्छे आधार के साथ संसर्ग होने पर होती है। इस बात को मानों वह रैवतक पर्वत कह रहा था। बार–बार देखे गये भी उस पर्वत ने अपूर्व के समान आश्चर्य को बढा दिया, जो प्रतिक्षण नवीनता को धारण करता है, वहीं रमणीयता का स्वरूप है। वह रैवतक पर्वत बार–बार देखे गये भी उस पर्वत ने अपूर्व के समान श्री कृष्ण भगवान् के आश्चर्य को बढा दिया जो प्रतिक्षण नवीनता को धारण करता हुआ रमणीयता स्वरूप है।[1]

श्री कृष्ण भगवान को रैवतक देखकर आश्चर्यचकित होने के बाद बोलने में चतुर दारूक उच्च स्वर से कूजते हुये पक्षि–समूहों वाली पंक्तियों को धारण करते हुये पर्वत को देखने के लिये उत्कण्ठित ग्रीवा को ऊपर किये हुए श्री कृष्ण भगवान् से यह कहने लगा–

आच्छादिताय दिगम्बरमुच्चकैर्गा–

माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालश्रृंगम्।

मूर्ध्नि स्खलन्तुहिनदीधितिकोटिमेन–

मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम्।। [2]

"आच्छादितान्यावृतामि आयतानि दीर्धाणि दिशोअम्बरं खंच दिगम्बराणि येनतं अन्यत्राच्छादितं वसितमायातं दिगेवाम्बरं वासो येन तं तथोक्तम्।"[3]

---

1. शि0 पा0 व0 4/17
2. शि0 पा0 व0 4/19
3. शि0 पा0 व0 पृ0 182

विशाल दिशाओं तथा आकाश को आच्छादित कर स्थित दिग्रूप वस्त्र से शरीर को ढके हुए अर्थात् नग्न रूप में स्थित, विस्तृत रूप से पृथ्वी में व्याप्त एवं ऊँचे तथा बडे शिखरों वाले (बडी–बडी सीगों वाली नन्दी नामक बैल पर आरूढ शिखर से चमकते हुए चन्द्रप्रान्त वाले इस पर्वत राज रैवत की रमणीयता को देखकर पृथ्वी पर कौन आश्चर्यचकित नहीं होगा? अर्थात सभी आश्चर्यचकित हो जायेंगे।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिम–

रूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।

वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय–

परिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।। [1]

"अयं गिरिबिलम्बिना विशेषं लम्बमानेन घंटाद्वयेन परिवारितस्य वेष्ट्तिस्य वारणेन्द्रस्य लीलां शोभां वहति।" [2]

लम्बी–लम्बी तथा ऊपर की ओर रस्सी के समान फैलती हुई किरणों वाले सूर्य के उद्‌य तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर यह पर्वत नीचे की ओर लटकती हुई दो घंण्टाओं से वेष्टित गजराज के समान शोभायमान हो रहा था। शोभती हुई नवीन प्रभा वाला अर्थात, जिस प्रकार से सूर्य के उद्‌य होते समय लालिमा (प्रभा) से आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार उस पर्वत की शोभा प्रतीत होती हुई चारो तरफ दूर्वा से व्याप्त स्वर्णमयी मानो भूमि को धारण कर रहा है, वह सुप्रसिद्ध पर्वत हरताल के समान पीले नवीन वस्त्र पीताम्बर वाले आपके समान पीतवस्त्र धारी श्री कृष्ण भगवान् के समान शोभा से सुशोभित हो रहा था।

---

1. शि० पा० व० 4/20
2. शि० पा० व० पृ० 158

पाश्चात्यभागमिह सानुषु सन्निषण्णाः

पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम्।

सम्पूर्णलब्धललनालपनोपमान–

मुत्संगसंगिहरिणस्य मृगांकमूर्तेः।। [1]

यहॉ रैवतक पर्वत पर शिखरों पर चढे हुए लोग कलंक रहित होने से सघन किरण– समूह वाले, अर्थात् कलंक रहित होने के कारण ही, अंगनाओं के मुख की उपमा को पूर्णतया प्राप्त किये हुए, मध्य में हरिण को धारण किये हुए चन्द्रमा के पिछले भाग के समान दीख रहा था। यह पर्वत इतना अधिक उँचा है कि पर्वत के शिखरों पर चढे हुए लोग चन्द्रमा के पिछले हिस्से को देखने में सामर्थ्य थे, जो पिछला हिस्सा कलंक–रहित होने से बहुत– सी किरणों को मानो फैला रहा है तथा निष्कलंक होने से ललनाओं के मुख की समानता पूर्ण रूप से प्राप्त कर रहा है। जो–जो धर्म ललनाओं के मुख में विद्यमान थे वे–वे सभी धर्म पर्वत पर भी विद्यमान थे। इस रैवतक पर्वत पर ऊँचे तटरहित भागों से चट्टानों के ऊपर गिरकर एवं कण–कण होकर ऊपर की ओर उछलते हुए जल प्रवाह कामपीड़ित देवांगनाओं के देहताप को शीतल कणस्पर्श से उस प्रकार दूर करते है, जिस प्रकार वानप्रस्थ के पालने में असमर्थ पुरूष ऊँचे पर्वत भाग से चट्टानो के ऊपर गिरकर छिन्न–भिन्न शरीर वाला होकर स्वर्ग मे जाता तथा कामपीडिता देवाड.गनाओं के साथ सम्भोग कर उनके शरीर–सन्ताप को शान्त करता है। 'वानप्रस्थ' के पालने में असमर्थ या वानप्रस्थ में स्थित असमर्थ पुरुष को पर्वत से गिरकर, अग्नि मे जलकर या पानी में डूबकर, मरने से आत्मघातजन्य दोष नहीं होता अपितु वह पुरूष स्वर्ग को प्राप्त करता है ऐसा धर्मशास्त्रकारों का मत है।

---

1. शि० पा० व० 4/22

स्थगतयन्त्यमूः शमितचातकार्तस्वरा,

जलदास्तड़ित्तु लितकान्तकार्तस्वराः।

जगतीरिह स्फुरितचारुचामीकराः

सावितुः क्वचित् कपिशयन्ति चामी कराः।।[1]

इस रैवतक पर्वत पर कहीं पर चातकों के दीनवचन को जल प्रदानकर शान्त करने वाले तथा बिजली से मनोहर पीले–पीले सुवर्णों की तुलना करने वाले अर्थात पीले– पीले सुवर्ण के समान चमकती हुई बिजली वाले मेघ इन–भू–भागों को आच्छादित कर रहें हैं, तथा सुन्दर पीले–पीले सुवर्ण को चमकाने वाली ये सूर्य–किरणे कहीं पर इन भू–भागों को पिंगलवर्ण कर रही हैं। अर्थात् चमकती हुई ये सूर्य–किरणें चमकते हुये सुवर्ण वाले भू–भाग रैवतक पर्वत का प्राकृतिक चित्रण का दृश्य पिंगलवर्ण[2] की तरह प्रतीति करा रही थी ।

ऊपर की ओर उठी हुई चन्द्रकिरण रूपी हाथों के अवलम्बन वाले तथा तारागणों को ऊपर अवलम्बन किये हुए शिखरों से अत्यन्त ऊपर उठाया गया आकाशमण्डल के समान वर्ण होने से निर्झर जल के समान प्रतीत होता हुआ इस पर्वत के चारों ओर तटों पर मानों गिर रहा है। चन्द्रमण्डल रैवतक पर्वत शिखर से नीचे है।[3] अतएव उसकी किरणें ऊपर की ओर फैलती हैं। रैवतक के शिखरों को ऊपर की ओर इस प्रकार हस्तावलम्बन दे रही हैं जैसे किसी बोझे को ढोने वाले व्यक्ति के मस्तक को कोई हाथ का सहारा देता है, ऐसे शिखरों से ऊपर उठाया गया तथा समान होने से झरनों का जल प्रतीत होने वाला मानों आकाश मण्डल ही इस रैवतक पर्वत के तटों के चारों ओर गिर रहा है। लोक में भी

1. शि० पा० व० 4/24
2. शि० पा० व० पृ० 108
3. शि० पा० व० पृ० 4/25

किसी बोझ को उठाने वाला मनुष्य दूसरे के हाथ का सहारा लेता है। इससे इस पर्वत की ऊँचाई तथा विस्तार की अधिकता ध्वनित होती है।

एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा

नीलाश्मद्युतिर्भिदुराम्भसोऽपरत्र।

कालिन्दीजलनितश्रियः श्रियन्ते

वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।। [1]

एक ओर स्फटिकमणि के किनारे की प्रभा से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की प्रभा से मिश्रित होने से नीले जल वाली नदियाँ इस रैवतक पर्वत पर यमुना के नीले जल से सुशोभित अर्थात् मिश्रित श्वेत जल वाली गंगाा की शोभा को धारण करती है। अर्थात् तीर्थराज प्रयाग में हुए गंगा तथा यमुना के समान सुशोभित होती है। सुमेरू पर्वत के समान वप्रवाले इस रैवतक पर्वत पर मणिमय शिखरों के रंग इधर–उधर शोभायमान हो रहे हैं और नये प्रेम वाले पति में अनुरागयुक्त एवं देवागनाओं के समान स्त्रियाँ भी इधर–उधर विलास कर रही है।[2]

उच्चैर्महारजतराजिविराजितासौ

दुर्वर्णभित्तिरिह सान्द्रसुधासवर्णा।

अभ्येतिभस्मपरिपाण्डुरितस्मरारे

रूद्वह्निलोचन ललामललाटलीलाम्।। [3]

इस रैवतक पर्वत पर सघन चूने के समान शुभ्रवर्ण तथा सोने की रेखा से सुशोभित ऊँची चाँदी की दिवार भस्म से श्वेतवर्ण शंकर जी के आग निकलते हुए

---

1. शि० पा० व० 4/26
2. शि० पा० व० पृ० 188
3. शि० पा० व० 4/28

नेत्र से सुन्दर दैदीव्यमान चमकते हुए ललाट की शोभा को धारण कर रही है। भस्मोदधूलित शंकर जी के अग्नि ज्वाला वाले ललाट के समान यह पर्वत सुशोभित हो रहा है। यह रैवतक पर्वत अत्यन्त कठोर, अत्यन्त उन्नत, जलपूर्ण होने से अत्यन्त नीचे लटकते हुए मेघों से घिरी हुई अत्यन्त ऊँचाा एवं बीहड़ हाने से सर्वदा जीवधारियों से अगम्य अर्थात कोई जीव वहां नहीं पहुच सकता हो ऐसी हाथियों ने जिनमें दातो से प्रहार किया है ऐसी (पुरूष कृत नख–दन्त–क्षतादि जिसके पकगये है।) तटियों को वृद्धा स्त्रियों के समान धारण कर रहा है।

धूमाकारं दधति पुरः सौवर्णे।

वर्णेनाग्नेः सदृशि तटे पश्यामी।

श्यामीभूताः कुसुमसमूहेऽलीनां

लीनामालीमिह तरवो बिभ्राणाः।। [1]

इस रैवतक पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर इशारा करते हुए कि इस पर सामने रंग में अग्नि के समान सुवर्णमय तट पर पुष्प समूह (फूलों के गुच्छे) में छिपे हुए भ्रमरों के समूहों को धारण करते हुए, श्याम वर्ण ये वृक्ष धूऐ की शोभा धारण कर रहे है।

व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्ती

रून्निद्रपुष्पचण चम्पकपिंगभासः।

सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभा

मेतेन भारतमिलावृतवद्विभाति।। [2]

इस रैवतक पर्वत की चोटियाँ मानों आकाश को स्पर्श करती हुई विकसित

1. शि० पा० व० 4/30
2. शि० पा० व० 4/31

पुष्पों वाले चम्पकों के समान पिगला शोभा वाली स्वर्णमयी तटियों को धारण करते हुए सुमेरू पर्वत के मध्यभाग की शोभा के समान शोभा को प्राप्त कर रहा है। मनोहर अनेक वर्णो के रोम वाले घूमते हुए 'प्रियक' नामक मृग विशेषों से जंगमता को प्राप्त कर अर्थात् जंगम बने हुए अनेक रत्नमय अवयवों के समान यह रैवतक पर्वत सब ओर शोभायमान हो रहा है। इस पर जलाशय में प्रविष्ट तीस वर्ष की अवस्थावाले हाथी के बच्चे खिले हुये कमलों से आनन्दपूर्वक रमण कर रहें है, तथा अव्यक्त मधुर एवं उद्दीपक स्वर वाले सिद्धगण स्त्रियों के समीप में उच्च स्वर से गा रहे हैं।

—: महौषधियों का वर्णन :—

आसादितस्य तमसा नियतेर्नियोगा।

दाकाँक्षतः पुनरपक्रमणेन कालम्।

पत्युस्त्विश्षामिह महौषधयः कलत्र

स्थानं परैरनभिभूतममूर्वहन्ति।। [1]

दैव के नियम से रात्रि में सूर्य अन्धकार से आक्रान्त हो गया तथा फिर अन्धकार से छूटकर प्रभायुक्त होने की इच्छा करती है, तब तक उसकी पत्नी प्रभा को ये महौषधियाँ धारण कर रही है। जिस प्रकार व्यसन में पडे हुए तथा फिर उससे छूटकर समागम की इच्छा करते हुए किसी पुरुष की स्त्रियों की रक्षा कोई दूसरा करता रहता है और उसके लौटने पर उन्हें सुरक्षित रूप में उस व्यक्ति के लिए वापस कर देता है, वैसे ही ये महौषधियॉ कर रही हैं। रात्रि में महौषधियों के प्रज्वलित होने से उक्त कल्पना की गयी है। इस रैवतक पर्वत पर अमृत संजीवनी आदि महौषधियॉ उत्पन्न होती हैं।

---

1. शि० पा० व० 4/34

जिस प्रकार स्त्रियाँ पति के कन्धों पर नवपल्लव के समान हार्थो को रखती हैं। तथा भ्रमरयुक्त पुष्पों के समान कज्जल शोभित नेत्रों को हर्ष से विकसित कर लेती है। उसी प्रकार वनस्पतियों के स्कन्धों पर हाथ के समान नवपल्लवों में रखी हुई तथा भ्रमर समूह से आच्छादित अत एवं लोचक युक्त पुष्परूपी नेत्रों वाली ये लताये इस रैवतक पर्वत पर शोभायमान हो रही है। ग्रामीण स्त्रियों के मस्तक के कपड़े का जो भाग मलिन होता है, उसे लोचक कहते है। अगले श्लोक में पक्षिगण के विषय में महाकवि माघ का कथन है। –

विहगाः कदम्बसुरभाविह गाः कलयन्त्यनुक्षणमनेकलयम्।

भ्रमयन्नुपैति मुहुरभ्रमयं पवनश्च धूतनवनीपवनः।। [1]

कदम्ब–पुष्पों से सुरभित इस पर पक्षिगण प्रत्येक क्षण अर्थात् सर्वदा अनेक लयों के साथ कूज रहे हैं। तथा नये विकसित एवं पल्लवित कदम्बवनों को कम्पित करती हुई तथा मेघ को बार–बार उडाती हुई हवा समीप में आ रही है। इस रैवतक पर्वत के तीर के समीप में फैले हुये अनेक तमाल वृक्षों एवं तालवृक्षों का जो वन सुशोभित होता है। अत्यन्त फैले हुए सूर्य सन्ताप को रोकने वाले इस वन में कौन सी लता पुष्प्युक्त नहीं हो रही है। अर्थात् सभी लतायें पुष्प्युक्त हो रही है।

दन्तो ज्वलासु विमलोपलमेखलान्ताः

सद्रत्नचित्रकटकासु बृहन्नितम्बाः।

अंस्मिन् भजन्ति घनकोमलगंडशैला

नार्योऽनुरूपमधिवासमधित्यकासु।। [2]

इस रैवतक पर्वत पर निकुंजो से मनोहर, श्रेष्ठ रत्नों से चित्रविचित्र

1. शि० पा० व० 4/36
2. शि० पा० व० 4/40

मध्यभाग वाली श्रेष्ठ रत्नों से विचित्र कंकनों वाली पर्वत की ऊपर भूमियों पर निर्मल चट्टान वाले मध्य भाग से रमणीय निर्मल अर्थात् निर्दोष होने से श्रेष्ठ मणियों से युक्त करधनी से रमणीय बडे–बडे शिखरों वाली बडे–बडे तथा चिकने चट्टानों वाली अत्यन्त कोमल कपोलमण्डल वाली स्त्रियाँ अपने योग्य या श्रेष्ठ निवास स्थानों को प्राप्त करती हैं। चमरी गायें कीचकों (बासों) के वन में उलझे हुए अनेक पूँछ के बाल के टूटने के भय से वहाँ से दूसरी जगह जा नहीं रही हैं। वह ऐसा ज्ञात होता है कि उस कीचकों की मधुर ध्वनि को सुनकर उत्पन्न आनन्द के वशीभूत होकर अन्यत्र नहीं जाती ।

मुक्तं मुक्तागौरमिह क्षीरमिवाभ्रै–
र्वापीष्वन्तर्लीनमहानील दलासु।
शस्त्रीश्यामैरंशुभिराशु द्रुतमम्भ
श्छायामछामृच्छति नीलीसलिलस्य।। [1]

इस पर्वत पर भीतर में डूबे हुए इन्द्रनील (नीलम) मणियों के टुकडों वाली बावलियों में मेघ से बरसाया गया, मोती के समान शुभ्र दूध के समान स्थित पानी कटारी के समान श्यामल किरणों से शीघ्र ही नीली (नील नामक औषधिविशेष) की स्फुट कान्ति को पा लेता है। दूसरी अंगनाओं से श्रेष्ठ गति वाली जो स्त्री प्रयत्न करने वाली भी पति को संगमार्थ प्राप्त नहीं की अर्थात् उस पति के साथ गमन नहीं किया वह स्त्री इस पर्वत पर एकान्त में उस पति के साथ मन को हलकाकर सुरतक्रीणा करती है।

---

1. शि० पा० व० 4/44

—: कमलिनी वर्णन :—

भिन्नेषु रत्नकिरणैः किरणेष्विहेन्दो

रूच्चावचैरूपगतेषु सहस्रसंख्याम्।

दोषापि नूनमहिमांशुरसौ किलेति

व्याकोशकोकनदतां दधते नलिन्यः।। [1]

इस पर्वत पर चन्द्र किरणों के अनेक प्रकार की रत्न किरणों से भिन्न मिश्रित होकर सहस्रो संख्या वाली हो जाने पर यह निश्चित रूप से सूर्य है ऐसा मानकर कमलिनियाँ रात्रि में भी विकसित कमलों वाली हो जाती है।

इस प्रकार गोद में खेलने वाली कन्या जब पति के पास जाने लगती है, तब पिता वत्सलता के कारण रोदन करता है, उसी प्रकार रैवतक पर्वत के मध्य में बहने वाली इसी से उत्पन्न नदियाँ समुद्र में मिलने के लिए समतल भूमि पर बहती हैं और पक्षी करूण कलरव कर रहे है जो ऐसा ज्ञात होता है। कि यह रैवतक पर्वत ही विछुडती हुई उन नदीरूपिणी पुत्रियों के लिए अनुरोदन कर रहा हो।

मधुकर विटपान मितास्तरूपङ्‌—

क्तीर्बिभ्रतोऽस्य विटपानमिताः।

परिपाकपिशंगलतारजसा

रोधश्चकास्ति कपिशंगलताः।। [2]

महाकवि माघ पर्वत की स्थित का वर्णन करते हुये भ्रमररूपी विटों के द्वारा पीये गये तथा शाखाओं से अत्यन्त झुकी हुई वृक्ष श्रेणियों को धारण करने वाले

1. शि० पा० व० 4/46
2. शि० पा० व० 4/48

इस पर्वत का किनारा अर्थात् मध्यभाग गिरते हुए पकने से पीली लताओं के पुष्प परागों से पिंगल वर्ण होकर सुशोभित हो रहा है। इस पर्वत पर ऊपर की ओर से गैरिक आदि धातुओं से मिश्रित होकर उपत्यकाओं द्वारा पहाड़ के निचले भागों में गिरता हुआ श्रृंगारयुक्त किये गये लम्बे गजराज के सूँढ केसमान तथा अनेक रत्नकिरणों से अनुरन्जित यह जल ऊपर की ओर फैलाये गये इन्द्रधनुष के समान सुन्दर दृष्टिगोचर होता है।

दधाति च विकसद्विचित्रकल्पद्रुमकुसुमैरभिगुम्फितानिवैताः।

क्षणमलघुविलम्बिपिच्छदाम्नः शिखरशिखाः शिखिशेखरानमुष्य।। [1]

इस पर्वत की शिखररूपिणी शिखायें अर्थात् शिखराग्र भाग खिले हुए विचित्र कल्प– द्रुम के फूलों से गूँथे हुए के समान लम्बे लटकते हुए मयूर पंख की माला वाले मयूर रूपी शिखामालाओं को मानों कुछ समय तक धारण कर रहा है। इस पर श्रेष्ठतम मन्दराचल से आये हुए अगरों के समान तथा गहरे रंग वाले कमल के समान नेत्रों वाले भोगी लोग स्त्रियों के साथ होकर अनुराग युक्त नवीन सुरत का सेवन नहीं करते हैं यह बात नहीं है अर्थात् नवीन सुरत का सम्यक् प्रकार से सेवन करते ही है। पुष्परूपी कपड़े का वर्णन करते हुए कह रहे है।

आच्छाद्य पुष्पपटमेष महानतमन्तरा–

वर्तिभिर्गृहकपोत शिरोधराभैः।

स्वाँगानि धूमरूचिमागुरवीं दधानै–

र्धूपायतीव पटलैर्नवनीरदानाम्।। [2]

---

1. शि० पा० व० 4/50
2. शि० पा० व० 4/52

यह रैवतक पर्वत विशाल पुष्प समूह रूपी या पुष्पों से सुवासित कपड़े से आच्छादित अर्थात् पुष्प रूपी कपड़े से अपने को ढककर भीतर से घूमते हुए कबूतरों की गर्दन के समान धूमिल तथा अगर के धूएं की कान्ति को धारण करते हुए अर्थात अगर के धूएँ के समान मालुम पड़ते हुए नये मेघों के समूहों से अपने अगों को मानो धूमिल कर रहा है। अनेक विधरंग वाले दोष रहित, श्रेष्ठजातीय रत्नों के उत्पन्न किरणों से आकाश में बिना दीवार के बनायी गयी चित्रकारी आकाशगामियों को आश्चर्यित कर देता है।

समीरशिशिरः शिरः सु वसतां–

सतां जवनिका निकामसुखिनाम्।

विभर्तिजनयन्नयंमुदमपा–

मपायधवला बलाहकततीः।। [1]

अर्थात् वायु से शीतल शिखरों पर बसने वाले अत्यन्त सुखी सज्जनों के हर्ष को उत्पन्न करता हुआ यह रैवतक पर्वत जल के बरस जाने से शुभ्र मेघ समूह रूप पर्दे को धारण कर रहा है। इस पर्वत पर मरकत मणि की भूमियों पर पेडों की डालियों के मध्य छिद्र से गिरने वाली तथा जिनमें महीन धूलिकण चमक रहे हैं ऐसी सूर्य किरणें नीचे की ओर झुकी हुई मयूर की गर्दन की शोभा को धारण कर रही हैं अर्थात् उनके समान सुशोभित हो रही हैं। अत्यन्त श्याम वर्णवाली उनके समान सुशोभित हो रही हैं। अत्यन्त श्याम वर्णवाली तथा चंचल (अत एवं गूँजती हुई) जो (भ्रमर श्रेणि) अत्यन्तमधुर वीणातन्ती की ध्वनि को धारण करती है। अर्थात् भ्रमर श्रेणि से सुखपूर्वक नम्र करने योग्य कौन स्त्री पति को प्रणाम नहीं करती है? अर्थात् भ्रमर श्रेणी का गुंजन कामोद्दीपक होने से सभी स्त्रियाँ मान त्यागकर पति के समीप नम्र हो जाती हैं ।

1. शि० पा० व० 4/54

—: पर्वत का वर्णन निम्नवत है :—

सायं शशांककिरणाहतचन्द्रकान्त—

निस्यन्दिनीरनिकरेण कृताभिषेकाः।

अर्कोपलोल्लसितवह्निभिरहि तप्ता—

स्तीव्रं महाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्राः।। [1]

जिस प्रकार कोई व्यक्ति रात में जल में रह कर या स्नान कर दिन में पंचाग्नि से सन्तप्त होता हुआ महाव्रत का आचरण करता है वैसे ही इस रैवतक पर्वत के तट पर मानों महाव्रत का पालन कर रहे है, ऐसा प्रतीत होता है। इस रैवतक पर्वत पर बडे—बडे जलाशय बहुत जलसमृद्धिवाले गम्भीर है, हवा के वेग से तरंगित हो रहे है। तथा सारसों से युक्त सारस पत्नियों वाले हैं ओर वाल्मीकि मुनि के वचन बहुत से बन्दरों वाले शोभायुक्त वेगवान् हनुमान जी से क्षोभ को प्राप्त तथा सम लक्षण से युक्त है अत एव ये जलाशय वाल्मीकि मुनि[2] के वचनों के धर्मवाले हो रहे है। इस पर इच्छानुकूल आहार—विहार करने से हर्षित हांथी के तीन वर्ष के बच्चे प्रत्येक दिशाओं में अर्थात् सब ओर बार—बार स्पष्ट तथा भयंकर शब्द कर रहे है। वन के समीप में चमरी गायों का झुण्ड तथा सुवर्णमयी एवं रत्नमयी भूमि से किरणें स्फुरित हो रही हैं।

त्वक्साररन्ध्र परिपूरणलब्धगीति—

रस्मिन्नसौ मृदित पक्ष्मलरल्लकांगः।

कस्तूरिकामृगविमर्द सुगन्धिरेति

रागीवसक्तिमधिकां विषयेषु वायुः।। [3]

---

1. शि० पा० व० 4/58
2. काव्यमीमांशा पृ० 39
3. शि० पा० व० 4/61

इस पर्वत पर बांस के छिद्रो को पूर्ण करने से गान सुख को प्राप्त, रोग युक्त कम्बल मृगों के अंगों का मर्दन किया हुआ तथा कस्तूरी मृग के संसर्ग से सोरभ युक्त यह पवन राग के समान विषयों में अधिक असक्ति को प्राप्त कर रहा है। इस पर्वत पर युवक लोगों की प्रशन्नता के लिए धूप के व्यवहित किये हुए तथा सुरत क्रीडा जन्य थकावट की खिन्नता को दूर करने में समर्थ मेघ अत्यन्त अंधकार युक्त दिन को ऐसा बना रहा है कि वह अपने को रात्रि के समान अन्धकार युक्त कर रहा है।

प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि

सान्द्रेभचर्म वसना वरणोऽधिशेते।

सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति

न द्वन्द्व दुःखमिह किंचिद किंचनोऽपि।। [1]

ईश्वर भी मोटे गजचर्म को पहने तथा ओढे हुए बर्फ से ठण्डे कैलास पर सोते है। अर्थात ऐश्वर्यमान् शिवजी भी ठण्डक के भय से उसके निवारणार्थ मोटे गजचर्म को पहनते तथा ओढते हैं किन्तु सब ऋतुओं में सुख देने वाले इस रैवतक पर्वत पर निवास करता हुआ दरिद्र कुछ भी द्वन्द्व दुःख को नही पाता है।

नवनगवन लेखाश्याममध्या भिराभिः

स्फटिककटक भूमिर्नाटयत्येष शैलः।

अहिपरिकर भाजो भास्मनैरंग रागै

रधिगतधव लिम्नः शूल पाणेरभिख्याम्।। [2]

यह पर्वत नयी वृक्षों के वनों की श्रेणियों से अन्धकार युक्त मध्य भाग वाली

---

1. शि० पा० व० 4/64
2. शि० पा० व० 4/65

स्फटिक मयी मध्य भाग की भूमियों सें वासुकिरूपी परिकर को धारण किये हुये तथा भस्ममय अंग लेप से शुभ्र वर्णन शिवजी की शोभा का अनुकरण कर रहा है।

दर्पणनिर्मलासु पतिते धनतिमिर मुषि

ज्योतिषिरौप्य भित्तिषु पुरः प्रतिफलति मुहुः।

ब्रीडमसम्मुखोऽपि रमणैरपहृत वसनाः

कांचन कन्दरासु वरूणीरिह नयतिरविः।। [1]

इस (रैवतक पर्वतपर) पर सूर्य दर्पण के समान स्वच्छ सामने की रजत मयी दीवारों पर गिरी हुई घने अन्धकार को दूर करने वाली किरण के सुवर्ण मयी गुफाओं में बार–बार प्रतिफलित होते रहने पर पतियों से वस्त्र हीन की गयी तरूणियों को स्वयं सम्मुख नहीं होता हुआ भी अर्थात् परोक्ष में रहता हुआ भी लज्जित करता है।

अनुकृत शिखरौधश्रीभिरम्या गतेऽसौ

त्वयिसरभसमभ्युतिष्ठतीवाग्नि रूच्चैः।

द्रुत मरूदुपनुन्नैरून्नमद्भिः सहेलं

हलधर परिधानश्यामलैरम्बुवाहैः।। [2]

श्री कृष्ण भगवान से उनका सारथि दारूक कहता है कि शिखर समूह के समान मालूम पडते हुये श्याम वर्ण इन मेघों के वायु प्रेरित होकर ऊपर उठने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह रैवतक पर्वत ही आपके स्वागतार्थ अभ्युत्थान कर रहा है।

---

1. शि0 पा0 व0 4/67
2. शि0 पा0 व0 4/68

—: ऋतु वर्णन :—

अथरिरंसुममुं युगपद गिरौ

कृत यथास्व तरू प्रसवश्रिया।

ऋतुगणेन निषेवितुमादधे

भुविपदं विपदन्त कृतं सताम्।। [1]

इस सेना निवेश के बाद रैवतक पर्वत पर रमण करने के इच्छुक तथा सज्जनों की विपत्ति को दूर करने वाले भगवान श्री कृष्ण की सेवा करने के लिए अपने—अपने वृक्षों के अनुसार पल्लव तथा पुष्प आदि की शोभा को उत्पन्न किए हुये वसन्तादि ऋतु समूह ने एक साथ पैर रखा अर्थात् अपने—अपने चिन्हों को प्रकट किया।

—: बसन्त ऋतु वर्णन :—

यद्यपि रैवतक पर्वत एक ही साथ छह ऋतुएँ अपना—अपना कार्य आरम्भ कर दी तथापि छहो ऋतुओं का वर्णन एक साथ करना आवश्यक होने से आगे वसन्तादि ऋतुओं का क्रम से वर्णन किया गया है। उसमें सर्वप्रथम वसन्त का वर्णन बीस श्लोकों (2—21) से करते है। श्री कृष्ण भगवान ने पहले नव पल्लव युक्त पलाश वन वाले विकसित तथा मकरन्द से परिपूर्ण कमलों वाले कोमल कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्प समूहों से सुरभित वसन्त ऋतुओं को देखा। मृग नयनियों के ललाट में उत्पन्न पसीने के जल को सुखाते हुए उनके क्लेश कलाप को हिलाने वाला, नील कमलों के विकास पूर्वक जलाशयों के तरंग श्रेणि को चपल करता हुआ पवन चलने लगा।

---

1. शि० पा० व० 6/1

तुलयति स्म विलोचन तारका:

कुरबक स्तब कब्यतिषगिंणि।

गुण वदाश्रय लब्ध गुणोदये

मलिनिमालिनिमाधवयोषिताम्।। [1]

श्वेत वर्ण के कुरूबक के पुष्प पर बैठने से भ्रमर की शोभा शुभ्र वर्ण का आश्रय पाने से अधिक बढ गयी अर्थात श्वेत पुष्प पर भ्रमर की कालिमा चमक उठी उस समय वह भगवान श्री कृष्ण के नेत्र की काली पुतली के समान शोभित थी, क्योंकि उन अंगनाओं के स्वच्छएवं विशाल नेत्रों में छोटी सी काली पुतली शुभ्र वर्ण बडे कुरूबक पुष्प पर बैठे कृष्ण वर्ण के छोटे भ्रमर के समान ही थी।

स्फुटमिवोज्वल कांचन कान्तिभि

र्युतमशोकमशोभत चम्पकै:।

विरहिणां ह्रदयस्य भिदाभृत:

कपिशितं पिशितं मद नाग्निना।। [2]

इस पद्य में बसन्त ऋतु में विकसित होने वाले चम्पा तथा अशोक के पुष्प को क्रमश: मदनाग्नि तथा विदीर्ण बिरहि हृदय को मांस माना गया है इस प्रकार अग्निरूप चम्पक पुष्प के मध्यगत मांस रूप अशोक पुष्प का कपिश (पिंगल) वर्ण होना उचित है।

आम्र वन के पराग मानों कामाग्नि के भभूल (भूसे की अग्नि के) मुर्मुर चुर्ण बन गये। सब ओर से ऊपर गिरे हुये वे पथिकों को सन्तप्त करने लगे। जिस प्रकार पति पर रूष्ठ नायिका को मनाकर प्रशन्न करने के लिए कोई व्यक्ति दूती

---

1. शि0 पा0 व0 6/4
2. शि0 पा0 व0 6/5

को भेजता है और वह दूती उस नायिका के पास जाकर उसे अनेक विधि प्रिय वचनों से प्रशन्न कर लेती है।उसी प्रकार मानों कामदेव ने भी मधुप श्रेणि को प्रियतमों पर क्रुद्ध नायिकिाओं को खुश करने के लिए भेजा है। ऐसी प्रतीति कुरूबक पेडों से उडती हुई भ्रमर श्रेणि को देखकर होती थी। उस मधुप श्रेणि के मधुर शब्द को सुनकर मानिनियों का मान भंग हो जाने से उक्त उत्प्रेक्षा की गई है। पुष्प रसों का पान कर मधुर ध्वनि करती हुयी वृक्षों से उडती भ्रमर श्रेणि को देखकर मानिनियों का मान भंग हो जाता है।

न खलु दूर गतोप्यति वर्तते महमसा विति बन्धुत यो दितैः।

प्रणयिनो निशमय्य बर्धूबहिः स्वरमृतैरमृतैरिव निर्ववौ।। [1]

और अत्यन्त दूरस्थ भी तुम्हारा प्रणयी बसन्तोसव को नहीं छोडेगा अर्थात वसन्तोंत्सव मनाने के लिए अवश्य आवेगा। इस प्रकार प्रिय जनों के सत्य कथनों से बाहर प्रियतम के स्वर को सुनकर वह नायिका उसी प्रकार तृप्त हुई जिस प्रकार अमृत से कोई तृप्त होता है। मनोहारिणी वसन्त से विकसित की गई अर्थात् वसन्त में खिली हुई माधवी लता के पराग के बढने से बढी हुयी बुद्धि वाली अर्थात वसन्त में विकसित माधवी लता के पुष्प पराग का पान कर मतवाली मदोत्पादक ध्वनि करती हुई भ्रमरी गंभीरता युक्त उच्चस्वर से गाने लगी।

अरूणिताखिलशैलवनामुहुर्विदधतीपथिकान् परितापिनः।

विकचकिंशुक संहतिरूच्चकैरूदवहद्‌दवहव्यवहश्रियम्।। [2]

समस्त पर्वत के वन को रक्त वर्ण बनाती हुयी तथा पथिकों को बार–बार सन्तप्त करती हुयी और ऊँची विकसित पलाश पुष्पों की श्रेणी ने दावाग्नि की शोभा को प्राप्त किया अर्थात् खिले हुये ऐसे मालुम थे कि वन में दावाग्नि लग रही हो।

---

1. शि० पा० व० 6/19
2. शि० पा० व० 6/21

—: ग्रीष्म ऋतु वर्णन :—

(वसन्त वर्णन करने के बाद अब तीन श्लोकों से ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुये) जिस शुचि अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में शिरीष पुष्पों के पराग की कान्ति सूर्य के घोड़ों के हरित वर्ण वाले रोमो की समानता ग्रहण करती है अर्थात् हरी हो जाती है, नव मल्लिकाओं के सुगन्ध को चिरस्थायी करता हुआ वह शुचि (ग्रीष्म ऋतु) आ गया। कोमलपटल कलिकाओं को विकसित करने वाली अपनी अंगनाओं के निःश्वास के सदृश तथा जिनमें उन्मत्त भ्रमर उड रहे है। ऐसी हवा बहते रहने पर विलासी लोग मद से चंचल हो गये। इन्द्र धनुष युक्त मेघ की विचित्रता ने अनेक प्रकार के मणियों से युक्त कुण्डलों की कान्ति के समूह से मिश्रित कान्ति वाले तथा बलिदैत्य को नष्ट करने वाले वामन भगवान् के शरीर का अनुकरण किया अर्थात् वामन भगवान के शरीर के समान शोभने लगा।

तीव्र वायु से चपल मेघों से क्षण मात्र में दृष्टि गोचर होकर अन्तर्हित बिजली तीव्र वायु से चंचल डालियों से क्षणमात्र दृष्टिगोचर होकर अन्तर्हित नये तमाल वृक्ष के सदृश आकाश रूप वृक्ष की मंजरी के समान शोभती थी।

जलद पंक्तिरनर्त यदुन्मदं कलविलापिकलापिकदम्बकम्।
कृत समार्जनमर्दलमण्डलध्वनिजयानिजयस्वनसम्पदा।। [1]

अपनी ध्वनि सम्पत्ति से मसाला लगाये हुये नगाडे के शब्द को जीतने वाली मेघ श्रेणी ने उन्मत्त होकर मधुर केका शब्द करते हुये मोरों को नचाया अर्थात मेघ की गम्भीर ध्वनि को सुनकर मोर उन्मत्त होकर बोलते हुये नाचने लगे।

नव कदम्ब रजोरूणिताम्बरैरधिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्र सुगन्धिभिः।
मनसि रागवतामनुरागितारवनवावनवायुभिरादधे।। [2]

---

1. शि0 पा0 व0 6/31
2. शि0 पा0 व0 6/32

नव कदम्ब के पुष्प के पराग से आकाश को अरूण किए हुये कदली पुष्पों की सुगन्ध से युक्त वनपवनने रोगियों के मन में स्त्री विषयक नया–नया राग उत्पन्न किया।

अर्थात् उक्त पवन के बहने से कामी पुरूषों का स्त्रियों में अधिकाधिक अनुराग हो गया। बादलों में बहुत थोडे पानी के प्रथम बिन्दुओं द्वारा ताप रहित शान्त धूलि वाले सौरभयुक्त रैवतक के मैदान को स्त्री जनों के लिए ये सुखपूर्वक चलने योग्य नहीं बना दिया ऐसा नहीं अर्थात थोडा पानी बरसाने से छिडकाव सा करके रैवतक के मैदान को धूल रहित एवं सौरभ युक्त कर अंगनाओं के आनन्द पूर्वक चलने योग्य बना ही दिया। हांथी के दाँत के समान स्वच्छ घूमते हुए भ्रमर रूपी मृगकान्ति वाला तथा सूक्ष्माग्र केतकी के पुष्प का लोगों ने सघन मेघ के गरजने से आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के टुकडे के समान देखा। पीसे गये मोती के चूर्ण के समान अत्यन्त श्वेत वर्ण तथा स्फुरित होते हुए झरनों के सूक्ष्म जल कणों के समान मनोहर कुटज के फूलों के पराग कण मानों दही के चूर्ण के समान शोभते थे।

–: वर्षा ऋतु वर्णन :–

प्रणयकोपभृतोऽपि परांगमुखाः –

सपदि वारिधरारवभीरवः।

प्रणयिनः परिरब्धुमथांगना –

ववलिरे वलिरेचित मध्यमाः।। [1]

पति रहित स्त्रियों के चित्त की रक्षा नही करने वाली अर्थात् विरहिणियों

1. शि० पा० व० 6/38

के लिए दुख दायिनी नये कदम्बों के वन की श्रेणि ने कपड़े के समान मेघ से आच्छादित दिशाओं के लिए अपने पराग से कपड़े को सुवासित करने वाली चुर्ण के समान विखेर दिया।

विगतरागगुणोऽपिजनो न कश्चलति वातिपयोदनभस्वति।

अभिहितेऽलिभिरेवमिवोच्च कैरननृते ननृतेनव पल्लवैः।। [1]

बरसाती वायु बहते रहने पर विरक्त भी कौन पुरूष चंचल नहीं हो जाता है। मानो इस प्रकार सत्य वचन भ्रमरों के कहने पर नव पल्लव नाचने लगे। मानों मेघ के भय के कारण रति गृह से बाहर जाना नहीं चाहती हुई तथा काम वश आलस्य युक्त हो बोलती हुई युवतियाँ यदुवंशी राजाओं के समूह को रमण करने लगीं अर्थात् उनके साथ सम्भोग करने लगी।

—: शरद ऋतु वर्णन :—

अब वर्षा के अवसान का वर्णन करते हुए शरद ऋतु का वर्णन करने का उपक्रम करते है। सुदर्शन चक्रधारी ने सूर्य को छिपाने वाले पक्षि समूहों को घोसले में रखने वाले तथा दिशाओं के ज्ञान को नष्ट करने वाले मेघ ने इस समय को दूसरे रूप में प्राप्त किया अर्थात् वर्षा ऋतु को समाप्त होते हुये देखा।

स विकचोत्पलचक्षुषमैक्षतभृतोंकगतां दयितामिव।

शरदमच्छगलद्वसनोपमाक्षमधनामधनाशन कीर्तनः।। [2]

वर्षा ऋतु का वर्णन करने के उपरान्त अब तेरह श्लोकों से क्रमागत शरद ऋतु का वर्णन करते हैं। पाप नाशक कीर्तन है जिसका ऐसे उस श्री कृष्ण भगवान ने विकसित कमल रूप नेत्रों वाली तथा सरकते हुए स्वच्छ कपडे. की

1. शि० पा० व० 6/39
2. शि० पा० व० 6/42

उपमा के योग्य अर्थात् नीचे की ओर सरकते हुए स्वच्छ कपडे. के सामान मेघ वाली शरद् ऋतु को पर्वतराज में स्थित प्रिया के समान देखा। संसार में रात्रि जन्य अन्धकार को आकाश में मेघ समूह रूप अन्धकार को सूर्य ने किरणों से दूर कर दिया बड़ों के शत्रु कहॉ अक्षत रहते है?

अर्थात् जहाँ कहीं सुदूर प्रदेश में भी तेजस्वियों के शत्रु रहते हैं सर्वत्र नष्ट ही हो जाते है। शरद् ऋतु में हंसो के शब्द मधुर तथा मयूरों के शब्द कर्कश हो गये उसके पूर्व वर्षा ऋतु में हसों के शब्द कर्कश तथा मयूरों के शब्द मधुर थे। यह परिवर्तन समय के कारण ही हुआ। अत एवं हंस के शब्द से ही प्राणियों के बलाबल को समय ही करता है ऐसी उत्प्रेक्षा की गई है।

जिस प्रकार लाल अधर वाले स्त्रियों के मुख में नेत्रों के विलास शीभती है। उसी प्रकार प्रत्येक वन में पुष्पों से अरूण वर्ण वाली वन राजि के अग्रिम भाग में खिली हुई नीली झिण्टी के फूलों की पंखुडिया शोभती थीं। यहॉ पर जपापुष्प में स्त्री के अधर की वनराजि में स्त्री के मुख की तथा नीली झिण्टी के पुष्प दलों में स्त्रियों के चंचल नेत्रों की कल्पना की गई है।

कनकभंगपिशंगदलैर्दधे सरजसारूणकेशरचारूभिः ।

प्रियविमानितमानववीरुषां निरसवैरसनैरवृथार्थता।। [1]

कटे हुए सुवर्ण के समान पिगंल फूलों की पंखुड़ियों वाले पराग सहित केसरों से मनोहर और पति से तिरस्कृत मानवती स्त्रियों के क्रोध को दूर करने वाले असन सार्थकता को प्राप्त किया अर्थात् असन का नाम वस्तुतः चरितार्थ हो गया ।

मुखसरोजरूचंमदपाटलामनुचकारचकोरदृशांयतः ।,

धृतनवातप मुत्सकतामतोन कमलंकमलम्भयदम्भसि।। [2]

1. शि0 पा0 व0 6/47
2. शि0 पा0 व0 6/48

प्रातः काल की धूप को धारण करने वाला जल कमल ने जिस कारण चकोर नयनियों के मद से अरूण वर्ण मुख कान्ति का अनुकरण किया अर्थात् उनके मुख के समान शोभने लगा उस कारण से किस पुरूष को उत्कंण्ठित नहीं कर दिया। अर्थात कमल को देखकर तुल्य रूप होने से सभी युवक पुरूष अपनी–अपनी प्रिया के मुख का स्मरण कर प्रिया के लिए उत्कंण्ठित हो गये। आश्विन मास में धान की रखवाली करने वाली गोबधुओं ने निर्निमेष हो उच्च स्वर से गाये गये मधुर गान सुनते हुए अत एवं धानखाने की इच्छा नहीं करने वाले मृग समूहों को नहीं भगाया।

सप्त वर्ण के गुच्छों से सुगन्धित अर्थात् हांथी के मद के समान गन्धवाली भ्रमरों के द्वारा उच्च स्वर से गाये गये अर्थात् प्रशंसित मद युक्त किये गये लोकत्रय को व्याकुल करने वाले कार्तिक मास रूपी हाथी की सूचना देती हुयी सी बहने लगी। शरद् ऋतु का वर्णन करने के उपरान्त अब बारह श्लोकों से प्राप्त हेमन्त ऋतु का वर्णन करते है। हाथी के प्रमाण या जिनमें हाथी डूब जाय ऐसी नदियों को भी हिममय करती हुई हेमन्त की वायु पथिकों की स्त्रियों के नेत्रों का अतिशय सन्ताप करने वाले जल प्रवाह को बढा दिया अर्थात उक्त रूप हेमन्त की हवा से विहरिणी स्त्रियों के नेत्र से गर्म आँसू बहने लगे ये स्त्रियाँ बहुत रोने लगी। समय की प्रवलता से शत्रुओं के बहुत बढ जाने पर बलवान भी असमर्थ हो जाता है। क्योकि माघ मास में मन्द किरणों वाला सूर्य बढ़े हुये हिम को नष्ट नहीं कर सका। लवंगों के पुष्प दलों पर बैठने वाले ये भ्रमर पराग, ये अधिक मलिन हो गये मानो इस प्रकार सामने तत्काल विकसित होते हुये अपने पुष्पों से कुन्दलता ने भ्रमरों का उपहास किया।

—: शेष तथा पूर्वोक्त ऋतुओं का उपसंहार :—

इस प्रकार वसन्तादि छह ऋतुओं का वर्णन समाप्त हो जाने पर भी और यमक पद्यों की रचना के इच्छुक महाकवि माघ पुनः दश श्लोकों से सब ऋतुओं का वर्णन करते हुए पहले चार श्लोको से वसन्त ऋतु का वर्णन करते हैं। अत्यन्त सौरभयुक्त सन्तानक नामक देव वृक्ष पुष्प सम्पत्तियों की अधिकता से मानों टूट सा गया और वसन्त ऋतु का दुन्दुभिरूप कोकिल कामियों के रति का बढ़ाने के लिए ध्वनि करने लगा। प्रभाव युक्त बसन्त ने "मैं संसार को वशीभूत करने में समर्थ काम सेना में इन विजयिनी ध्वजा पताकाओं को फैला दूँ।" इस विचार से कदली के स्तम्भों को फैला दिया।

कुटजानिवीक्ष्यशिखिभिः शिखरीन्द्रं समयावनौ घनमदभ्रमराणि।

गगनं च गीतनिनदस्य गिरोच्चैः समयावनौघनमदभ्रमराणि।। [1]

पर्वत राज रैवतक के समीप में पृथ्वी पर मतवाले भ्रमरों से युक्त कोरैया के फूलों को तथा जल भार से नीचे की ओर नम्र बादलों वाले मेघ को देखकर मोर अर्थात वर्षा ऋतु में मोर का स्वर मधुर होने के कारण गाने के समान मधुर केका वाणी का उच्च स्वर से उच्चारण करने लगे।

कान्ता जनेन रहसि प्रसभं गृहीत केशे रते स्मरस हास वतोषितेन।

प्रेम्णा मनस्सु रजनीष्वपि हैमनीषु के शेरतेस्म रस हास वतोषितेन।। [2]

---

1. शि० पा० व० 6/73
2. शि० पा० व० 6/77

इस श्लोक से हेमन्तऋतु का वर्णन करते हैं। एकानत में कामोंद्दीपक मद्य से सन्तुष्ट की गयी अनुराग तथा हास से युक्त और प्रेम से अर्थात् प्रेम युक्त होने से प्रियतमों के चित्तों में बसी हुई स्त्रियों के द्वारा बलपूर्वक पकडे गये केशों वाले अर्थात् जिनमें स्त्रियाँ अनुराग से सम्भोगार्थ प्रियतमों के केशों को बलपूर्वक पकड कर खीचती है। ऐसे सुरत में हेमन्त ऋतु के रात्रियों में भी कौन पुरूष सोते हैं? अर्थात् कोई भी पुरूष नही सोते हैं। किन्तु उक्त रूप प्रियतमाओं के साथ सम्भोग करते है। शिशिर ऋतु में स्फुटित सुन्दर पल्लवों के विलास से विस्मित भ्रमरों की लवली श्रेणी बार–बार उच्च स्वर से गूंजने लगी।

इस प्रकार इस अध्याय में महाकवि माघ द्वारा वर्णित प्रकृति की विशेषता का वर्णन किया गया है। प्रकृति अपने सौम्य (सुन्दरता) से किस प्रकार लोगों को प्रफुल्लित करती इन सबका सूक्ष्म रूप से विवेचन किया गया है।

अध्याय चार
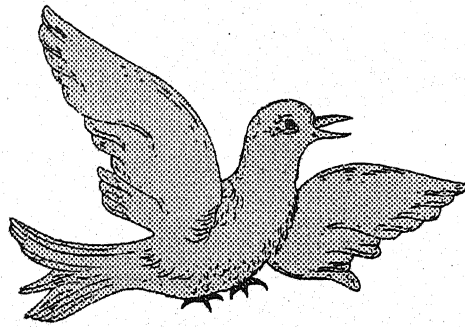
किरातार्जुनीयम में प्राकृतिक चित्रण

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के प्रतिष्ठित कविरत्न हैं। महाकवि भारवि संस्कृत में नूतन काव्यशैली के प्रवर्तक माने जाते हैं।[1] यद्यपि उन्होंने अपने परवर्ती कवियों का अनुकरण भी किया है। फिर भी काव्य में पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के वे प्रथम उद्भावक है। महाकवि भारवि अपने पात्रों के चरित्र–चित्रण में पूर्ण सफल हुए हैं। भारवि अलंकृत काव्य–शैली के कवि हैं। काव्य में अलंकारों का प्रयोग होते हुए भी अर्थगौरव क्षीण नहीं हुआ है। कालिदास माघ आदि कवियों में भी अर्थ गाम्भीर्य प्राप्त होता है।[2] किन्तु भारवि के अर्थगौरव के समक्ष वह न्यून है। महाकवि भारवि ने अपने महाकाव्य में चतुर्थ एवं पंचम सर्ग में बहुत ही मनोरम एवं सुगम शब्दों के माध्यम से प्राकृतिक चित्रण प्रस्तुत किये हैं इन्द्रकील पर्वत की ओर यक्ष के साथ जाते हुए अर्जुन ने शरद की शोभा को निम्नलिखित रूप में देखा :–

विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीर–

पेतपंकाः–ससरोरुहाम्भसः ।

ननन्दपश्यन्नुपसीमसस्थलीरु–

पायनीभूतशरद्गुणाश्रियः ।। [3]

महाकवि भारवि बहुत ही मार्मिक शब्दों से वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि ग्राम की सीमा के समीप के भूमिखण्ड झुके हुए धान की बालों से सुशोभित हो रहे थे।

1. सं० सा० का इति० पृ० 121
2. रघुवंश (भूमिका) पृ० 2
3. किरा० 4/2

मनोरमं प्रापितमन्तरं भ्रुवोर

लंकृतं केसररेणुनाणुना।

अलक्तताम्राधरपल्लवश्रिया

समानयन्तीमिव बन्धुजीवकम्।। [1]

कवि आगे आये हुये तीन श्लोकों के माध्यम से धान की रक्षा करने वाली स्त्रियों का वर्णन करता हुआ –धान की रक्षा में लगी हुई स्त्रियों ने सूक्ष्म केशरचूर्ण को विभूषित करके भौंहों के मध्य में चिपका दिये थी वे मनोभिराम दिखलाई पड़ती थीं। उसे यावक (महावर) की लालिमा से रन्जित अधर पल्लव की शोभा से मानों वे तुलना कर रही हैं ऐसा मालूम पड़ता था। उक्तंच

नवात पालोहितमाहितं मुहु

र्महानिवेशौं परितः पयोधरौ।

चकासयन्तीमरविन्दजं रजः

परिश्रमाम्भः पुलकेन सर्पता।। [2]

वेग शालीगोप्ती स्त्रियाँ अपने यौन पयोधरों में प्रातः कालीन आतप के समान किंचित लालिमा लिये कमल पुष्प पराग लगाये हुई थीं। वे उस पुष्प धूलि को बहते हुए स्वेदबिन्दुओं से सुशोभित कर रहीं थीं।

विमुच्यमानैरपि तस्य मन्थरं गवां हिमानीविशदैः कदम्बकैः।

शरन्दीनांपुलिनैः कुतूहलं, गलददुकूलैर्सघनैरिवादधे।। [3]

---

1. किरा0 4/7
2. किरा0 4/8
3. किरा0 4/12

वे गोपालिकायें अपने नेत्र की कान्ति से कपोल तक लटकते हुये कर्णोत्पलों को अलंकृत करती थीं। (भूषण को भूषित करती थीं)

शस्य क्षेत्र की रक्षा करने वाली उन स्त्रियों को देखकर, पाण्डव ने शरद् ऋतु को सफल माना। इस प्रकार गायें रात के पिछले पहर में चारागाह से लौटते समय, वेग से पृथ्वी पर दौड़ नहीं सकतीं थीं क्योंकि वे अपने—अपने बच्चों का स्मरण करके उत्कण्ठित हो गयीं थी जिसके कारण उनके पीन पयोधरों से क्षीर बह रहे थे। वे अर्जुन को अपनी तरफ देखने में समुत्कण्ठित कर दीं। उन्हें देखने के लिये अर्जुन को प्रबल लालसा हुई। शरद् ऋतु के मौसम को देखकर अर्जुन उत्कण्ठित होता हुआ—

गतान्पशूनां सहजन्मबन्धुतां

गृहाश्रयं प्रेम वनेषु बिभ्रतः।

ददर्श गोपानुपधेनु पाण्डवः

कृतानुकारानिव गोभिर्राजवे।। [1]

इस प्रकार अर्जुन ने गायों के पास गोपालकों को देखा। वे साथ—साथ जन्म लेने के कारण गायों के कुटुम्बी बन गये थे। उन्हें वन घर से भी अधिक प्यारा लगता था। स्वभाव की कोमलता तो वे लोग मानों गायों से सीख रहे थे। अर्जुन नृत्त करती हुई वार वधूटियों[2] की भांति गोपिकाओं को विनिमेष दृष्टि से देखने लगे। उन गोपिकाओं के मुख मण्डल पर बिखरे हुये केश कलाप भ्रमरों की तरह दिखलाई पड़ते थे। मन्द हास से पुष्प पराग की तरह दर्शन पंक्तियां दिखलाई पड़ती थीं। हिलते हुये कान के कुण्डलों

1. किरा0 4/13
2. मधुशाला में नाचने वाली नर्तकी।

की दीप्ति से उनका मुख मण्डल चमक रहा था और प्रभात काल से सूर्य की किरणों से विकसित कमल की शोभा को प्राप्त हो रहा था। गोपालकों की टोलियों में मन्थन दण्डों के घूमने से दधि भाण्ड मृदंग के सदृश मधुर ध्वनि करते हुए, मयूरियों को मेघ गर्जन का भ्रम उत्पन्न कर उन्मादित कर रहे थे। अर्जुन जिन–जिन मार्गों का अवलम्बन करते जा रहे थे वे सम्पूर्ण मार्ग जो वर्षा के कारण टेढ़े–मेढ़े हो गये थे सीधे व सुगम बन गये थे। उनके दोनों बगल के खेतों के धान्यों को बैलों ने भक्षण कर डाले थे। गाड़ियों के पट्टियों के चलने से मार्ग में कहीं–कहीं कीचड़ जम गये थे।[1] लोगों के सतत आने जाने से सभी मार्ग स्पष्ट दिखलायी पड़ते थे। अर्जुन सभी ग्रामों को देखते हुए कैसे गमन करते हुए–

जनैरुपग्राममनिन्द्यकर्मभि–

र्विविक्तभावेंगितभूषणैर्वृताः।

भृशं ददर्शाश्रममण्डपोपमाः

सपुष्पहासाः स निवेशवीरुधः।।[2]

जाते समय मार्ग में जो ग्राम पड़ते थे, अर्जुन सभी को देखता हुआ आनन्दित हो रहा था। गांव के प्रत्येक घरों के लता कुंज, जिनमें पुष्प विकसित हो रहे थे और लता कुंज ग्राम निवासियों से जिनके आचार, विचार, वेष, भूषा, हाव और भाव सब व्यक्त थे, अधिष्ठित होकर मण्डप के समान सुन्दर प्रतीत हो रहे थे।

1. किरा० पृ० 86
2. किरा० 4/19

ग्राम निवासियों से अधिष्ठित वे, आश्रम में बने हुये मण्डप की शोभा धारण कर रहे थे। ग्राम निवासियों के कर्म शूद्र थे। उनके भाव चेष्टा और आभरणादि उनके कर्म को द्योतक थे, उन्हें अर्जुन ने बार–बार अवलोकन किया क्योंकि उससे अर्जुन को बहुत ही आनन्द की प्रतीति होती थी।

ततः स संप्रेक्ष्य शरद्गुणश्रियं

शरद्गुणालोकन लोलचक्षुषम्।

उवाच यक्षस्तमचोदितोऽपि

गां न हीङ्गितज्ञोऽवसरेवसीदति।। [1]

उस यक्ष ने शरद् काल के गुणों की शोभा देखकर शरद् काल की शोभा देखने में संसक्त नेत्र, अर्जुन से बिना कुछ पूछे ही बोला क्योंकि अभिप्राय का ज्ञाता व्यक्ति समय पर कभी नहीं चूकता। अर्थात् यक्ष अर्जुन के मनोगत भाव को समझकर उनसे वार्तालाप करने के लिये कुछ कहा–

इयं शिवाया नियतेरिवायतिः

कृतार्थयन्ती जगतः फलैः क्रियाः।

जयश्रियं पार्थ। पृथूकरोतु ते,

शरत्प्रसन्नाम्बुरनम्बुवारिदा।। [2]

यक्ष कहता है कि यह शरद् ऋतु मंगलमय भाग्य के फल दान का काल है। यह संसार के सम्पूर्ण क्रियाओं को फल प्रदान करके सफल बनाती है। इस शरद् ऋतु में जल निर्मल हो जाता है। इस शरद् ऋतु में जल स्वच्छ तथा निर्मल के साथ–साथ बादल भी जलहीन हीन हो जाते हैं।

1. किरा० 4/20
2. किरा० 4/21

इसलिये हे पृथापुत्र! यह शरद् काल आपको जयश्री से सुशोभित करे और इससे विजयाभिलाषी आपके विजय श्री की अनुकूलता की भी प्रतीति होती है इससे यह प्रतीत होता है कि मानों तुम्हें सफलता अवश्य प्राप्त होगी। इस शरद् ऋतु में धान्य परिपाक से सुरम्य से सुरम्य प्रतीत होते हैं। नदी अपनी उदारता का परित्याग कर देती है, अर्थात् वर्षा काल में नदी प्रबल वेग के कारण महान् अनर्थ कर डालती है कहीं वृक्षों को उखाड़ डालती है तो कहीं तटों को ढहा देती है, कहीं किसी को अपनी धारा में विलीन कर लेती है यही नदी का औद्वत्य है सबका परित्याग कर नदी शान्त वेग धारण कर लेती है पृथ्वी पर कीचड़ नाममात्र को नहीं रह जाता है। वर्षा काल को सुखों से परिचित होने वालों का प्रेम जो परिचय के कारण दृढ़ रहता है उसे भी शरद् ऋतु अपनी नवीन गुणों से अच्छादित कर देती है।[1] अतः उक्तम्–

पतन्ति नास्मिन्विशदाः पतत्रिणो

धृतेन्द्रचापा न पयोद पङ्क्तयः।

तथापि पुष्णाति नभः श्रियं परां

न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्।।[2]

यक्ष ऋतुओं का वर्णन करता हुआ कहता है कि वर्षा काल में स्वच्छ (सफेद) को (बगुलों) की पंक्तियाँ और इन्द्रधनुष की शोभा *बढाती* है अर्थात इस शरद् ऋतु में न तो सफेद बगुले ही आसमान में उड़ते हैं और न मेघमालायें इन्द्रधनुष से सुशोभित होती हैं तथापि वह शरद् ऋतु आकाश

1. किरा0 पृ0 135
2. किरा0 4/23

की सर्वोत्तम रमणीयता को पुष्ट कर रही है जो स्वाभाविक सुन्दर वस्तु और आलंकारिक सामग्रियों की अपेक्षा नहीं रखता। महाकवि भारवि ने वर्षा ऋतु को पति के रूप में प्रदर्शित करते हुए वर्णन करते हैं–

विपाण्डुभिर्म्लानतया पयोधरैर–

श्च्युताचिराभागुणहेमदामभिः ।

इयंकदम्बानिलभर्तुरब्यये

न दिग्वधूनां कृशता न राजते।। [1]

इस श्लोक में कवि बहुत ही मार्मिक भरे शब्दों से ऋतु का वर्णन करता है कि वर्षा ऋतु रूपी पति के चले जाने पर, यह दिक् सुन्दरियों की कृशता (दुर्बलता) निर्जलता, रूप खिन्नता से विद्युल्लता रूप सुवर्ण सूत्र विनिर्मित भूषणों से रहित होकर भी मेघ रूप स्तनमण्डलों से क्या नहीं सुशोभित होती है ? किन्तु सुशोभित होती है। इस पद्य में कवि वर्षा ऋतु को पति रूप में प्रदर्शित किया है। दिशाओं को स्त्री रूप में अभिव्यक्त किया और मेघ को स्तन माना है। बिजली को सुवर्ण का आभूषण माना है अर्थात् पति के बिरह में स्त्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं, उपभोग के कारण स्तन ग्लान हो जाते हैं गौरवर्ण पयोधर मण्डल से जिन पर सुवर्ण के आभूषण भी न हों, और स्त्रियों की खिन्नता भी उनकी शोभा की वृद्धि करती है।

उसी तरह इस शरद् ऋतु में भी वर्षा ऋतु के बीत जाने पर निर्जल मेघ (जल रहित मेघ) जो थोड़ी पीतिमा लिये धवल वर्ण के हैं और उनकी बिजली की चमक अवशेष हो गयी है अब उनसे दिशायें सुशोभित नहीं होती

---

1. किरा0 4/24

हैं ऐसा नहीं उनकी शोभा तो और अधिक बढ़ जाती है। शरद् ऋतु में वर्षा के बीत जाने पर मयूरों का मद क्षीण हो जाता है। अतः उनकी वाणी कर्ण कटु प्रतीत होती है जब कभी मयूर इस ऋतु में बोलते हैं तब कान उससे निस्पृह हो मदोन्मत हंसो की ध्वनि श्रवण करते हैं। मन को प्यारा होने में गुण ही कारण है। जिसमें अधिक गुण होगा वही प्रिय होगा चिरपरिचित कोई वस्तु नहीं। ये, फल के परिपाक से पीतिमा धारण करने वाले लच्छेदार धान के पौधे, सजल नेत्रों में मानो प्रफुल्ल, सुरम्य गन्ध सम्पन्न, नील कमल को सूंघने के लिये झुक रहे हैं, इस प्रकार महाकवि ने शरद ऋतु का वर्णन बहुत मनोहर ढंग से कर रहे हैं–

मृणालिनीनामनुरजिंतं त्विषा विभिन्नमम्भोजपलाशशोभया।

पयः स्फुरच्छालिशिखापिंशंगितं द्रुतं धनुष्खण्डमिवाहिविद्विषः।। [1]

मृणालिनीनां पद्मिनीनां त्विषा हरिदुर्णेनानुरंतिम्। जल कमलिनी लता की कान्ति से हरित् वर्ण से सुशोभित तथा कमल दल की शोभा से मिश्रित और झूमते हुए धान की बालों से पीले वर्ण को धारण करता है जिससे वृत्रासुर के शत्रु (इन्द्र) के धनुष के सदृश अनेक वर्ण से युक्त हो गया है, कमलिनी लता का रंग हरा, पद्म पुष्प का रंग लाल और पके हुए धान के पौधे का रंग पीला होता है इन सबकी छाया पड़ने से जल में अनेक वर्ण प्रतीत होते हैं अतः जल इन्द्र धनुष की छटा धारण करता है। इस प्रकार वर्णन करते हुए–

विपाण्डुसंत्यानमिवानिलोद्धतं निरुन्धतीः सप्तपलाशजं रजः।

अनाविलोन्मीलित बाण चक्षुषः सपुष्पहासा वनराजियोषितः।। [2]

---

1. किरा0 4/27
2. किरा0 4/28

अर्थात् वन रानियाँ कामिनी रूप हैं। उनके विकसित पुष्प (कामिनियों के) हास्य के समान हैं। इन वन रानियों में बाण वृक्ष (कटसरैया) निर्मल खुली आँखों के सदृश हैं। सात–सात पत्रों से युक्त छितौन का पराग पाण्डु वर्ण के अन्चल के सदृश है। जब हवा के झोंके से उड़ने लगते हैं तो स्त्रियां उन्हें सम्हालने लग जाती हैं। जिस प्रकार कामिनियां मन्द हास करती हुई अपने निर्मल नेत्रों से अवलोकन करती हैं और उनका वासन्ती रंग का अन्चल हवा के झोंके से उड़ता रहता है और वे उसे सम्हालने लग जाती है। उसी प्रकार से ये वन–पंक्तियाँ फूलों के भार से लदी हुई हैं। इनमें फूले हुए कटसरैया (बाण) के फूल और छितौन के भी वृक्ष हैं, छितौन के पेड़ के हर एक कण्ठी में सात–सात पत्ते होते हैं। छितौन के पराग हवा के झोंके से लड़ रहे हैं इस समय इनसे (वन राजियों के) वृक्ष भी हवा के झोंके से झकोरे ले रहे हैं। इस प्रकार शरद् ऋतु का वर्णन करते हुये–

अदीपितं वैद्युतजातवेदसा

सिताम्बुदच्छेदतिरोहितातपम्।

ततान्तरं सान्तरवारिसीकरैः

शिवं नभोवर्त्म सरोजवायुभिः।। [1]

आकाश मार्ग विद्युताग्नि से उद्भासित नहीं हो रहे हैं और शुभ्र बादलों के खण्डों से सूर्य का आतप भी छिपा हुआ है। जिससे आकाश मार्ग में चलने से न तो आंखें चकाचौंध होती हैं और न धूप ही सताती है, क्योंकि गर्मी कम हो जाती है प्रखर धूप का अभाव होता है। आकाश का अन्तराल विरल–विरल जल कणों से व्याप्त हो रहा है। कमलों की सुरभित गन्धि से आकाश पथ बहुत रमणीय सुशोभित होता है। इन सब सुखकर वस्तुओं का

---

1. किरा0 4/29

उपदेश कर दौड़ते हुये इन धवल पक्ष वाले हंस पक्षियों के कल कूजन से गुम्फित होकर दिशायें मेघों के अवरोध से छुटकारा पाकर निर्मल हो गयी हैं और वे मानों अन्योन्य सम्भाषण कर रही हैं। उक्तन्च–

विहारभूमेरभिघोषमुत्सुकाः

शरीरजेभ्यश्च्युतयूथपङ्क्तयः।

असक्तभूधांसि पयः क्षरन्त्यमू

रूपायनानीव नयन्ति धेनवः।। [1]

इस प्रकार अर्जुन ने देखा– ये गायें बिहार भूमि से (वत्स के प्रेम से) अपने निवास स्थान के लिये उत्कण्ठित हो अपने झुण्ड से अलग हो गयी हैं और वे (अपने बच्चों का स्मरण कर) लगातार क्षीर परिस्रवण कर रही हैं। अपने थनों को मानों वे अपने शरीर से उत्पन्न होने वाले बच्चों के लिये उपहार ला रही हैं अर्थात् जैसे माता अगर कहीं बाहर घूमने के लिये जाती है तो वह लौटते समय अपने बच्चों के लिये खाने का कुछ न कुछ सामान अवश्य लाती है उसी प्रकार गायें भी अपना थन बच्चों के लिये ला रही थीं। इस प्रकार शरद् ऋतु का आनन्द लेते हुए गायों की शोभा देखते हुए अर्जुन भावाविभोर होता हुआ–

जगत्प्रसूतिर्जगदेकपावनी –

व्रजोपकण्ठं तनयैरुपेयुषी।

द्युतिं समग्रां समितिर्गवामसावु

पैति मन्त्रैरिव संहिताहुतिः।। [2]

1. किरा० 4/31
2. किरा० 4/32

संसार की रक्षा करने में समर्थ, दुनियां को अपवित्रता से शुद्ध करने वाली गायें अपने बछड़ों के संग गोष्ठ (गोशाला) के समीप खड़ी हुई सुशोभित हो रही थीं। उनका झुण्ड अपनी पूर्ण शोभा के साथ ऋक्, यजु और सामादि मन्त्रों से युक्त इत्यादि प्रक्षेप रूप आहुति जो संसार के रक्षा में समर्थ और संसार को पवित्र करने वाली हैं की तरह, अपनी पूर्ण शोभा को प्राप्त होता है। अर्जुन को शरद् ऋतु की शोभा से सुशोभित होती हुयी वस्तुयें उनके मन को बहुत ही सुन्दर एवं मनोहर रूप से आनन्दित करती थीं।

कृतावधानं जितबर्हिणध्वनौ

सुरक्तगोपीजनगीतनिः स्वने।

इदं जिघत्सामपहाय भूयसीं

न सस्यमभ्येति मृगीकदम्बकम्।। [1]

अर्जुन ने देखा– हरिणियों का झुण्ड–मयूरों को जीतने वाली मधुर–कण्ठ गोपियों के गान में दत्त चित्त होकर खाने की इच्छा से विरत होकर घास चरना भूल गया है अर्थात् गीत में आसक्त हरिणियां भूख प्यास को भी भूल गयी हैं।

असावनास्थापरयावधीरितः

सरोरुहिण्या शिरसा नमन्नपि।

उपैति शुष्यन्कलमः सहाम्भसा

मनोभुवा तप्त इवाभिपाण्डुताम्।। [2]

अनादरकारिणी कमलिनी से तिरस्कृत होकर यह शालि (धान) जल

1. किरा० 4/33
2. किरा० 4/34

के साथ–साथ स्वयं सूख कर काँटा हो रहा है, और काम से पीड़ित होकर दिन–दिन पीला पड़ता जा रहा है। शरद् ऋतु में आकाश के अन्तराल में पक्षीगण मधुर शब्द करते हुये विचरण कर रहे हैं। सुगन्ध को लेकर पवन मन्द–मन्द बहता है। इस प्रकार यक्ष शरद् ऋतु का वर्णन करता हुआ–

मुखैरसौ विद्रुमभंगलोहितैः शिखाः पिशंगी कलमस्य बिभ्रन्ती।

शुकावलिर्व्यक्त शिरीष कोमला धनुः श्रियं गोत्रभिदोऽनुगच्छति।। [1]

यह शुकावलि – (शुक तोता, आवलि पंक्ति) अपने प्रवाल को टुकड़े के समान अरुण वर्ण के चन्चुओं से पीले रंग की धान की फल संयुक्त शिखा धारण करती हुयी विकसित शिरीष के पुष्प सवर्णा इन्द्र के धनुष की शोभा का अनुसरण कर रही है अर्थात् इन्द्र धनुष में विविध प्रकार के रंग पाये जाते हैं उसी तरह इन तोतों को समूहों में विविध रंग (चोंच लाल, धन की बाल पीली, और उनके बदन का रंग हरा तथा उनके गलों में जो रेखा पड़ी हुई होती है वह अनेक रंग की होती है) होने से उसकी जो इन्द्र धनुष की समानता हो रही है। किस प्रकार महाकवि भारवि एक पदार्थ से दूसरे की उमपा देते हुये वर्णन करते हैं कि मानो शरद् ऋतु का मौसम सामने ही विद्यमान है।

अमी समुद्धूत सरोजरेणुना हृता हृतासारकणेन वायुना।

उपागमे दुश्चरिता इवापदां शतिं न निश्चेतुमलं शिलोमुखाः।। [2]

1. किरा0 4/35
2. किरा0 4/36

वे भ्रमर, उड़ते हुये कमल परागों को धारण करते हुये तथा वर्षा के जल कणों से युक्त (विविध–शीतल, मंद, सुगंध वायु कमल पराग से सुगन्धित और उसके भार से मन्दता तथा जल कण से शैत्य का ग्रहण करता है) शीतल, मन्द सुगन्ध पवन के द्वारा आकृष्ट होकर, आपत्ति में पड़े हुये तस्करों (चोर, लम्पटों) की तरह रक्षार्थ कहां भागकर जायें इसका निश्चय नहीं कर पाते हैं। इस प्रकार यक्ष–अर्जुन परस्पर वार्तालाप करते हुये–

इति कथयति तत्र नाति दूरादथ –

तदृशे पिहितोष्णरश्मिबिम्बः।

विगलित जलभारशुक्ल भासां निचय

इवाम्बुमुचां नगाधिराजः।। [1]

यक्ष ने सन्निकट से, भगवान् भास्कर के मुख मण्डल को तिरोहित करने वाला पर्वत राज (पर्वतानां राजा) हिमालय को उन मेघों के समूह के समान देखा जिनके जलभार परित्याग करने से वर्ण शुभ्र हो गये हैं।

अथ जयायनुमेरूमहीभृतो

रभसया न दिगन्तदिदृक्षया।

अभिययौ स हिमाचल मुच्छितं

समुदितं नु विलंघयितुं नभः।। [2]

शरत ऋतु की शोभा का अवलोकन करते हुये अर्जुन ने दूर से हिमाचल को देखा उसके अनन्तर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। हिमालय

---

1. किरा0 4/37
2. किरा0 5/1

इतना ऊँचा है कि जिससे मालूम पड़ता था कि वह सुमेरू पर्वत को जीतने के लिए इतना ऊँचा हो रहा है या वह मालूम पड़ रहा था कि वह दिशाओं का अवसान देखने के लिए अत्युत्कण्ठित है अथवा उसके औन्नत्य से यह भी प्रतीति होती थी कि वह आकाश लांघ कर आगे बढ़ना चाहता है।

तपनमण्डलदीपितमेकत:

सततनेशतभीवृतमन्यत:।

हसित भिन्नत मिस्रचयंपुर:

शिवमिवानुगतं गजचर्मणा।। [1]

इसके ऊँचाई के कारण सूर्य जिस तरफ रहता है उस तरफ प्रकाश रहता है और दूसरीं तरफ रात्रि की तरह घना अन्धकार से आच्छादित रहता है अर्थात् एक ओर दिन और दूसरी ओर रात्रि रहती है इससे मालूम पड़ता है कि ये हाथी की खाल ओढ़े और अट्टहास करते हुये साक्षात शिवजी हैं क्योंकि शिवजी के सामने का भाग उनके हास से प्रकाशित रहता है और पीछे का भाग हाथी के खाल से अन्धकाराच्छन्न रहता है।

क्षितिनभ: सुरलोकनिवासिभि:

कृत निकेत मदृष्ट परस्परै:।

प्रथयितुं विभुतामभि निमितं

प्रतिनिधि जगता मिव शम्भुना।। [2]

पृथ्वी आकाश तथा स्वर्ग लोक के निवासी एक दूसरे से अदृष्ट होकर इस हिमालय पर निवास करते हैं। अत: मालूम पड़ता है कि शंकर भगवान् ने अपने यश के प्रचार के लिये संसार भर का प्रतिनिधि इसे बनाया है।

---

1. किरा० 5/2
2. किरा० 5/3

भुजगराजसितेननभः श्रिता

कनकराजिविराजितसानुना।

समुदितं निचयेन वडित्वतीं

लघयता शरदम्बुद संहतिम्।। [1]

इस हिमालय का गगन चुम्बी, शेषनाग के समान शुभ् और स्वर्ण रेखाओं से सुशोभित शिखर समूह इतना उन्नत है कि वह विद्युत लता से युक्त शरत् काल के मेघ मालाओं को अपने औन्नत्य से तिरस्कृत कर रहा है।

मणि मयूख चयां शुक भासुराः

सुरवधू परिभुक्तलतागृहाः।

दधतमुच्चशिलान्तरगोपुराः

पुरइवोदितपुष्पवना भुवः।। [2]

इस हिमालय के भूभाग नगर के समान हैं, ये नगर विविध रत्नों की किरणों से प्रकाशित है। अपरांगनाओं से उपभुक्त लताएं इस नगर के भवन हैं। ऊँची–ऊँची शिलाओं के बीच के रिक्त स्थान नगर के फाटक हैं। अच्छे–अच्छे फूलों के वन पुष्पोधान हैं। इस तरह के नगर वाले भूखण्डों को यह पर्वत धारण करता है।

अविरतोंझित वारि विपाण्डुभि –

र्विरहितैरचिरद्युति तेजसा।

उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः

पृथु नितम्ब विलम्बिभिरंम्बुदेः।। [3]

---

1. किरा0 5/4
2. किरा0 5/5
3. किरा0 5/6

इस हिमालय के विपुल नितम्ब के समान मध्य भाग पर मेघ अवलम्बित है। खूब जल वर्षण कर निवृत हो जाने से धवल वर्ण के हो गये हैं। अब इनमें बिजली का प्रकाश बिल्कुल नहीं रह गया है। ये गम्भीर गर्जन कर रहे हैं। इन बादलों से यह हिमवान् स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। पहले तो पर्वतों के पंख होते थे जिससे वे उड़ते थे। उड़ते–उड़ते जहां बैठ जाते थे वहाँ के जन–धन को नष्ट–भ्रष्ट कद देते थे इसलिए इन्द्र ने पर्वतों के पारों को काट डाला। यद्यपि यह पक्ष रहित है तो भी इन मेघों से पक्षवान् उत्प्रेक्षित होता है।

इस हिमालय पर बहुत सी नदियाँ है। उनके तट अनेक रत्नों की खानें हैं। जो हाथियों के द्वारा क्षत करके समस्थल बना दिये गये हैं। देखने में बहुत सुन्दर हैं, इसलिये स्नान मार्जनादि अनेक विधि कार्यों के लिये ये नदियां हित कारिणी हैं। इनका जल अत्यन्त पवित्र है। इनमें कमल विकसित हो रहे हैं। ऊँचे से नीचे की तरफ बहने के कारण इन नदियों का प्रवाह प्रखर है। इस तरह की नदियों को यह हिमालय धारण करता है। इस हिमालय पर अभिनव विकसित गुड़हल पुष्प के समान कान्ति युक्त पक्ष रागादि महा मणियाँ विराज रही हैं। प्रकाशित होते हुए भी इन महामणियों के समूह से संघटित होकर हिम युक्त शिखरों पर सायंकाल की किरणों के सदृश परिस्फुरण करती हुई किरणों को यह हिमालय धारण करता है। सूर्य की किरणें सायंकाल को पीली और लाल वर्ण विमिश्रित दिखलाई लड़ती हैं। उसी तरह हिमालय सुवर्ण का पीला और पद्मराग का अरुण दोनों के एकत्रित होने के कारण सायं कालीन द्युति धारण करता है।

यह हिमालय बड़े—बड़े कदम्ब के पुष्पों से विशोभित हो रहा है। यह पुष्प माल्य के सदृश तमाल के वनों से व्याप्त हो रहा है। बिन्दु—बिन्दु हिमजल इस पर से परिस्रवण कर रहा है। इस हिमालय पर मदस्रावी और सुन्दर झुण्ड—भुशुण्ड वाले हांथी विचरण करते हैं।[1] इस हिमालय के शिखर रत्न राशियों से खाली नहीं है। इसके कन्दरा के प्रदेश लतागृहों से शून्य नहीं हैं। इस हिमालय की नदियाँ नव विवाहिता रमणी की तरह है। ये नदियां सिकता राशि और कमलों से रहित नहीं हैं। इस पर जितने वृक्ष हैं वे पुष्प और फलों को धारण न करते हों ऐसा हो भी नहीं सकता अर्थात् सर्व रत्न सम्पन्न यह हिमालय है। इस हिमालय की नदियों का प्रवाह सुर—सुन्दरियों के कान्ची सहित मोटे—मोटे जघनों से धीरे धीरे क्षुब्ध होता रहता है, अर्थात् वे आकर यहाँ नदियों में जल क्रीड़ा करती हैं जिससे प्रवाह क्षुब्ध होता है और यह सर्पों के कूलों से व्याप्त होकर विस्तृत हो रहा है। नूतन, कोमल, लता और पुष्प पराग ही इनकी प्रियतमायें हैं।[2]

हिमालय के शिखर अनेक मणियों की प्रभा से रन्जित रहने के कारण तथा बर्फ से ढके होने के कारण शुभ्र दिखलाई पड़ते हैं। उस पर मेघ मण्डल भी धवल वर्ण तथा इन्द्र धनुष के संग होता हुआ व्यक्त नहीं हो पाता है जब कभी वह गम्भीर गर्जन करता है तब स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय के शिखर पर मेघ भी है। यह निर्मल जल युक्त, मानसरोवर को धारण करता है। जिसमें कमल खिले हुए रखते हैं और इसमें कलहंसों का निवास है या सम्पूर्ण जाति के हंसों का निवास है। यही नहीं किन्तु किसी

---

1. किरा0 पृ0 183
2. किरा0 5/10

कारण से कुपित पार्वती के साथ अपने प्रमथादिगणों के साथ सम्पूर्ण अविद्याओं से विमुक्त अतएव शुद्ध चित्त शंकर जी को भी धारण करता है।

ग्रहविमानगणानभितोदिवं

ज्वलयतौषधिजेनकृशानुना।

मुहुर्मुहुस्मरमन्मनुक्षपं –

त्रिपुरदाहमुमापति सेविनः।। [1]

इस हिमालय पर स्वर्ग के चतुर्दिक ग्रहों और देवताओं के विमानो का प्रकाशक त्रण विशेष से उत्पन्न अग्नि से उमापति ने सेवकों को त्रिपुरासुर के नगर के दाह का बारम्बार स्मरण हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यह अनेक प्रकार की औषधियों का बड़ा भण्डार है। इस हिमालय के उन्नत शिखरो पर गंगा प्रवाहित होती है। पत्थरों के ढेर के कारण जब उनका प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है तो पुनः उन प्रस्थरों के ढेरों पर से उतरने लगता है उन असंख्य जल कणों की ऊर्ध्व गति से फव्वारे की तरह छूटते हैं उस समय गंगा शुभ्र चामर धारण की हुई की भांति प्रतीत होती है। इसके पश्चात् कुबेर के भृत्य ने हिमालय के अवलोकन से आश्चर्य चकित अर्जुन से आदर पूर्वक मधुर शब्दों में कहा क्योंकि यदि मनुष्य अवसर समझकर बिना पूछे भी कुछ कहता है तो उसकी शोभा होती है। यक्ष ने कहा – यह नगेन्द्र हिम धवल अपने शिखरों से मेघ मार्ग अर्थात् आकाश मंडल को मानो असंख्य भागों में विभक्त कर दिया है। दर्शन मात्र से ही यह लोगों के पास पुंज का नाश करने में समर्थ है। इस हिमालय के दुस्तर आभ्यन्तर तत्व का

1. किरा० 5/14

वर्णन, दुरूह पुराणों की सहायता से थोड़ा बहुत किया जाता है। दिगन्त व्यापी इस पर्वत को जिसमें बहुत से घने–घने जंगल हैं और जो परम पुरुष भगवान के सदृश अज्ञेय है।[1] केवल ब्रह्मा ही जानते हैं। कोमल किसलय और पुष्पों से युक्त लताओं के कुंजों से तथा कमल पूर्ण सरोवरों से सुशोभित होता हुआ, यह प्रियतम के समीप मानिनी स्त्रियों को उत्कण्ठित कर देता है अथवा रति सुख से तृप्त भी स्त्रियों को अपने–अपने पति के रमण करने के लिये बार–बार लालायित कराता है। इस भूलोक की भूमि नीतिमान तथा भाग्यमान पुरुषों से सुलभ निधि और यक्षों के स्वामी[2] की सर्वोत्तम धनराशि सम्पन्न हिमवान् से पूर्ण होकर अन्य लोकों की भूमि पर विजय प्राप्त कर सुशोभित हो रही है, अर्थात प्रचुर सम्पत्ति सम्पन्न इस हिमवान् से इस लोक की पृथ्वी सबसे बढ़कर है। सम्पूर्ण यह त्रिभुवन इस अपर्णा (पार्वती) के पिता हिमालय के समक्ष नहीं टिक सका क्योंकि इस पर भगवान् शंकर सर्वदा निवास करते हैं जिनकी महिमा साधारण पुरुषों को अविदित है। जन्म और जरा रहित पवित्र और सर्वोत्तम ब्रह्मधाम के चाहने वालों के लिये अज्ञान निवर्तक शास्त्र की तरह इस हिमालय से संसार के बन्धन से मुक्त हो जाने की सद्बुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात यह मुमुक्षुओं के लिये शास्त्र का काम करता है। जैसे शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि की झुकाव मोक्ष की तरफ हो जाता है वैसे ही इस पर निवास मात्र से बुद्धि सन्मार्ग का अवलम्बन करती है।

1. सा0 का0–11
2. मेघदूतम् पृ0 21

दिव्यस्त्रीणांसचरणलाक्षारागा

रागायते निपतित पुष्पा पीड़ाः।

पीड़ा भाजः कुसुम चिताः साशंसं

शंसन्त्यस्मिन्सुरत विशेषं शय्याः।। [1]

इस हिमालय पर फूलों की शैय्याएँ जो चरण में लगाये गये महावर से रन्जित हैं जिन पर म्लान पुष्प पड़े हुए हैं और जो अत्यन्त विमर्दित हो गई हैं, दृष्टि गोचर हो रही हैं उनसे सुर सुन्दरियों के अत्यन्त रागोद्रेक पूर्वक मामोपभोग की क्रिया सूचित होती है। जिस प्रकार नीतिमान राजा की राज लक्ष्मी संख्या, पूजन, तर्पणादि गुणों से अलौकिक शक्ति प्राप्तकर सर्वदा उस राजा के प्रताप की अभिवृद्धि किया करती हैं उसी प्रकार लोक पूज्य इस हिमालय पर औषधियाँ क्षेत्र सम्पत्ति से परम शक्ति प्राप्त कर अहर्निश प्रवज्वलित रहने से विश्राम नहीं कर पाती हैं अर्थात् सब काल प्रकाश किया करती रहती हैं। इस हिमालय पर कुररी जाति की पक्षिणीं बोलती रहती हैं। इसके वृक्ष पुष्प भार से झुक गये हैं। इसके जलाशय कमल से सुशोभित हैं। इस पर की सरितायें वृक्षों से अपने को आवृत्त कर ली हैं। इनके तट पर उशीर उगे हुये हैं। ये ताप को दूर भगा देती हैं। हाथियों के लिये प्रशन्नतावर्द्धक हैं। इस हिमालय पर विकसित आम्रमन्जरी के गन्ध के समान मद जल सेचन से सौरभ वाही सुरगजों के कपोल द्वारा विधर्षित और जिस पर भ्रमर कुल व्याप्त है। ऐसी वृक्षों की शाखाओं का घृष्ट स्थान वसन्त का समय न होने पर ये कोकिलों को वसन्त का भ्रम उत्पन्न कराकर मदोन्मत्त बना देता है।

1. किरा0 5/23

सनाकवनितं नितम्बरुचिरं

चिरं सुनि नदैर्नदैर्वृतममुम्।

मताफणवतोऽवतोरसपरा

परास्तवसुधासुधाधिवसति।। [1]

इस हिमालय पर सुर रमणियों का निवास है। इसका मध्य भाग जो नितम्ब से उपमित होता है बहुत सुन्दर है। कल–कल नाद करते हुये बहुत सी नदियां इससे प्रवाहित होती हैं। पाताल रक्षक वासुकि के लिये अत्यन्त प्रिय और समस्त को फीका करने वाली सुधा का इस पर वास है अर्थात् सुधा यहीं मिलती है और कहीं नही। इस पर अनेक शोभा सम्पन्न लता कुंज ही उत्तम भवन हैं। औषधियाँ दीप मालाएं हैं। कल्प वृक्ष के नये नये पल्लव वल्कल हैं। कमल वन का स्पर्श करने के कारण रति जनित खेद को दूर भगाने वाला वायु भी इस पर सतत वर्तमान है। जिससे अमर ललनायें अपने स्वर्ग को भी भूल बैठी हैं अर्थात् स्वर्ग में भोग विलास की सम्पूर्ण सामग्री वर्तमान रहती है। इस हिमालय पर भी किसी वस्तु की न्यूनता नही है।[2] अतः वे स्वर्ग से इसे अच्छा समझती हैं।[3] इसी पर शिव के लिये बहुत समय तक जल में भवानी ने तपस्साधन किया था। उस समय जब कभी जल जन्तु परिस्फुरण करते थे तो उनके नेत्र सचकित हो जाते थे। शंकर ने भी अपने हाथ से इनको हाथ का अग्रभाग ग्रहण किया था। भगवान् शंकर के हाथ की अंगुलियों से ग्रीष्म काल के स्वेद बिन्दु टपक रहे थे। जिस मन्दरा गिरि से देवता और दैत्यों ने अमृत के लिये समुद्र का मन्थन किया था। मन्थन करते समय समुद्र से जल के उछलने के कारण पाताल दृष्टिगोचर हो रहा

1. किरा० 5/27
2. मेघदूतम् पृ० 127
3. मेघदूतम् 1/59

था और वह रज्जुभूत सर्पराज के बारम्बार निवर्तन से अंकित होकर इस प्रकार विशुशोभित हो रहा है मानों आकाश मण्डल का भेदन कर रहा है। इस नगाधि राज पर स्फटिक और रजत के दीवार की छाया सूर्य की किरणों से संक्रान्त होकर ऊँची हो गई है। इस इन्द्र नील मणियों के प्रभापुन्ज से उन्हें देखकर मध्यमा काल में ही चन्द्रिका का भाव होता है। इस हिमालय पर सुन्दरियों के भौंह के समान कुटिल गति युक्त जल में मन्द-मन्द चलते हुये वायु से कमल कम्पित हो रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे हाव भाव पूर्वक नृत्य कर रहे हैं। इसी पर्वत पर पिनाक पाणिनि शंकर ने अपने हाथ से पार्वती के यवाकुंरादि शुभ्र लक्षण-लक्षित तथा कम्पयुत पाणि का ग्रहण किया था। उस समय शंकर भगवान् के हाथ से कौतुक सूत्र इस प्रकार खिसक पड़ा था जैसे सर्प सरक जाय।

कामदिभर्घन पदवीमनेक संख्यैस्

तेजोभिः शुचि मणि जन्मभिर्विभिन्नः।

उस्राणां व्यभिचरतीवसप्तसप्तेः

पर्यस्यन्निव निचयः सहस्र संख्याम्।। [1]

इसी पर्वत पर स्फटिक मणि से परिस्फुरण कारिणी असंख्य किरणें जो आकाश पथ में संचरण कर रही हैं सामूहिक रूप से 'सप्ताश्च' की किरणों के समूह की सहस्र संख्या को अतिक्रमण करती हुई की तरह दृक्पथानुसरण कर रहीं हैं। जिस पर कुबेर ने त्रिपुर विजेता भगवान् शूली के संतोषार्थ बड़े-बड़े फाटकों से युक्त नगर निर्मित कराया था यह वहां कैलाश है[2] जो

1. किरा० 5/34
2. मेघदूतम् 2/56

समीप में सभागत सूर्य भगवान् का समय के पहले ही अस्त की तरह बना देता है। इस कैलाश के शिखर पर विविध रत्नों की प्रभा पुंज से आच्छादित होने पर सुदृढ़ दीवाल की शंका उत्पन्न करते हैं। आकाश सन्चारी वायु बार–बार सन्चरित हो भित्ति की शंका का विच्छेद कर देता है। इस कैलाश पर तृण समूह अपने अभिनव रमणीयता का परित्याग नहीं करते सर्वदा हरे भरे रहते हैं नील कमल के नव अनुदित अपनी नीलिमा की वृद्धि करते रहते हैं और रंग विरंग के पुष्प समूह से समन्वित वृक्षों के पत्ते भी जीर्ण–शीर्ण हो धराशायी नहीं बनते। यहाँ हिमालय पर वृक्ष सदा फलशाली होते हुए अपने पत्तों का त्याग नहीं करते।

परिसरविषयेषु लीढमुक्ता

हरिततृणोद्गम् शंकया मृगीभिः।

इह नवशुककोमलामणीनां

रविकर संवलिताः फलन्ति भासः।। [1]

इस कैलास के आस पास की भूमि पर शुक के बच्चों के सदृश मनोरम मरकत मणि की किरणें अभिनव हरित तृणांकुर की सी व्यक्त होती हैं। उन्हें हरिणियाँ घास समझकर खाने के लिये मुख में लेती हैं फिर छोड़ देती हैं। वे किरणें सूर्य की किरणों से संवलित होकर अधिक प्रकाश धारण कर लेती हैं। यक्ष ने कहा यह जो स्थल कमलों का वन दृष्टिगोचर हो रहा है वहां से पद्म पराग के वात्या (बवंडर) के द्वारा उड़ाये जाने पर आकाश मण्डलाकार बन जाता है। उस समय सुवर्ण–सूत्र निर्मित आतपपत्र की शोभा

1. किरा० 5/38

का अनुकरण करने लगता है। इस कैलाश पर अत्यन्त प्रभात काल में सुरधुनी के तट पर सन्ध्या वन्दन कृत्यांगभूत प्रदक्षिणा के कारण जो उमा और शंकर के पद चिह्न व्यक्त होते हैं उनमें से वाम चरण रेखा महावर से रंगी हुई और विषम हैं, अर्थात् वाम पद चिह्न रक्त वर्ण और छोटा है। दक्षिण पद चिह्न बड़ा है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शिव और पार्वती अर्द्धांगिनी स्वरूप हैं शिव का वामांग पार्वती रूप और दक्षिणांग शिव स्वरूप है।

सम्मूर्च्छतां रजत भित्ति मयूख जालै

रालोलपादपलतान्तरनिर्गतानाम्।

धर्मद्युतेरिह मुहुः पटलानि धाम्ना

मादर्श मण्डल निभानि समुल्लसन्ति।। [1]

इस कैलाश शिखर पर रजभित्ति के किरण पुंजों को उत्कर्षशाली शनैः–शनैः कम्पित होते हुये वृक्षों की शाखाओं के रन्ध्र से छन–छन कर निकले हुये सूर्य की किरणों के समूह जो दर्पणानुकारी अधिकाधिक परिशोभित हो रहे हैं। जब यह प्रमोपाधिक का प्रकाश शुभ्र किरण पुंजों से धवलित होकर वप्रक्रीड़ा प्रसक्ति के कारण अपने अंगों को संवृत्त करके इस कैलाश के शिखरों का आश्रय लेता है उस समय युवति जनों के मन में ससलान्छन का भान होने लगता है। इस शरतकाल में जब मेघ मण्डल जन रहित होकर खण्ड–खण्ड हो जाता है। उस समय इन्द्रधनुष जो आकाश में प्रायः कम उदित होता है। अत्यन्त सूक्ष्म और खण्डित सा दृष्टिगोचर होता

---

1. किरा0 5/41

है। इस कैलास शिखर के विविध रत्नों की कान्ति उसको पूर्ण कर देती है। इस कैलाश पर भगवान् शंकर के शिरः स्थित चन्द्रलेखा अपनी पीयूष बिन्दु स्रावी किरणों से जो छोटे–छोटे वृक्ष और नूतन लताओं का सिंचन करती हैं कृष्ण पक्ष की रात्रि में वन प्रदेश को धवलित कर देती है। यह इन्द्र नील नाना प्रकार की सुवर्णमयी कन्दरा शाली धराधर आपके पिता इन्द्र का मित्र है जो अपनी सुनहली दीप्ति को खूब फैलाकर लम्बी चौड़ी चादर के समान प्रत्येक वनों के ऊपर डाल देता है।

सक्तिंजवादपनयत्यनिले लतानां

वैरोचनैर्द्विगुणिताः सहसा मयूखैः।

शोभां भुवां मुहुरमुत्रहिरण्मयीनां

भासस्तडिद्विलसितानि विडम्बयन्ति।। [1]

इस पर वायु प्रबल वेग से चलकर लताओं की परस्पर संशक्ति को दूर कर देती है। अतः सुवर्णमयी यह भूमि एकाएक सूर्य भगवान् की किरणों से द्विगुणित हो बिजली की छटा को मात करती है अर्थात् अनुकरण करती है। इस पर्वत पर चन्दन द्रुम ऐरावत के कण्डू प्रशान्यर्थ संघर्षण से भीषण भुजंगमों से रहित हो गये हैं। क्षण मात्र के लिये मदोन्मत्त हांथी भी इनसे दूर हो गये हैं। ये ऐरावत के मद से भीगे हैं। इनके देखने से अनुमान होता है कि इस मार्ग से देवताओं का हाथी गमन किया है। इस इन्द्रनील पर मेघ माला के सदृश, इन्द्रनीलमणि के किरणों से सूर्य की किरणें परस्पर संघटित होकर कन्दराओं को प्रकाशित नहीं कर सकती हैं और इस तरह दीख पड़ती है मानों अन्धकार से मिली हुई हैं। इस प्रकार अर्जुन पक्ष के मुख से हिमालय की शोभा का वर्णन सुनते हुये–

1. किरा० 5/46

भव्यो भवन्नपि मुनेरिह शासनेन

क्षतिस्थितः पथि तपस्यहत प्रमादः।

प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधौहि

श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः।।[1]

यक्ष ने अर्जुन से कहा– आप सभ्यता धारण करते हुये भी व्यास मुनि के निर्देश से क्षात्र का पालन करते हुये अर्थात् शस्त्रग्रहण करते हुए सावधान होकर तपश्चर्या कीजिये। यद्यपि अनुकूल (कल्याणकारी) भाग्य होते हुये भी विघ्न बाधाओं के बिना कल्याण प्राप्त करना कठिन है, अर्थात् कल्याण प्राप्त होने में अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं। अतः विघ्न निवारणार्थ शस्त्र धारण करना आपके लिये अत्यावश्यक है। यक्ष मेघ को उचित सलाह देता हुआ कहता है–

मा भूवन्नपथहृतस्तवेन्द्रियाश्वाः

सन्तापे दिशतु शिवः शिवां प्रसक्तिम्।

रक्षन्तस्तपसि बलं च लोकपालाः

कल्याणीमधिकफलांक्रियांक्रियासुः।।[2]

आपके इन्द्रिय–वर्ग घोड़ो के सदृश उन्मार्गगामी नहीं हैं। आपकी कष्टावस्था में शंकर भगवान् का साधन, समर्थ, उत्साह प्रदान करें। लोकपाल आपके तपः साधन में शक्ति की अभिवृद्धि करते हुये आपके कर्तव्यानुष्ठान को सफल बनावें। इस प्रकार प्रिय और हितकर वाक्य कहकर, प्रेमपात्र कुबेरानुचर (यक्ष) के चले जाने पर, अर्जुन ने उत्कण्ठापूर्वक क्षणभर

---

1. किरा0 5/49
2. किरा0 5/50

के लिये यक्ष का ध्यान किया क्योंकि सृजन वियोग दुःखदायी होता ही है।[1] इस प्रकार यक्ष ने अर्जुन को इन्द्रनील पर्वत पर अनुष्ठान करने (लक्ष्य प्राप्ति) का उपदेश देकर चला गया, लेकिन यक्ष के द्वारा जो हिमालय पर्वत तथा कैलाश पर्वत का वर्णन किया गया है वह बहुत ही मनोहर तथा रमणीय प्रतीत होता है। इन्द्रनील पर्वत का वर्णन करते हुये–

तमनतिशयनीयंसर्वतः सारयोगा

दविरहितमनेकेनांकभाजा फलेन।

अकृशमकृशलक्ष्मीश्चेतसाशंसितंच

स्वमिव पुरुषकारं शैलमभ्याससाद।। [2]

जिस प्रकार अर्जुन का पुरुषार्थ सर्वथा अनतिक्रमणीय, आशुभावी, अनेक प्रकार के फल से युक्त और महान् था। उसी प्रकार इन्द्रनील पर्वत भी था, सर्वथा बल प्रयोग से उसे कोई क्रान्त नहीं कर सकता था। उस पर रहकर साधना करने वाले पुरुष की अनेक विधि फल सिद्धि आशुभाविनी थी। बहुत दिनों से अर्जुन, उस पर्वत को चित्त से चाहते थे। उसी इन्द्रनील पर्वत[3] का आश्रय उन्होंने लिया। उस क्षण वे भी पूर्ण तथा सुशोभित हो रहे थे, अर्थात् जब उस पर्वत की प्रकृति इतनी मनोहर थी तो उसमें साधना करने वाले भी क्यों नहीं सुशोभित होंगे। सुन्दर विरक्त वनों की पंक्तियों से नील वर्ण के उपत्यका (पहाड़ के समीप की नीची भूमि) प्रदेश से घिरे हुये, बर्फ के चट्टानों से ढके हुये शुभ्र हिमालय पर पहुंचकर, अर्जुन को हाला के राग से मुक्त, नीलाम्बरधारी बलभद्र जी की शोभा का स्मरण हो आया।

---

1. मेघदूतम् 2/52
2. किरा0 पृ0 190
3. सं0 सा0 का समी0 इति0 पृ0 182

इस प्रकार इस अध्याय में यक्ष के द्वारा सुन्दर शरद् ऋतु का वर्णन तथा मन्द–मन्द बहने वाली हवा का एवं हिमालय तथा कैलाश की प्राकृतिक घटा का वर्णन वर्णित किया गया है। जिसमें महाकवि भारवि के द्वारा वर्णित प्रकृति का दृश्य पढ़कर महान् आनन्द की अनुभूति होती है। इसमें ''किरातार्जुनीयम्'' के प्राकृतिक चित्रणों का उल्लेख किया गया है।

अध्याय पांच
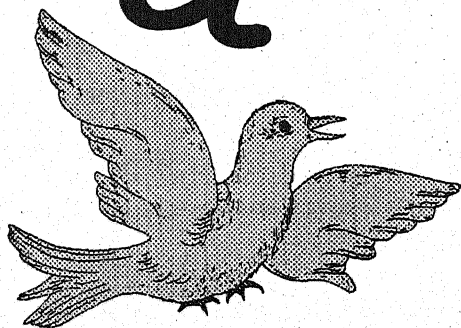
दोनों महाकाव्यों के प्राकृतिक चित्रणों में साम्य

महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीय के चतुर्थ तथा पंचम् सर्ग में पर्वतराज हिमालय एवं शरद ऋतु का वर्णन बहुत सुन्दरतम ढंग से अर्जुन को ले जाने वाले यक्ष के मुख से प्रस्तुत किया है तो महाकवि माघ ने भी शिशु पाल वध के उन्ही सर्गों में छोटे से रैवतक पर्वत का तथा वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का बहुत मनोहर वर्णन उपस्थित कर श्री कृष्ण भगवान को ले जाने वाले दारूक के मुख से रैवतक का उदात्त वर्णन किया है।

—:महाकवि भारवि के द्वारा ऋतुओं का वर्णन:—

अर्जुन सखियों के समक्ष कलकूजन करते हुये राजहंस की तरह निरूपन कारिणी मेखला धारण की हुई तथा युवावस्था को प्राप्त रमणी की भॉति मेखला की तरह कुल कूजन करने वाले राजहंस जहॉ विचर रहे थे,[1] ऐसी और परिपाक दशा को प्राप्त धान्यराशि के कारण गौरवर्णा भूमि के पास पहुॅचे जहां कृषक निवास करते थे। ग्राम की सीमा के समीप के भूमिखंड झुके हुए धान की बालों से सुशोभित हो रहे थे। वहॉ कीचड नाममात्र को भी नहीं था। यदि कहीं जल था तो उसमें कमल के पुष्प सुशोभित हो रहे थे।[2] अर्जुन इस तरह के शरद ऋतु की सम्पतियों को अपने प्रति उपहार की हुई के समान देखकर प्रसन्न हुए। कहीं–कहीं जलाशयों में मछलियां चिलक रहीं थी।[3] सरोवर आश्चर्य में पडकर विकसित कमल रूप नेत्रों से मात्र उसे देख रहा था। इस प्रकार अर्जुन प्रकृति की छटा देखकर मंत्रमुग्ध हो गये। मानों शरद् ऋतु ने अर्जुन के मन का भी अपहरण कर लिया है। यह इस पद्य से प्रतीत होता है।

1. किरा0 4/1
2. किरा0 4/2
3. किरा0 4/3

तुतोष पश्यन्कमलस्य सोऽधिकं सवारिजे वारिणि रामणीयकम्।

सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं प्रकर्षलक्ष्मी मनुरूपसंगमें।।[1]

अर्जुन कमलयुक्त जल में धान की शोभा का अवलोकन करते हुये इतना प्रसन्न हुए जितना हो सकते थे। जो वस्तु अनुपलब्ध हो और उसको चाहने की अभिलाषा हो यदि वह प्राप्त हो जाये तो कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उसका स्वागत न करे।

कवि ने धान की रक्षा करने वाली स्त्रियों का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह इस प्रकार हैं[2] धान की रक्षा में लगी हुई स्त्रियों ने सूक्ष्म कठोर किंजल्क (पराग) से जपापुष्प को विभूषितकरके भौहों क मध्य में चिपका दिये थे, वे मनोभिराम दिखलाई पडते थे उसे महावर की लालिमा से रजिंत अधर पल्लव की शोभा से मानो वे तुलना कर रहीं है। स्त्रियॉ अपने पीन पयोधरों में प्रातः कालीन आतप के समान किंचित् लालिमा लिये कमलपुष्पपराग लगाये हुई थी। वे उस पुष्पधूलि को बहते हुए स्वेदबिन्दुओं से सुशोभित कर रहीं थी। वे अपने नेत्र की कांति से कपोल तक लटकते हुए कर्णोत्पलों को अलंड्कृत करती थी। शरय क्षेत्र की रक्षा करने वाली उन स्त्रियों को देखकर पाण्डव ने शरद ऋतु को सफल माना।

गायें[3] रात के पिछले पहर में चारागाह से लौटते समय वेग से पृथ्वी पर दौड नही सकती थी क्योंकि वे अपने–अपने बच्चों का स्मरण करके उत्कंठित हो गई थीं जिसके कारण उनके पीन पयोधरों से क्षीर बह रहे थे। वे अर्जुन को

1. किरा0 4/4
2. किरा0 4/7
3. किरा0 4/9

अपनी तरफ देखने में समुत्कण्ठित कर दीं। अर्जुन ने देखा एक महान वृषभ अन्य वृषभ के साथ युद्ध करके उसे पराजित कर विजय लाभ कर गम्योगर्जन करता हुआ नदी के तट को ढाह रहा है। वह गायों का राजा अत्यन्त हृष्ट–पुष्ट मानों साक्षात दर्प हो, यक्ष के रूप में उपस्थित हुआ है।

कवि ने निम्नलिखित पद्य में बहुत सुन्दर वर्णन किया है जो निम्न लिखित है।

विमुच्यमानैरपि तस्य मन्थरं गवांहिमानीविशदैः कदम्बकैः।

शरन्नदीनां पुलिनैः कुतूहलं गलददुकूलैर्जघनैरिवादधे।। [1]

वरफ की चट्टान के समान सफेद गायों के झुण्ड धीरे–धीरे शरद काल की नदी के वालुकामय ढेर को छोडते हुये चले जारहे थे, उन्हे देखकर अर्जुन को ऐसा कुतूहल उत्पन्न हुआ जैसा कि रमणी के जघन प्रदेश से सरकती हुई साड़ी के समय किसी व्यक्ति को होता है।

अर्जुन नृत्य करती हुई बार बधूटियों की भॉति गोपिकाओं को र्निमेष दृष्टि से देखने लगे। उन गोपियों केमुखमण्डलपर बिखरे हुए केश कलाप भ्रमरों की तरह दिखलाई पडते थे। मन्द हास से पुष्प पराग की तरह पक्तियॉ दिखलाई पडती थीं। हिलते हुए कान के कुण्डलों की दीप्ति से उनका मुख मण्डल चमक रहा था और प्रभात काल में सूर्य की किरणों से विकसित कमल शोभा को प्राप्त हो रहा था। अहीर टोलियों में मन्थनदण्डों के घूमने से दधिमाण्ड मृदंग के सदृश मधुर ध्वनि करते हुए मयूरियों को मेघ गर्जन का भ्रम उत्पन्न कर उन्मादित कर रहे थे।[2] अर्जुन जिन–जिन मार्गो का अवलम्बन करके जा रहे थे वे सम्पूर्ण मार्ग जो वर्षा के कारण टेढे मेढे हो गये थे सीधे और सुगम बन गये थे। उनके दोनो

1. किरा0 4/12
2. किरा0 4/15

बगल के खेतों के धान्यों को बैलों ने भयाव कर डाला था। गाडियों के पट्टियों के चलने से मार्ग में कहीं कीचड जम गये थे। लोगों के सतत आने जाने से सब मार्ग स्पष्ट दिखलाई पडते थे। इस प्रकार अर्जुन सभी ग्रामों करे अवलोकन करते हुए चले जा रहे थे।

यक्ष शरत्काल के गुणों की शोभा देखकर शरत्काल की शोभा देखने में संसक्त नेत्र अर्जुन से बिना कुछ पूछे ही बोला क्योंकि अभिप्राय का ज्ञाता व्यक्ति समय पर कभी नहीं चूकता। अर्थात यक्ष अर्जुन के मनोगत भाव को समझ कर उनसे वार्तालाप करने क लिए कुछ कहा। जो इस पद्य में है।

इयं शिवाया नियतेरिवायतिः कृतार्थयन्ती जगतः फलैः क्रियाः।

जयश्रियं पार्थ! पृथूकरोतु ते शरत्प्रसन्नाम्बुरनम्बुवारिदा।।[1]

यह शरदृतु मंगलमय भाग्य के फलदान का काल है। यह संसार के सम्पूर्ण क्रियाओं को फल प्रदान करके सफल बनाती है। इस ऋतु में जल निर्मल हो जाता है। बादल भी जलहीन हो जाते हैं। हे पृथापुत्र! यह शरत्काल आपको जयश्री से सुशोभित करे। इस समय आपके विजय की अनुकूलता भी प्रतीत होती है। शरद् ऋतु में धान्य परिपाक से सुरम्य प्रतीत होते हैं। नदी अपनी उदारता का परित्याग कर देती है। (अर्थात् वर्षाकाल में नदी प्रबल वेग के कारण महान् अनर्थ कर डालती है।) कहीं पेडों को उखाड डालती है, कही मकानों को ध्वस्त कर देती है, कहीं तटों को बहादेती है। कहीं किसी को अपनी धारा में विलीन कर देती है, यही नदी का औद्धत्य है सबका परित्याग कर नदी शान्त वेग धारण कर लेती है। पृथ्वी पर कीचड नाम मात्र को नहीं रह जाता है।

1. किरा0 4/21

वर्षाकाल में स्वच्छ वकों की पंक्तियाँ और इन्द्रधनुष ऋतु की शोभा बढाते है।[1] शरद् ऋतु आकाश की सर्वोत्तमरमणीयता को पुष्ट कर रही है। जो स्वाभाविक सुन्दर वस्तु और आलंकरित सामग्रियों की अपेक्षा नहीं रखता। शरद ऋतु ऐसी प्रतीत हो रही है। जैसे वर्षा ऋतु में रूप खिन्नता से विद्युल्लता रूप सुवर्ण सूत्र विनिर्मित भूषणों से रहित होकर भी मेघ रूप स्तनमण्डलों से क्या विद्युल्लता सुवर्ण सूत्र विनिर्मित भूषणों से रहित होकर भी मेघ रूप स्तनमण्डलों[2] से क्या नहीं सुशोभित होती है? किन्तु सुशोभित होती है।

कवि ने स्त्री की दशा का वर्णन ऋतु के रूप में किया है कवि ने वर्षा ऋतु को पतिमाना है दिशाओं को स्त्री माना है। और मेघ को स्तन माना है।[3] बिजली को सुवर्ण का आभूषण माना है। अर्थात् पति के विरह में स्त्रियाँ दुर्बल हो जाती है। उपभोग के कारण स्तन म्लान हो जाते हैं। गौरवर्ण पयोधर मण्डल से जिनपर स्वर्ग के आभूषण भी नहीं स्त्रियों की खिन्नता भी उनकी शोभा की वृद्धि करती है। उसी तरह शरद ऋतु में भी वर्षा ऋतु के बीच जाने पर निर्जल मेघ जो थोडी पीतिमा लिये धवल वर्ण के है और उनकी बिजली की चमक अवशेष हो गई है अब उनसे दिशायें सुशोभित नहीं होती है। ऐसा नहीं उनकी शोभा और बढ गई है। शरदऋतु में वर्षा काल के बीच जाने पर मयूरों का मद क्षीण हो जाता है। अतः उनकी वाणी कर्ण कटु प्रतीत होती है जब कभी इस ऋतु में ये बोलते है तब कान उससे निस्पृह हो मदोन्मत हंसो की ध्वनि श्रवण करते है, मन के प्यार होने में गुण ही कारण है जिसमें अधिक गुण होगा वही प्रिय होगा चिरपरिचित कोई वस्तु नहीं है।

---

1. किरा० 4/23
2. किरा० 4/24
3. किरा० 4/24

—: धान के पौधों का सुन्दर वर्णन :—

निम्नलिखित पद्य में—

अमी पृथुस्तम्बभृतः पिशंकतां गता विपाकेन फलस्य शालयः ।

विकासि वप्राम्भसिगन्धसूचितं नमन्ति निघ्रातुमिवासितोत्पलम् ।। [1]

भावार्थये फल के परिपाक से पीतिमा धारण करने वाले लच्छेदार धान क पौधे सजल क्षेत्रों में मानों प्रफुल्ल सुरम्य गन्ध सम्पन्न नील कमल को सूंघने के लिये झुक रहे हैं ।

कवि ने प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा है कि वन राजियाँ कामिनी रूप हैं। उनके विकसित पुष्प, हास्य के समान हैं। इन बन राजियों में बाण वृक्ष निर्मल खुली हुई ऑखों के सदृश है।[2]

सात—सात पत्रों से युक्त छितौन का पराग पांडुवर्ण के अंचल के सदृश है। जब ये हवा के झोके से उडने लगते है। तो स्त्रियॉ उनहे सम्हालने लग जाती है। जिस प्रकार कामिनियॉ मन्द हास करती हुई अपने निर्मल नेत्रों से अवलोकन करती है और उनका बासन्ती रंग का अंचल हवा के झोंके से उडता रहता है और वे उसे सम्हालने लग जाती है। उसी तरह से बन पंक्तियॉ फूलों के भार से लदी हुई हैं। इनमें फूले हुये कतसरैया के फूल और छितौन के भी वृक्ष हैं। छितौन के पराग हवा के झोंके से उड रहे हैं इस समय इन वन राजियों के वृक्ष भी हवा के झोंके से उड रहे है। आकाश मार्ग विधुताग्नि से उद्‌भासित नहीं हो रहे हैं। और शुभ्र बादलों के खण्डों से सूर्य का आतप भी छिपा हुआ है। आकाश

---

1. किरा0 4/26
2. किरा0 4/28

का अन्तराल विरल–विरल जल कणों से व्याप्त हो रहा है। कमलों की सुरभित ग्रन्थि से आकाश पथ बहुत रमणीय हो गया है।[1] दौडते हुए धवल पक्षवाले हँस पक्षियों के कल कूजन से सुगन्धित होकर, दिशायें मेघों के अवरोध से धुटकारा पाकर निर्मल हो गई है। और मानो अन्योन्य सम्भाषण कर रहीं हैं।

–: गायों का वर्णन :–

अर्जुन ने देखा कि ये गायें बिहार भूमि से निवास स्थान के लिये उत्कंठित हो अपने झुण्ड से अलग हो गई हैं और वे लगातार क्षीर परिस्रवण कर रही हैं। अपने थनों को मानो वे अपने शरीर से उत्पन्न होने वाले के लिये आहार ला रही हैं । संसार की रक्षा करने में समर्थ दुनियॉ को अपवित्रता से शुद्ध करने वाली गायें अपने बछवों के संग गोरूप के समीप खडी थीं उनका झुण्ड ऋक, यजु ओर सामादिमन्त्रों से युक्त हव्यादि प्रक्षेप रूप आहुति की तरह अपनी पूर्ण शोभा को प्राप्त होता है।

अर्जुन ने देखा हरिणियों का झुण्ड मयूरों का षड्ज ध्वनि को जीतने वाली मधुर कण्ठ गोपियों के गान में दत्तचित्त होकर प्रबल खाने की इच्छा से विरत हो घास चरना भूल गया है।

असावनास्थापरयावधीरितः सरोरूहिण्या शिरसा नमन्नपि।

उपैति शुष्यन्कलमः सहाम्भसा मनोभुवातप्तइवाभिपाण्डुताम्।।[2]

अनादर कारिणी कमलिनी से तिरस्कृत होकर यह धान जल के साथ–साथ स्वयं सूख कर कॉंटा हो रहा है। और काम से पीडित होकर दिन–दिन पीला

---

1. किरा0 4/30
2. किरा0 4/34

पडता जा रहा है। भ्रमर उड़ते हुए[1] कमल–परागों को धारण करते हुए तथा वर्षा के जल कणों से युक्त शीतल मंद, सुगन्ध, वायु कमल पराग को सुगन्धित और उसके भार से मन्दता तथा जल कण से शैत्य को ग्रहण करता है। शीतल, मन्द, सुगन्धपवन के द्वारा आकृष्ट होकर आपत्ति में पडे हुए तस्करों की तरह पदार्थ कहाँ भाग कर जॉय इसका निश्चय नहीं कर पाते।[2] यह तोता अपने प्रवाल के टुकडे के समान अरूण वर्ण के चंचुओं से पीले रंग का फल, संयुक्त शिखा धारण करती हुई विकसित शिरीष के पुष्प, सुवर्ण इन्द्र के धनुष की शोभा का अनुसरण कर रही है। इस प्रकार की बाते करते हुए यक्ष ने सन्निकट से भगवान भास्कर के मण्डल को तिरोहित करने वाला पर्वतराज हिमालय में उन मेघों के समूह को सहशा देखा जिनके जलभार परित्याग करने से वर्ण शुभ्र हो गये हैं। सुन्दर विस्तृत बनों की पंक्तियों से नील वर्ण के उपत्यका प्रदेश से घिरे हुये, बर्फ के चटटानों से ढके हुये शुभ्र हिमालय पर पहुॅच कर अर्जुन को हाला के राग से मुक्त नीलाम्बरधारी सीरपाणि बलभद्रजी[3] की शोभा का स्मरण हो आया।

–: महाकवि माघ द्वारा ऋतुओं का वर्णन :–

इस श्लोक के माध्यम से ऋतुओं का एक साथ आना–

अथ रिरसुममुं युगपदगिरौ

कृतयथास्वपतरूपप्रसवश्रिया।

ऋतुगणेन निषेविडमादधे

भुविपदं विपदन्तकृतं सताम्।। [4]

---

1. किरा0 4/35
2. किरा0 4/32
3. मेघदूतम् 1/53
4. शि0 पा0 व0 6/1

रैवतक पर्वत पर रमण करने के इच्छुक तथा सज्जनों की विपत्ति को दूर करने वाले, इन की सेवा करने के लिए, अपने–अपने वृक्षों के अनुसार पल्लव तथा पुष्प आदि की शोभा को उत्पन्न किये हुए बसन्तादि ऋतु समूह ने एक साथ पैर रखा अर्थात् अपने–अपने चिन्हों को प्रकट किया। छह ऋतुएं एक साथ ही रैवतक पर्वत पर अपना–अपना कार्य आरम्भ कर दी।

–: बसन्त ऋतु का वर्णन :–

श्री कृष्ण भगवान् ने पहले नवपल्लवयुक्त पलाशवन वाले विकसित तथा मकरन्द से परिपूर्ण कमलोंवाले कोमल कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्पसमूहों से सुरभित बसन्त ऋतु को देखा।मृगनयनों के ललाट में उत्पन्न पसीने से जल को सुखाते हुए उनके केशकलाप को हिलाने वाली नीलकमलों को विकासपूर्वक जलाशयों के तरंगश्रेणिकों को चपल करता हुआ वायु बहने लगी।

महाकवि माघ ने निम्न लिखित पद्य में उपमालंकार का सुन्दर वर्णन किया है।

तुलयति स्म विलोचन तारकाः कुरबकस्तबकव्यतिषंगिणि।

गुणवदाश्रयलब्धगुणोदये मलिनिमालिनि माधवयोषिताम्।। [1]

श्वेतवर्ण के कुरूबक के पुष्पपर बैठने पर भ्रमर की शोभा शुभ्रवर्ण का आश्रय पाने से अधिक बढ गयी अर्थात् श्वेत पुष्प पर भ्रमर की कालिमा चमक उठी उस समय वह श्री कृष्ण भगवान् की अंगनाओं के नेत्र की काली पुतली के समान शोभती थी, क्योंकि उन अंगनाओं के स्वच्छ एवं विशाल नेत्रों के छोटी सी काली पुतली शुभ्रवर्ण बडें कुरूबक पुष्प पर बैठे कृष्णवर्ण छोटे भ्रमर के समान ही थी।

1. शि० पा० व० 6/4

बसन्त ऋतु शुद्ध सोने की कान्तिवाले चम्पा के पुष्पों[1] से युक्त अशोक का पुष्प विरहियों के विदीर्ण हुए हृदय के कामांग्नि से कपिशवर्ण किये गये मांस के समान शोभता था। आम के वन के पराग मानो कामाग्नि के भभूल मुर्मुरचूर्ण बन गये। सब ओरसे ऊपर से गिरे हुए वे पथिकों को सन्तप्त करने लगी। जिस प्रकार पतिपर रूष्ट नायिका को मनाकर प्रसन्न करने के लिए कोई व्यक्ति दूत को भेजता है और वह दूती उस नायिका के पास जाकर उसे अनेक विधप्रियवचनों से प्रसन्न कर लेती है, उसी प्रकार मानों कामदेव ने भी मधुपश्रेणि को प्रियतमोंपर क्रुद्ध नायिकाओं को खुश करने के लिए भेजा है, ऐसी प्रतीति कुरूबक पेडों से उडती हुई भ्रमर श्रेणि कों देखकर होती थी। उस मधुप श्रेणि के मधुर शब्द को सुनकर मानिनियों का मानभंग हो जाने से उक्त उत्प्रेक्षा की गयी है।

फूल के गुच्छे से झुकी हुई नवीन लताओं को स्तनों के भार से जीतने वाली हे प्रिये! परागयुक्त कमलश्रेणियों को छोडकर विरागयुक्त यह भ्रमर–समूह तुम्हारे सामने आ रहा है। कवि ने अपनी मधुर वाणी का वर्णन करते हुए कहा है कि यादवागंनाओं ने सामने अनेक बार प्रदत्त हुए भी प्रियको अभिमानी होने से नहीं गिना, मान त्यागकर सम्भोगार्थ तैयार नहीं हुई।

बसन्त के आरम्भ होने पर काम पीडा से पीडित वे यादवागंनाएँ आगे हुई अर्थात् सम्भोगार्थ स्वयमेव पहले तैयार हो गयीं। दूसरी अगंनाएँ कामदेव धनुषपर चढाकर फेंके गये वाणों से विदीर्ण शरीर वाली होकर मर भी गयीं, बार–बार मोहित हो गयी। इस विषय में तो क्या कहना है?

---

1. शि० पा० व० 6/7

हे सुन्दरी! तुम्हारी रोने की इच्छा यद्यपि सचमुच तुम्हारे मुखकमल को सुशोभित करने के लिए है अर्थात् रोने की इच्छा करने पर भी तुम्हारा मुखकमल शोभता ही है तथापि इस समय वसन्त के आने पर अमंगल आँसू को बहाना अनुचित है। अत्यन्त दूरस्थ भी तुम्हारा पति बसन्तोत्सव को नहीं छोडेगा अर्थात् वसन्तोंत्सव मनाने के लिए अवश्य आवेगा। इस प्रकार प्रियजनों के सत्य कथनों से बाहर प्रियतम के स्वर को सुनकर वह नायिका उसी प्रकार तृप्त हुई, जिस प्रकार अमृत से कोई तृप्त होता है। इस प्रकार मनोहारिणी वसन्त से विकसित की गई अर्थात् बसन्त में खिली हुई माधवी लता के पराग के बढने से बढी हुई बुद्धिवाली अर्थात् बसन्त में विकसित माधवी लता के पुष्पपराग का पान कर मतवाली मदोत्पादक ध्वनि करती हुई भ्रमरी गम्भीरतापूर्वक उच्चस्वर से गाने लगी। पलाश पुष्पों की श्रेणी ने देवाग्नि की शोभा को प्राप्त किया अर्थात् खिले हुए पलाश के फूल ऐसे मालुम पढते थे कि बनमें दावाग्नि लग रही हो।

—: ग्रीष्म ऋतु का वर्णन :—

ग्रीष्म ऋतु में शिरीष पुष्पों के पराग की कान्ति सूर्य के घोडों के हरितवर्ण वाले रोमों की समानता ग्रहण करती है।[1] अर्थात् हरी हो जाती है, नव मल्लिकाओं के सुगन्ध को चिरस्थायी करता हुआ वह सुचि आ गया। कोमल कलिकाओं को विकसित करने वाली अपनी अंगनाओं के निः श्वास के सदृश तथा जिसमें उन्मत्त भ्रमर उड रहे हैं। ऐसी हवाके बहते रहने पर विलासी लोग मद से चन्चल हो गये। उत्तम जघनवाली अगंनाओं ने प्रियतम के वक्षः स्थलपर तत्काल स्नान कराने से पानी की शीतलता से युक्त अर्थात् ठण्डे—ठण्डे स्तनों को रख दिया। और हाथ से प्रतिक्षण सरस चन्दन के लेप को भी लगाया।

1. शि० पा० व० 6/22

—: वर्षाऋतु का वर्णन :—

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।

जलधारावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम्।। [1]

चमकते हुए चंचल बिजलीरूपी नेत्रों वाली बडे–बडे मेघों वाली अपने समय की अपेक्षा को छोडी हुई मेघ श्रेणि, पर्वत पर इस प्रकार उपस्थित हुई जिस प्रकार चमकते हुए एवं चंचल बिजली के समान नेत्रोवाली नहीं गिरे हुए अर्थात् उन्नत एवं बडे–बडे स्तनोंवाली अपने समय की अपेक्षा नहीं की हुई नायिका प्रिय के पास उपस्थित हो जाती है। श्रावण मास में आकाश में गज समूह के समान नीलवर्ण तथा उन्नत नये मेघों को देखकर किस स्त्री ने एक रसवाले अर्थात् दूसरे रसों का त्यागकर केवल श्रृगांर रसवाले किसी प्रियतम को नहीं चाहा तथा किस बल्लभ के प्रति अभिसार नहीं किया। इस तरह से इन्द्रधनुष युक्त मेघ की विचित्रता ने अनेक मणियों से युक्त कुण्डलों की कान्ति से युक्त कान्तिवाले तथा बलिदैत्य को नष्ट करने वाले वामन भगवान के शरीर का अनुकरण किया। इस प्रकार के वायु के चपल मेघों से क्षणमात्र से दृष्टिगोचर होकर अन्तर्हित बिजली तीव्र वायु से चंचल डालियों से क्षणमात्र दृष्टिगोचर होकर अन्तर्हित नये तमाल वृक्ष के सदृश आकाशरूप वृक्ष की मंजरी के समान शोभती थी।

खिले हुए कन्दकी पुष्प को कॅपाने वाली तथा मानिनियो के मनको झुकाने वाली मेघ की हवा ने वनों को नवा दिया तथा प्रवासियों को सहसा कम्पित कर दिया। अपनी ध्वनि सम्पत्ति से मसाला लगाये हुए नगाड़े के शब्द को जीतने वाली मेघ श्रेणि ने उन्मत्त होकर मधुर केका शब्द करते हुए मोरो को नचाया।

---

1. शि० पा० व० 6/25

—: बादलों की सहभागिता :—

शमिततापमपोढमहीरजः प्रथमबिन्दुभिरम्बुमुचोऽम्भसाम्।

प्रविरलैरचलांगनमंगनाजनसुगं न सुगन्धि न चक्रिरे।।[1]

बादलों ने बहुत थोडे पानी के प्रथम बिन्दुओं, तापरहित, शान्त धूलिवाले, सौरभ वाले, रैवतक के मैदान को स्त्रीजनों के लिए सुखपूर्वक चलने योग्य नहीं बना दिया ऐसा नहीं अर्थात् थोडा पानी बरसाने से छिडकाव सा करके रैवतक मैदान को धूलरहित एवं सौरभयुक्त कर अंगनाओं के आनन्द पूर्वक चलने योग्य बना ही दिया। हांथीदाँत के समान स्वच्छ घूमते हुए भ्रमररूपी मृगकान्ति वाला तथा सूक्ष्माग्र केतकी के पुष्प को लोगों ने सघन मेघ के गरजने से आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के टुकडे के समान देखा। अत्यन्त श्वेतवर्ण तथा स्फुरित होते हुए झरनों के सूक्ष्म जल कणों के समान मनोहर कुटज के फूलों के परागकण मानो दही के चूर्ण के समान शोभायमान थे। चलते नक्षत्रों के समान भौंरे शुभ्र परागसमूह के उत्पन्न श्वेतभाव को धारण कर लिये अर्थात् उक्तरूप भौरे सम्पूर्ण शरीर में पराग समूह के लगने से श्वेत हो गये। विरहिणियों के लिए दुःखदायिनी नये कदम्बों के बन की श्रेणिने कपडे के समान मेघ से आच्छादित दिशाओं के लिए अपने परागको कपड़े को सुवासित करने वाले चूर्ण के समान विखेर दिया।

बरसाती हवा बहते रहने पर विरक्त भी कौन पुरूष चंचल नहीं हो जाता है। मानो इस प्रकार सत्य वचन भ्रमरों के कहने पर नवपल्लव नाचने लगे।

मेघ के भय के कारण रतिगृह से बाहर जाना नहीं चाहती हुई तथा कामवश आलस्य युक्त हो, बोलती हुई युवतियां यदुवंशी राजाओं के समूह को रमण करने लगी।

---

1. शि० पा० व० 6/33

—: शरद वर्णन :—

सुदर्शन चक्रधारी ने सूर्य को छिपाने वाले पक्षिसमूहों को घोसलों में रखने वाले तथा दिशाओं के ज्ञान को नष्ट करने वाले मेघ समय को दूसरे रूप में प्राप्त किया, अर्थात् वर्षाऋतु को समाप्त होते हुए देखा। पापनाशक कीर्तन है जिसका ऐसे उन श्रीकृष्ण भगवान् ने विकसित कमलरूप नेत्रों वाली तथा सरकते हुए स्वच्छ पकडें के समान मेघवाली शरद् ऋतु को पर्वतराज[1] में स्थिर प्रिया के समान देखा। समय की अनुकूलता का वर्णन कवि ने सुन्दरतम ढंग से निम्न लिखित पद्य के माध्यम से किया।

समयएवकरोति बलाबलं, प्रणिगदन्तइतीवशरीरिणाम्।

शरदि हंसरवाः पुरुषीकृत, स्वरमयूरमयूरमणीयताम्।। [2]

समय ही प्राणियों के बलाबलकों करता है। मानो ऐसा करते हुए हंसों के स्वर मधुर बातो तथा मयूरों के शब्द कर्कशता को प्राप्त हुए। शरद्ऋतु में हंसों के शब्द मधुर तथा मयूरों के शब्द कर्कश हो गए। पहिले हंसों की ध्वनियों से पराजित ध्वनिवाले मोर के पंख मानो असमर्थता या ईर्ष्या या क्रोध के कारण झड गये। 'शत्रुकृत पराभव अत्यन्त दुःसह होता हैं।'[3] कटे हुए सुवर्ण के समान पिगंल फूलों की पंखुडियों वाले परागसहित केसरों से मनोहर और पति से तिरस्कृत मानवती स्त्रियों के क्रोध कोदूर करने वाले असन सार्थकता को प्राप्त किया अर्थात् असन का नाम वस्तुतः चरितार्थ हो गया।

---

1. शि० पा० व० 6/42
2. शि० पा० व० 6/44
3. किरा० 1/41

प्रातः काल की धूप को धारण करने वाला जलकमल ने जिस कारण चकोर नयनियों के मद से अरूण वर्ण मुख कान्तिका अनुकरण किया। अर्थात् उनके मुखके समान शोभने लगा। अश्विन मास में धान की रखवाली करने वाली गोपवधुओं ने निर्निमेष हो उच्च स्वर में गाये गये मधुर गान सुनते हुए अर्थात् धान खाने की इच्छा नहीं करने वाले मृग–समूहों को नहीं भगाया। सप्तपर्ण के गुच्छों से सुगन्धित भ्रमरों के द्वारा उच्चस्वर से गायी गयी अर्थात् प्रशंसित मदयुक्त किये गये। लोकत्रय[1] को व्याकुल करने वाले कार्तिक मासरूपी हाथी की सूचना देती हुई सी बहने लगी। इस प्रकार शरद्रूपिणी स्त्रियों ने वायु से चंचल नये कमल केसर से उत्पन्न धूलि कों हंसी करने की इच्छा से श्रीकृष्ण भगवान की प्रियाओं के ऊपर फैलने के लिए फेक दिया। विकसित कमल है नेत्र जिसके ऐसे तडाग जलवाली अर्थात् विकसित कमल रूपी नेत्रयुक्त तडाग जलवाली अत्यन्त शुभ्र शरीर वाले पक्षियों से स्वर्ग को हँसती हुई तथा कास नामक घासों से दन्तुर मुखवाली शरद् ऋतुको सब तरफ से प्रसन्न सा माना।

—: हेमन्त ऋतु का वर्णन :—

नदियों को हिममय करती हुई हेमन्त की वायु ने पथिकों की स्त्रियों के नेत्रों के अतिशय सन्ताप करने वाले जलप्रवाह को बढा दिया।[2]

—: शिशिर ऋतु का वर्णन :—

वन प्रान्त में प्रियंगलताओं को विकसित करता हुआ, मदकारक भ्रमरियों को ध्वनिरूप हुँकारों से युक्त शिशिर ऋतु का पवन पतिरहित युवतियों को भर्त्सित करने लगा अर्थात् विकसित प्रियंगलताओं के कामोद्दीपक होने से उसे देखकर विरहिणी स्त्रियाँ कामपीडित होने लगी।

1. शि० पा० व० 6/77
2. शि० पा० व० 6/50

—: समय की प्रबलता का वर्णन कवि द्वारा :—

उपचितेषु जरेष्व समर्थतां, ब्रजति फालवशाद् बलवानपि।

तपसि मन्दगभस्तिरभीषुमान्नहि महाहिमहानिकरोऽभवत्।।[1]

समय की प्रबलता से शुत्रुओं के बढ जाने पर बलवान् भी असमर्थ हो जाता है।[2] क्योकि माघ मास में मन्द किरणों वाला सूर्य बढे हुए हिमको नष्ट नहीं कर सका। ऊपर उडती हुई, सेना की धूल के समान पाण्डु वर्णवाला जिस लोघ्र के फूलों के पराग ने संसार पर सेना के द्वारा चड़ाई करने वाले कामदेव को कहा। लोघ्रपुष्पों का पराग दिशाओं को आच्छादित करता हुआ प्रकट हुआ। शिशिर को छोडकर शीतनाश करने वाली हम लोगों के इस स्तनों को गर्मी का कौन सा गुण होगा अर्थात् हम लोगों के स्तनों में जो उष्णता है उसका शिशिर ऋतु के अतिरिक्त दूसरे समय में कोई लाभ नहीं हैं, इस बुद्धि से क्रोधहीन प्रियाओं ने नम्र वल्लभों का गाढ आलिंगन किया। लवगों के पुष्पदलों पर बैठने वाले ये भ्रमर पराग से अधिक मलिन हो गये, मानो इस प्रकार सामने तत्काल विकसित होते हुए अपने पुष्पों से कुन्दलता ने भ्रमरों का उपहास किया है।

—: हेमन्त ऋतु का वैशिष्ट्य :—

इदमयुक्तमहो महदेव यद्वरतनोः स्मरयत्यनिलोऽन्यदा।

स्मृतसयौवनसोष्मपयोधरान्सतुहिनस्तु हिनस्तु वियोगिनः।।[3]

जो वायु दूसरे समय में विरहियों को जो सुन्दर शरीरवाली प्रियाओं का स्मरण करा देता है, यह बहुत अनुचित है हिमयुक्त बर्फीली वह वायु युवावस्था से गर्म,गर्म स्तनों का स्मरण किये हुए विरहियों को मार डाले।

---

1. शि0 पा0 व0 6/63
2. मेघदूतम् 2/23
3. शि0 पा0 व0 6/56

क्रोधयुक्त जो स्त्री प्रियतम के साथ नहीं बैठी मार्गशीर्ष–अगहन से कँपायी गयी तथा हँसती हुई वह स्त्री उस पति का एकाएक आलिंगन कर क्षणमात्र भी शिथिल नहीं कर सकी। अधरपल्लव का आवरणरहित जो व्रण ठण्डी हवा से अत्यन्त पीडित हो रहा था सीत्कार के द्वारा दाँतों की किरण रूपी सफेद कपडे से ढका गया, वह व्रण अच्छी तरह सुखी हुआ। सुकुमारी की दन्तक्षत युक्त कोमलता के कारण हिमकी वायु से पीड़ित अधर रेखा ने मानों मधुर सीत्कार करने से स्फुरित हुई दन्तकिरण रूप आवरण को धारण कर लिया।

हिमऋतावपि ताः स्म भृशस्विदो युवतयः सुतरामुपकारिणि।

प्रकटयत्यनुरागमकृतिमं स्मरमयं रमयन्ति विलासिनः।। [1]

कामजन्य स्वाभाविक अनुराग को उत्पन्न करने वाले सहज उपकारी हेमन्त ऋतु में भी अत्यन्त स्वेदयुक्त युवतियाँ विलासियों के साथ रमण करती थीं। इस प्रकार यहाँ हेमन्त का वर्णन समाप्त हुआ।

अतिसुरभिरभाजि पुष्पश्रियामतनुतरतयेव सन्तानकः।

तरूणपरभ्रतः स्वनंरागिणामतनुतरतये वसन्तानकः।। [2]

अत्यन्त सौरभयुक्त सन्तानक नामक देववृक्ष पुष्प सम्पतियों की अधिकता से मानों टूट सा गया और वसन्त ऋतु का दुन्दभिरूप कोकिल कामियों के रति के लिये ध्वनि करने लगा। अभीष्ट पराग में रहने की अभ्यस्त अर्थात् अधिक मधुपान करने वाली भ्रमर श्रेणि युवतियों के मान दूर करने में समर्थ अत एवं वसन्त ऋतु के दिनों सारभूत आम्रवृक्ष को अत्यन्त अनुराग से नहीं छोड सकी, अन्य पुरूषों को छोडकर श्रेष्ठ आम्रमंजरी के इसका पान करने के लिए आम पर ही बैठी रही।

---

1. शि० पा० व० 6/61
2. शि० पा० व० 6/67

प्रभावयुक्त वसन्त लक्ष्मी ने "मै संसार को वशीभूत करने में समर्थ काम–सेना में इन विजयिनी ध्वजपताकाओं को फैला दू।" इस विचार से कदली के स्तम्भों को फैला दिया । दोषयुक्त कामोत्पन्न अनुरागरूप अन्धकार समूह ने सूर्य मण्डल को मानो आच्छादित कर लिया, क्योकि सब ओर कोयल के कूजते रहने पर स्त्रियॉ वशीभूत नहीं हुए पति को दिन में भी पाली अर्थात् उसके पास पहुॅच गयीं।

ग्रीष्म ऋतु के द्वारा जलक्रीडा से निर्मल शरीरवाली अत्यन्त रमणीय विधुल्लता के समान सुन्दरी तथा रागवती रमणी को उसके प्रियतम ने गोदमें ले लिया।

मेघ के बरसते रहने पर मोर सहसा हर्षित हो गये नदियॉ भर गयी और भ्रमरी सायंकाल के दीपक के लौ के समान कान्तिवाले अरूण वर्ण कन्दली पुष्पपर भ्रमर के साथ रमण करने लगीं। पर्वतराज रैवतक के समीप में पृथ्वी पर मतवाले भ्रमरों से युक्त कौरैया के फूलों को तथा जलभार से नीचे की ओर नम्र बादलों वाले मेघ को देख कर मोर गाने के समान मधुरबेला वाणी का उच्च स्वर में उच्चारण करनेलगे।

मदयुक्त स्त्रियॉ विकसित होकर बढें हुए कास वाले समय मे अर्थात् शरद ऋतु में कामजन्य सुख के उत्पन्न होने में आशा करने वाले प्रियतमों को निःशंक पाकर हर्षित होती हुई शोभित होने लगी। जिस समय में सारस पक्षी बोलते हैं उस समय शरद् ऋतु ने अंगनाओं के स्तनों पर जिस स्वेदबिन्दुओं की श्रेणि को उत्पन्न किया। मोती के हार के समान वह स्वेद बिन्दु श्रेणि अतिशय अनुराग से आलिंगन की इच्छा को नही रोक सकी। जो स्त्री वन समीप में कर्णमधुर सारसी के कूजित से कामदेव तुल्य पति में अनुरागवती हुई, वह कौन रसिक स्त्री एकान्त

में उस पति का साथ पाकर पहले ही सुरत क्रीडा को नहीं करती है? अर्थात् करती है।

एकान्त में कामोद्दीपक मद्य से सन्तुष्ट की गयी अनुराग तथा हास से युक्त और प्रेम से होने से प्रियतमों के चित्तों में वसी हुई स्त्रियों के द्वारा बलपूर्वक पकड़ कर खीचती हैं। हेमन्त ऋतुओं की रात्रियों में भी कौन पुरूष सोते हैं? अर्थात् कोई भी पुरूष नहीं सोते किन्तु उक्त रूप से प्रियतमाओं के साथ संम्भोग करते हैं।

असम्पूर्ण स्फुटित सुन्दर पल्लवों के विलास से विस्मित में भ्रमरों की लवली अर्थात् चन्दन लता पर बैठी हुई श्रेणी बार–बार उच्च्च स्वर से मधुर गूँज गूँजने लगी।

इस प्रकार अत्यन्त भार से वृक्षों को नम्र करते हुए तथा भ्रमरों के गुंजनों को समाप्त नहीं करते हुए समस्त ऋतुओं को धारण करते हुए पर्वत पर लक्ष्मीयुक्त मयूर की वाणी ने बिहार करने के लिए प्रेरित किया।

महाकवि भारवि ने सुन्दर शरद ऋतु का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। उन्होने वहॉ के नालों नदियों एवं तालाबों का ऐसा वर्णन किया है कि मानो हमने सामने मूर्तरूप से विद्यमान है। धान की बालों एवं उसके वृक्षों का इतना सजीव वर्णन किया है कि सहसा पढकर ही उसकी प्रकृति के बारे में व्यक्ति ज्ञात कर सकता है। उसी प्रकार से महाकवि माघ ने अपने ग्रन्थ शिशुपाल वध में ऋतुओं के बारे में सजीवता लाकर मानव के सामने उसको प्रकट करने का प्रयास नहीं अपितु पढकर ऑखों के सामने सजीव चित्रण प्रकट हो जाता है। मानो हम ऋतुओं में खोये हुए हैं। रसालंकारों का अदभुद मिश्रण एवं काव्य सौष्ठव प्रकट की जाती है।

—: महाकवि भारवि द्वारा हिमालय का वर्णन :—

इन्द्रकील पर्वत की ओर यक्ष के जाते हुए अर्जुन ने हिमालय की शोभा को निम्न लिखित रूप में देखा। हिमालय समस्त लोक के मनुष्यों को आश्रय देने वाला है इसके गर्भ में अनेक धातु और मणि गुम्फित हैं।[1]

अतएव यह रत्नाकर की छवि को धारण किये हुये है। इसका शिखर प्रदेश हिमाच्छादित और मध्यप्रदेश से गंगा आदिसुरसरितायें गिर रही हैं। हिमालय की ऊँचाई का वर्णन निम्न लिखित पद्य में है।

तपनमण्डलदीपितमेकतः सतत नैशमोवृतमन्यतः।

हसितभिन्नतमिस्रचर्यं पुरः शिवमिवानुगत गजचर्मणा।।[2]

इसकी ऊँचाई के कारण सूर्य जिस तरह रहता है। उस तरह प्रकाश रहता है और दूसरी तरफ रात्रि की तरह घना अन्धकार से आच्छादित रहता है अर्थात् एक ओर दिन और दूसरी ओर रात्रि रहती है। इससे मालूम पडता हैं, कि ये हांथी की खाल ओढे ओर अट्हास करते हुये साक्षात् शिवजी है क्योंकि शिवजी के सामने का भाग उनके हास से प्रकाशित रहता है और पीछे का भाग हांथी की खाल से अन्धकाराच्छन्न रहता है। पृथ्वी, आकाश, तथा स्वर्ग लोक निवासी एक दूसरे से अदृष्ट होकर इस हिमालय पर निवास करते हैं। अतः मालूम पडता है कि शकंर भगवान ने अपने यश के प्रचार के लिए संसार भर का प्रतिनिधि इसे बनया है। हिमालय का गगनचुम्बी शेषनाग[3] के समान शुभ्र और स्वर्ण रेखाओं से सुशोभित शिखर–समूह इतना उन्नत है कि वह विद्युत लता से युक्त शरत् काल

1. किरा0 5/1
2. किरा0 5/2
3. किरा0 5/4

मे मेघमालाओं को अपने औन्नत्य से तिरस्कृत कर रहा है। इस हिमालय के भूभाग नगर के समान है ये नगर विविध रत्नों की किरणों से प्रकाशित हैं। अमरांगनाओं से उपयुक्त लतायें इस नगर के भवन है। ऊँची–ऊँची शिलाओं के बीच के पुष्पोधान है। इस तरह के नगर वाले भूखण्डों को यह हिमालय धारण करता है। हिमालय के विपुल नितम्ब के समान मध्यभाग पर मेघ अवलम्बित हैं। खूब जलवर्षण कर निवृत्त हो जाने से धवल वर्ण के हो गये है। अब इनमें बिजली का प्रकाश बिलकुल नहीं रह गया है। ये गम्भीर गर्जन कर रहे हैं।

इन बादलों से यह हिमवान् समक्ष दिखाई पडता है। पहले तो पर्वतों के पक्ष होते थे जिससे वे उडते थे। उडते–उडते जहाँ बैठ जाते थे वहॉ के धन–जन को नष्ट भ्रष्ट कर देते थे इस लिए इन्द्र ने पर्वतों का पक्ष काट डाला। यद्यपि यह पक्षरहित है तो भी इन मेघों से पक्षवान् उत्प्रेक्षित होता है।

–: सुन्दर नदियों का वर्णन :–

दधतमाकरिभिः करिभिः क्षतैः समवतग्रसमैरसमैस्तटैः।

विविधकामहिता महिताम्भसः स्फुटसरोजवना जवना नदीः।।[1]

इस हिमालय पर बहुत सी नदियॉ है। उनके तट अनेक रत्नों की खाने हैं। वे हाथियों के द्वारा क्षत करके समस्थल बना दिये गये हैं, देखने में बहुत सुन्दर हैं, इसलिए स्नानमार्जनादि अनेक विधकार्यो के लिये ये नदियॉ हितकारिणी हैं। इनका जल अत्यन्त पवित्र है। इनमें कमल विकसित हो रहे है। ऊँचे से नीचे की तरफ बहने के कारण इन नदियों का प्रवाह प्रवर है। इस हिमालय पर अभिनव विकसित अडहुल पुष्प के समान कान्तियुक्त पदमरागादि महामणियाँ विराज रही

1. किरा० 5/7

हैं। प्रकाशित होते हुए इन महामणियों के समूह से संघटित होकर हेमयुक्त शिखरों पर सायंकाल की किरणों के सदृश्य परिस्फुरण करती हुई किरणों को यह हिमालय धारण करता है।[1] हिमालय बडे–बडे मुख के पुष्पों से सुशोभित हो रहा है। यह गुथे हुए पुष्पमाला के सदृश्य तमाल के वनों से व्याप्त हो रहा है। बिन्दु–बिन्दु हिमजल इस पर से परिस्रवण कर रहा है। इस हिमालय पर मदस्रावी और सुन्दर झुण्ड भुशुण्डवाले हांथी विचरण करते हैं।

–: हिमालय की चोटियॉ रत्नों से विभूषित :–

रहितरत्नचयान्न शिलोच्चयानपलताभावना न दरीभुवः।

विपुलिनाम्बुरूहा न सरिद्विधूरकुसुमान्दधतं न महीरूहः।।[2]

हिमालय के शिखर रत्न–राशियों से खाली नहीं हैं। इसके कन्दरा प्रदेश लतागृहों से शून्य नहीं है। इसकी नदियॉ नवविवाहिता रमणी की तरह है। ये नादियाँ सिकताराशि और कमलों से रहित नहीं हैं। इस के ऊपर जितने वृक्ष हैं वे पुष्प और फलों को धारण न करते हों सो भी नहीं अर्थात् सर्व रत्न सम्पन्न यह हिमालय है। हिमालय की नदियों का प्रवाह सुर–सुन्दरियों के कांची सहित, मोटे–मोटे जघनों[3] से धीरे–धीरे क्षुब्ध होता रहता है। नूतन–कोमल लता और पुष्पपराग ही इनकी प्रियतमायें है। हिमालय के शिखर अनेक मणियों की प्रभा से रंजित रहने के कारण तथा बर्फ से ढके होने के कारण शुभ्र दिखलाई पड़ते हैं। उस पर मेघमण्डल भी धवल वर्ण तथा इन्द्रधनुष के संग होता हुआ व्यक्त नहीं हो पडता है। जब कभी वह गम्भीर गर्जन करता है। तब स्पष्ट हो जाता है कि

---

1. किरा0 5/8
2. किरा0 5/10
3. किरा0 5/13

हिमालय के शिखर पर मेघ भी हैं। यह निर्मल जल युक्त एक मानसरोवर[1] को धारण करता है। जिसमें कमल स्वर्ण खिले हुए रहते हैं और इसमें कमल हंसों का निवास है। या सम्पूर्ण जाति के हंसों का निवास है। यह नहीं किन्तु किसी कारण से कुंठित पार्वती के साथ अपने प्रमथादि गणों के साथ सम्पूर्ण अविधाओं से विमुक्त अत एव शुद्ध चित्त शंकर जी को भी धारण करता है।

इस हिमालय के उन्नत शिखरों पर गंगा प्रवाहित होती है। पत्थरों के ढेर के कारण जब उनका जल–प्रवाह अवरूद्ध हो जाता है। पुनः उन पत्थरों के ढेरों पर से उतरने लगता है। उस समय असंख्य जल–कंण ऊर्ध्व गति से फववारें की तरह छूटते है उस समय गगां शुभ्र चामर धारण की हुई की भॉति प्रतीत होती है। कुबरे के भ्रत्य ने हिमालय के अवलोकन से आश्चर्य चकित अर्जुन से आदर पूर्वक मधुर शब्दों में कहा क्योंकि यदि मनुष्य अवसर समझकर बिना पूंछे भी कुछ कहता है तो उसकी शोभा होती है।

–: यक्ष द्वारा वर्णन :–

अलमेष विलोकितः प्रजानां सहसा संहतिमंहसांविहन्तुम्।

घनवर्त्म सहस्रधेव कुर्वन्हिमगौरैरचलाधिपः शिरोभिः।। [2]

यह नगेन्द्र हिम–धवल अपने शिखरों से मेघ–मार्ग अर्थात् आकाश मंडल को मानों असंख्य भागों में विभक्त कर दिया है। दर्शन मात्र से ही यह लोगों के पापपुंज का नाश करने में समर्थ है। हिमालय के दुस्तर आभ्यन्तर तत्व का वर्णन, दुरूह पुराणों की सहायता से थोडा बहुत किया जाता है। दिगन्दव्यापी इस पर्वत

1. मेघदूतम् 1/45
2. किरा० 5/17

को जिसमें बहुत से घने–घने जगंल है और जो परम पुरूष भगवान के सदृश अज्ञेय है, केवल ब्रह्मा ही जानते हैं। कोमल किसलय और पुष्पों से युक्त लताओं के कुंजों से तथा कमल पूर्ण सरोवरों से सुशोभित होता हुआ, यह प्रियतम के समीप मानिनी स्त्रियों को उत्कंठित कर देता है।[1]

इस भूलोक की भूमि, नीतिमान तथा भाग्यवान पुरूषों से सुलभ निधि और यक्षों के स्वामी की सर्वोत्तम धनराशि सम्पन्न हिमवान् से पूर्ण होकर अन्य लोको की भूमि पर विजय प्राप्त कर सुशोभित हो रही है। सम्पूर्ण यह त्रिभुवन आकाश, पाताल और मृत्युलोक इस अपर्णा के पिता हिमालय के समक्ष नहीं टिक सका। क्योकि इस पर भगवान् शंकर सर्वदा निवास करते हैं जिनकी महिमा साधारण पुरूषों को भी अविदित है। जन्म और जरा रहित पवित्र और सर्वोत्तम ब्रहृम धाम को चाहने वालों के लिये अज्ञान निवर्तक शास्त्र की तरह इस हिमालय से संसार के बन्धन से मुक्त हो जाने की सद्बुद्धि उत्पन्न होती है। जैसे शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि का झुकाव मोक्ष की तरफ हो जाता है वैसे ही इस पर निवास मात्र से बुद्धि अज्ञान का अवलम्बन करती है। हिमालय पर्वत को देख लोगों के मन में निम्न लिखित भावनायें उत्पन्न होती हैं।

दिव्यस्त्रीणां सचरणलाक्षारागा रागायते निपतित पुष्पपीडाः।

पीडाभाजः कुसुमचिताः साशंसं शंसन्तस्मिन्सुरतविशेषं शय्याः।। [2]

यहाँ पर फूलों की शय्यायें जो चरण में लगाये गये महावर से रंजित हैं जिनपर म्लानपुष्प पडें हुए हैं और जो अत्यन्त विमर्दित हो गई हैं, दृष्टिगोचर हो रही हैं। उनसे सुरसुन्दरियों के अत्यन्त रागोद्वेग पूर्वक कामोपभोग की क्रिया सूचित होती है।

---

1. किरा0 5/20
2. किरा0 5/23

गुणसम्पदा समधिगम्य परंमहिमानमत्रमहिते जगताम्।

नयशालिनि श्रिय इवाधिपतो विरमन्ति न ज्वलितुमोषधयः।। [1]

जिस प्रकार नीतिमान राजा की राज्यलक्ष्मी सन्ध्या, पूजन, तर्पणादि गुणों से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर सर्वदा उस राजा के प्रताप की अभिवृद्धि किया करती है। उसी प्रकार लोकपूज्य इस हिमालय पर औषधियाँ परम शक्ति प्राप्त कर अहर्निश प्रज्वलित रहने से विश्राम नहीं कर पाती हैं। यहाॅ पर कुररी जाति की पक्षियाॅ बोलती रहती है। इसके वृक्ष पुष्प भार से झुक गये हैं। इसके जलाशय कमल से विशोभित हैं। इसकी सरितायें वृक्षों से अपने को आवृत्त कर ली है। इनके तट पर उशीर उगे हुए हैं। ये ताप को दूर भगा देती हैं। हांथियों के लिए प्रसन्नतापूर्वक हैं। विकसित आम्र मांजरी के गन्ध के समान मदजल सेचन से उत्पन्न सौरभवाही, सुरगजों के कपोल द्वारा विवर्तित और जिस पर भ्रमरकुल व्याप्त है, ऐसी वृक्षों की शाखाओं का स्थान वसन्त का समय न होने पर भी कोकिलों को वसन्त का भ्रम उत्पन्न करा कर मदोन्मत्त बना देता है।

ईशार्थमम्भसि चिराय तपश्चरन्त्या

यादोविलंघनविलोलविलोचनायाः।

आलम्बताग्रकरमत्र भवो भवान्याः

श्च्योतमिदाघस लिलांगुलधिना करेण।। [2]

हिमालय पर भगवान शिव के लिए बहुत समय तक जल में भवानी ने तपस्साधन किया था। उस समय जब कभी जलजन्तु परिस्फुरण करते थे तो उनके नेत्र सचकित हो जाते थे। शंकर ने भी उनके हाथ का अग्रभाग ग्रहण

1. किरा0 5/24
2. किरा0 5/29

किया था। भगवान शंकर के हाथ की अंगुलियों से ग्रीष्म काल के स्वेद–बिन्दु टपक रहे थे। जिस मन्दिर गिरि से देवता और दैत्यों ने अमृत के लिये समुद्र का मन्थन किया था। समुद्र से जल के उछलने के कारण पाताल को दृष्टिगोचर हो रहा था। और वह रज्जुभूत सर्पराज वासुकि के बारम्बार विवर्तन से अंकित होकर इस प्रकार विशोभित हो रहा है, मानो आकाश मण्डल का भेदन कर रहा है। सुन्दरियों के भौंह के समान कुटिल गति युक्त जल में मन्द–मन्द चलते हुए वायु से कमल कम्पित हो रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे हाव–भाव पूर्वक नृत्य कर रहे हैं। इस पर्वत पर पिनाकपाणि ने अपने हाथ से विलोलनेत्र पार्वती के यवांकुरादि शुभलक्षण लक्षित तथा कम्पयुत पाणि का ग्रहण किया था। उस समय शंकर भगवान् के हाथ से कौतुकसूत्र इस प्रकार खिसक पडा था जैसे सर्प सरक जाय।

–: सूर्य की किरणों का वर्णन :–

क्रामद्भिर्घनपदवीमनेकसंख्यैस्तेजोभिः शुचिमणिजन्मभिर्विभिन्नः।

उस्राणांव्यभिचरतीव सप्तसप्तेः पर्यस्यभिव निचयः सहस्रसंख्याम्।।[1]

कुबेर ने त्रिपुर–बिजेता भगवान् शूली के सन्तोषार्थ बडे–बडे फाटकों से युक्त नगर निर्मित कराया था यह वहाँ कैलास है जो समीप में समागत सूर्य भगवान् को समय के पहले ही अस्त की तरह बना देता है। कैलास के शिखर पर विविध रत्नों की प्रभा–पुंज से ढूहों के अन्तराल आच्छादित होने पर सुदृढ दीवाल की शंका उत्पन्न करते है। आकाशसंचारी वायु बार–बार संचरित हो भित्ति की शंका का विच्छेद कर देता है।[2] इस कैलास पर शैवाल समूह अपने अभिनव

1. किरा 5/34
2. किरा0 5/37

रमणीयता का परित्याग नहीं करता। नीलकमल अनुदिन अपनी नीलिमा की वृद्धि करते रहते है और रंग–विरंग के पुष्प समूह से समन्वित वृक्षों के पत्ते भी जीर्ण–शीर्ण हो धराशायी नहीं बनते हैं।

वृक्ष द्वारा कथन निम्न श्लोक के माध्यम से–

उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादु–

दधूतः सरसिजसम्भवः परागः।

वात्याभिर्वियाति विवर्तितः समन्तादा–

धत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्।। [1]

यह जो स्थल, कमलों का वन दृष्टिगोचर हो रहा है वहॉ से पद्म– पराग के वात्या के द्वारा उडाये जाने पर आकाश मण्डलाकार बन जाता हैं उस समय स्वर्णसूत्र निर्मित आतपत्र की शोभा का अनुकरण करने लगा है। इस कैलास पर अत्यन्त प्रभात काल में सुरधुनी के तट पर सन्ध्या–वंदन कृत्यांगभूत प्रदक्षिण के कारण जो उमा और शंकर के पद–चिन्ह व्यक्त होते हैं। उनमें से वाम चरणरेखा महावर से रंगी हुई और विषम है अर्थात् वाम पद–चिन्ह रक्त वर्ण और छोटा है, दक्षिण पद–चिन्ह बडा है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। कि शिव और पार्वती अर्द्धागी स्वरूप हैं अर्थात् शिव का वामांग पार्वती रूप और दक्षिणांग शिव स्वरूप है।

कैलास शिखर पर रजतभित्ति के किरण पुंजो से उत्कषशाली शनै–शनै कम्पित होते हुए वृक्षों की शाखाओं के रन्ध्र से छन–छनकर निकले हुए सूर्य की किरणों के समूह जो दर्पणानुकारी हैं अधिकाधिक परिशोभित हो रहे है। जब यह

---

1. किरा0 5/39

प्रमथाधिप का महाक्ष शुभ्र किरण पूंजों से धवलित होकर वप्रक्रीडा–प्रसक्ति के कारण अपने अंगो को संवृत करके इस कैलास के शिखरों का आश्रय लेता है। इस समय युवति जनों के मन में शशलांछना का भान होने लगता है। इस शरदकाल में जब मेघ मण्डल जलरहित होकर खण्ड–खण्ड हो जाता है। उस समय इन्द्र–धनुष जो आकाश में प्रायः कम उदित होता है अत्यन्त सूक्ष्म और खण्डित सा दृष्टिगोचर होता है। इस कैलास–शिखर के विविध रत्नों की कान्ति उसको पूर्ण कर देती है।

स्नपितनवलतातरूप्रवालैरमृतलवस्नुतिशालिभिर्मयूखैः ।

सततमसितयामिनीषु शम्भोरमलयतीह वनान्तमिन्दुलेखा ।। [1]

इस कैलास पर भगवान् शंकर के शिरःस्थित चन्द्रलेखा अपनी पीयूष बिन्दुस्रावी किरणों से जो छोटे–छोटे वृक्ष और नूतन लताओं का सिन्चन करती है कृष्ण पक्ष की रात्रि में बनान्त प्रदेश को धवलित कर देती है।

इस सुन्दर कैलास पर्वत पर चॉदी की दीवारों से निकलती हुई शुभ्र किरणों से सूर्य की किरणें और भी अधिक प्रकाशमयी हो रही हैं। वह प्रकाश जब हिलते हुए वृक्षों की शाखाओं के बीच से गुजरता है तब बारम्बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे दर्पणपर सूर्य की किरणें पडने से उसकी झाई ऊपर उठ रही हो। नन्दी का सुन्दर वर्णन निम्नलिखित श्लोक में–

शुक्लैर्मयूखनिचयैः परिवीतमूर्ति

र्वप्राभिघातपरिमण्डलितोरूदेहः ।

श्रगाष्यमुष्य भजते गणभर्तुरूक्षा,

कुर्वन् बधूजनमःसु शशांकशंकाम् ।। [2]

1. किरा0 5/44
2. किरा0 5/42

सफेद किरणों से व्याप्त है मूर्ति जिसकी ऐसी सीगो से पहाड को खोदने की क्रिया में शरीरको गोलाकार किया हुआ शिवजी का वाहन नन्दी[2] स्त्रियों के मनमें चन्द्रमाकी शंका उत्पन्न करता हुआ इस कैलास के शिखरों में विचरता है। इस कैलास में अनेक रंगों की शिखरस्थ रत्नकानितयॉ इस शरदकाल में हलके जलहीन होने से टुकडे–टुकडे हुए मेघ मंडल में धीरे–धीरे किसी प्रकार उत्पन्न हुए टूटे इन्द्रधनुष को जोडने में समर्थ हो रही है। निरन्तर वास करते हुए भगवान शिवजी के मस्तक की चन्द्रकला लताओं एवं वृक्षों के नये–नये किसलयों को धोती हुई सी अम्रत की बूदों को बरसाकर शोभित किरणों से कृष्णपक्षकी रातों में भी वनप्रदेशों को सफेद कर रही है। जो वनों में फैली हुई सुनहरी कान्तिको लम्बी चौडी चादर की तरह डालता है। अनेक सोने की गुफाओं वाला यह इन्द्रनील पर्वत है।

इन्द्रनील गिरि पर वायु प्रबल वेग से चलकर लताओं की परस्पर संसक्ति को दूरकर देता है अतः सुवर्णमयी तटभूमि एका एक सूर्य भगवान् की किरणों से द्विगुणित हो बिजली की छटा को मात करती है। इस पर्वत पर चन्दनद्रुम ऐरावत के कण्डू–प्रशान्त्यर्थ संघर्षण से भीषण भुजंगमों से रहित हो गये हैं। क्षणमात्र के लिये मदोनमन्त हांथि भी इनसे दूर हो गये हैं। ये ऐरावत के मद से भीगे है इनके देखने से अनुमान होता है। कि इस मार्ग से देवताओं का हाथी गमन किया है। मेघमाला के सदृश इन्द्रनील मणि की किरणों से सूर्य की किरणें परस्पर संघटित होकर कन्दराओं को प्रकाशित नहीं कर सकती है और इस तरह दीख पडती है मानो अन्धकार से मिली हुई हैं यक्ष ने अर्जुन से कहा–

1. मेघदूतम् 1/56

भव्यो भवन्नपि मुनेरिह शासनेन

क्षात्रे स्थितः पथितपस्य हतप्रमादः।

प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधो हि

श्रेयांसिलब्धमसुखानि विनान्तरायैः।। [1]

आप सभ्यता धारण करते हुये भी व्यास मुनि के निर्देश से क्षात्रधर्म का पालने करते हुए अर्थात् शस्त्र ग्रहण करते हुए सावधान होकर तपश्चर्या कीजियं यद्यपि अनुकूल भाग्य होते हुए भी विघ्न–बाधाओं के बिना कल्याण प्राप्त करना कठिन है। अतः विघ्न निवारणार्थ शस्त्र धारण करना आपके लिये अत्यावश्यक है। इन्द्रिय वर्ग घोडों के सदृश उन्मार्गगामी नहीं है। आप की कष्टावस्था में शंकर भगवान् कार्यसाधन समर्थ उत्साह प्रदान करे। लोकपाल आपके तपः साधन में शक्ति की अभिवृद्धि करते हुए आपके शोभन कर्तव्यानुष्ठान को सफल बनावे।

इस प्रकार प्रिय और हितकर वाक्य प्रेम पात्र कुवेरानुचर के चले जाने पर अर्जुन ने उत्कष्ठापूर्वक क्षणभर के लिये यक्ष का अध्ययन किया क्योकि सुजन वियोग दुःखदायी होता है। जिस प्रकार अर्जुन का पुरूषार्थ सर्वथा अनतिक्रमणीय आशुभावी अनेक प्रकार के फल से युक्त और महान था उसी प्रकार इन्द्रनील पहाड भी था सर्वथा बल प्रयोग से उसे कोई क्रान्त नहीं कर सकता था। उस पर रहकर साधन करने वाले पुरूष की अनेक विध फल सिद्ध आशुभाविनी थी। बहुत दिनों से अर्जुन उस को चित्त से चाहते थे, उसी इन्द्रनील पर्वत को आश्रय उन्होने लिया। उस क्षण वे भी पूर्ण तथा सुशोभित हो रहे थे।

---

1. किरा० 5/49

–: महाकवि माघ द्वारा रैवतक पर प्रभात वर्णन :–

रात अब बहुत ही थोडी रह गयी है। सुबह होने में कुछ ही कसर है जरा सप्तर्षि नाम के तारों को देखिए। वे आसमान में लंबे पड़े हुए हैं।

उनका पिछला भाग तो नीचे को झुका सा है और अगला ऊपर को। वहीं उनके अधो भाग में छोटा सा ध्रुवतारा[1] कुछ–कुछ चमक रहा है सप्तर्षियों का आकार गाडी के सदृश है– ऐसी गाडी के सदृश जिसका जुआँ ऊपर उठ गया हो इसी से उनके और ध्रुवतारा के दृश्य को देखकर श्री कृष्ण के बालपन की एक घटना याद आ जाती है शिशु श्री कृष्ण को मारने के लिए एक बार गाडी का रूप बनाकर शकटासुर नाम का एक दानव उनके पास आया। श्री कृष्ण ने पालने में पडे ही पडे खेलते हुए उसे एक लात मार दी, जिसके आघात से उसका अग्रभाग उपर को उठ गया और पाश्चाद्भाग खडा ही रह गया। श्री कृष्ण उसके तले आ गये। वही दृश्य इस समय सप्तार्षियों की अवस्थिति का है।[2] वे तो कुछ उठे हुए से लंबे पडे है छोटा सा ध्रुव नीचे चमक रहा है। भगवान श्री कृष्ण ने रात्रि का आगमन निम्नलिखित पद्य से वर्णित किया है–

श्रुतिसमधिकमुच्चैः पंचमं पीडयन्तः

सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य सड़जम्।

प्रणिजगदुर काकुश्रावक स्निग्ध कंठाः

परिणातिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय।।[3]

बहुत दूर तक सुनाई पड़ने वाली विकारहीन ध्वनि वाले एवं कंठ वाले बन्दी लोग श्रुति से अतिशयित षडज स्वर को छोड़कर वीणादि वाद्यों के साथ ऋषभ

1. शि० पा० व० 11/3
2. शि० पा० व० 11/5
3. शि० पा० व० 11/1

स्वर को भी छोडकर रात्रि को परिभ्रमण करने लगे। इस प्रकार भगवानश्री कृष्ण ने आरम्भ किया। सुरतोत्कंठा में बार–बार विलास करने से खिन्न दोनों नेत्र जब तक बन्द भी नहीं हुए अर्थात् जब तक कामीजनों को अच्छी तरह से निद्रा भी नहीं आयी तभी तक रात्रि के पूरा होने की सूचना देने वाला मृदंग वियोग की नींद को भंग करता हुआ उच्च स्वर से बजने लगा। अपने प्रहर को पूराकर सोने के लिए चाहता हुआ पहरेदार ने आगे पहरा देनेवाले साथी को जागों, उठो ऐसा उच्च स्वर से बारबार कहकर जगाया किन्तु नींद से अस्पष्ट अच्छरों को एवं अर्थरहित वचन को कहता हुआ भी वह मनुष्य भीतर से नही जागा।

रमणी के अतिशय बडे–बडे नितम्ब मण्डल से[1] अवरूद्ध शय्यापर सोने के लिए स्थान को नहीं पाता हुआ प्रियतम बार–बार राति के सेवन करने से निद्रा सम्बन्धी तन्द्रा को दूर करता हुआ किसी प्रकार रात्रि को बिता रहा है। थोडी देर सोकर जागे हुए राजालोग रात्रि के अन्तिम प्रहर में बुद्धि के नैर्मल्य को पाये हुए तथा समुद्र के समान हाथी–घोडे आदि से गम्भीर और काव्य के समान दुष्प्रवेश्य राज्य में सामादि उपाय की कल्पना करते हुए कवि के समान पुरूषार्थ एवं विविध विषयों पर विचार प्रकट कर रहे हैं।

–: महाकवि माघ के द्वारा रैवतक पर्वत का वर्णन :–

इन्द्रनीलमणियों से युक्त अनेकवर्णो वाले रत्नों की कान्तियों के साथ भूमि को फाडकर ऊपर निकले हुए सर्पो के श्वास–वायु के धुँए के समान स्थित रैवतक पर्वत को देखा। बड़े–बड़े चट्टानों से युक्त ऊपर चारों ओर से उठते हुए मेघ समूहों से सूर्य के मार्ग को रोकने के लिए पुनः तत्पर विंध्यपर्वत के समान

1. शि० पा० व० 11/5

आचरण करते हुये। नये प्रभा समूह वाले रत्नों की सुवर्ण शिखरों पर फेली हुई कान्ति से युक्त चट्टानों की श्यामलता से मनोहर तथा भ्रमरों को बुलाती हुई लताओं से युक्त सहस्र शिखरों से आकाश में तथा सहस्रो पाद से पृथ्वी में फैलकर स्थित सूर्य–चन्द्रमा को दोनों नेत्ररूप में धारण करते हुए सहस्रों मस्तकों से आकाश में तथा सहस्रो चरणों से

पृथ्वी में व्याप्त होकर स्थित सूर्य और चन्द्र जिसके नेत्र है ऐसे हिरण्यगर्भ[1] ब्रह्मा के समान उस पर्वत को देखा।

कवि ने बहुत सुन्दर विशेषणों का प्रयोग करते हुए लिखा है कि–

क्वचिज्जलापायविपाण्डुराणि धौतोत्तरीयप्रतिमच्छबीनि।

अभ्राणि बिभ्राण मुमांगसंकविभक्तभस्मानमिव स्मरारिम्।। [2]

किसी भाग में जल के बरस जाने से शुभ्र वर्ण धुले हुए दुपट्टे के समान कान्तिवाले मेघों को धारण करते हुए पार्वती के शरीर–स्पर्श से पोंछे गये भस्म वाले शिवजी के समान स्थित पर्वत को श्रीकृष्ण ने देखा। कमल श्रेणियों के अधीन और चन्चल भ्रमरों वाले वृक्ष श्रेणियों से धूप को दूर करते हुए श्रेष्ठ केशाग्रवाली देवांगनाओं[3] को राक्षसोपद्रवहीन ही धारण करते हुए रैवतक पर्वत का वर्णन किया।

श्री कृष्ण भगवान् हस्तिनापुर को उसी मार्ग से जायेंगे, यह जानकर उनको प्रसन्न करने के लिए देवों ने सुमेरू पर्वत से उसके शिखरों को ला–लाकर इसे सजाया तथा ऊँचा किया अत एव अत्यन्त छोटे भी इस रैवतक पर्वत का जो इतना उदात्त वर्णन कवि ने किया है। वह प्रगल्भवक्ता कवियों को असत्यभाषी

---

1. ऋग्वेद–हिरण्यगर्भ सूक्त
2. शि० पा० व० 4/5
3. शि० पा० व० 4/6

नहीं बना रहा है उसके वास्तविक गुणों का वर्णन किया है। रैवतक के समीप जहाँ लोग बहुमूल्य बड़े–बड़े पत्थरों से युक्त ऊपर निकलती हुई प्रभाओं वाले अपरिमित रत्नों को उस प्रकार बार–बार प्राप्त करते थे, जैसे बहुमूल्य बडे–बडे पत्थरों से तौले गये ऊपर निकलती हुई प्रभाओं वाले अपरिमिति रत्नों को धनिक व्यापारी के यहॉ से लोग बार–बार प्राप्त करते हैं। समीपवर्ती तीक्ष्ण सन्तापवाले सूर्य को धारण करने वाले तथा कमलों के खजाना जिस के तटपर मकरन्द का सम्यक् पान किये हुए कमलों पर बैठकर उसे झुकाने वाले तथा मदोन्मत भ्रमर समूह खिन्न नहीं होते थे क्योंकि वे कमल परागों का पानकर मदोन्मत रहते थे।[1] जहाँ पर पर्वत से घिरा हुआ चट्टान, खिले हुए पुष्प रूप सहस्र नेत्रों वाले ऊपर में स्थित ऊँचे वृक्ष से इन्द्र जिस पर आरूढ है। ऐसे ऐरावत हाथी की शोभा को पाता था। सूर्य सारथी अरूण से परिवर्तित रंगवाले मरकत रत्नों से अपनी कान्ति हरीतिमा को पुनः प्राप्त कर लिये है।[2] जिसके पर ऊपर अतिशय नम्र होते हुए मेघों के द्वारा छोड़े जलप्रवाह से आर्द्र सर्पयुक्त वक्षों के विषाग्नि से उत्पन्न विपत्ति ने पीडित नहीं किया। जो रैवतक पर्वत सूर्य–किरणों के संसर्ग से अग्नि को उगलते हुए सूर्यकान्त मणियों से गुणों का संक्रमण, आधार के गुण के साहचर्य से अधिक उत्कर्ष को प्राप्त किया करता है।

अनेक बार देखे गये भी उस रैवतक पर्वत ने अपूर्व के समान श्रीकृष्ण भगवान् के आश्चर्य को बढ़ा दिया जो प्रतिक्षण नवीनताको धारण करता है वही रमणीयता का स्वरूप है। श्रीकृष्ण भगवान्का सारथि दारूक बोलने में चतुर उच्च स्वर से कूजते हुए पक्षि समूहों वाली तटियों को धारण करते हुए पर्वत को देखने

1. शि० पा० व० 4/10
2. शि० पा० व० 4/15

के लिए उत्कंठित ग्रीवा को ऊपर किये हुए श्रीकृष्ण भगवान् से यह कहने लगा। विशाल दिशाओं तथा आकाश को आच्छादित कर स्थित विस्तृत पृथ्वी में व्याप्त एवं ऊँचे तथा बडे शिखरों वाले शिखर से चमकते हुए चन्द्रप्रान्त वाले इस पर्वतराज रैवतक को पृथ्वी पर देखकर कौन आश्चर्य चकित नहीं होगा? लम्बी–लम्बी तथा ऊपर की ओर रस्सी के समान फैलती हुई किरणों वाले सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर यह पर्वत नीचे की ओर लटकती हुई दो घटाओं से शोभित गजराज[1] के समान शोभ रहा है।

शोभती हुई नवीन प्रभावाला जो सब तरफ दूर्वायुक्त स्वर्णमयी भूमिको धारण कर रहा है। वह यह पर्वत हरताल के समान पीले नवीन वस्त्र वाले आपके (कृष्ण) समान शोभायमान हो रहा है।

पाश्चात्यभागमिह सानुषु सनिषण्णाः

पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम्।

सम्पूर्णलब्धललनालपनोपमान–

मुत्संगसंगिहरिण्स्य मृगांकमूर्तेः।।[2]

शिखरों पर चढे हुए लोग कलंक रहित होने से सघन किरण समूहवाले अंगनाओं के मुख की उपमा को पूर्ण तथा प्राप्त किए हुए, मध्य में हरिण[2] को धारण किए हुए चन्द्रमा के पिछले भाग को देखते हैं। यह पर्वत अधिक ऊचा है। इस रैवतक पर्वत पर ऊँचे तटरहित भागों से चट्टानों के ऊपर गिरकर एवं कण–कण होकर ऊपर की ओर उछलते हुए जलप्रवाह कामपीडित देवांगनाओं के देहताप को शीतल कण, स्पर्श से उस प्रकार दूर करते हैं जिस प्रकार वानप्रस्थ

1. मेघदूतम् पृ० 80
2. शि० पा० व० 4/22
3. अ० शा० 4/12

के पालन में असमर्थ पुरूष ऊचे पर्वत भाग से चट्टानों के ऊपर गिरकर छिन्न–भिन्न शरीर वाला होकर स्वर्ग में जाता तथा कामपीडित देवांगनाओं के साथ सम्भोग कर उनके शरीर सन्ताप को शान्त करता है। वानप्रस्थ के पालने में असमर्थ या वानप्रस्थ में स्थिर असमर्थ पुरूष को पर्वत से गिरकर, अग्नि में जलकर या पानी में डूबकर मरने से आत्मघातजन्य दोष नहीं होता अपितु वह पुरूष स्वर्ग को प्राप्त करता है। ऐसा धर्मशास्त्रों का मत है। रैवतक पर्वत पर चातकों के दीनवचन को शान्तकरने वाले तथा बिजली से मनोहर सुवर्णो की तुलना करने वाले अर्थात् पीले–पीले सुवर्ण के समान चमकती हुई बिजली वाले मेघ[1] इन भू–भागों को आच्छादित कर रहे हैं।

सुन्दर सुवर्ण को चमकाने वाली ये सूर्य किरणे कहीं पर इन भूभागों को पिंगलवर्ण कर रहीं है। चन्द्रमण्डल रैवतक के शिखर से नीचे है। अत एव उसकी किरणें ऊपर की ओर फैलती हैं रैवतक के शिखरों को ऊपर की ओर इस प्रकार हस्तावलम्बन दे रही है। जैसे किसी बोझे को ढोने वाले व्यक्ति के मस्तक को कोई हाथ का सहारा देता है तथा वे शिखर नक्षत्र समूह को अपने ऊपर उठाये हुए हैं। ऐसे शिखरों से ऊपर उठाया गया तथा समान होने से झरनों का जल प्रतीत होने वाला मानों आकाश मण्डल ही इस रैवतक पर्वत के तटों के चारों ओर गिर रहा है। लोक में भी किसी बोझ को उठाने वाला मनुष्य दूसरे के हाथ का सहारा लेता है। इससे इस पर्वत की ऊचाई तथा विस्तार की अधिकता ध्वनित होती है।

1. मेघदूतम् 2/1

—: पर्वत पर नदियों का वर्णन :—

एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्नीरा नीलाश्मद्युतिर्भिदुराम्भसोऽपरत्र।

कालिन्दीजलनितश्रियः श्रयन्ते वेदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।।[1]

एक ओर स्फटिकमणि के किनारे की प्रभा से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की प्रभा से मिश्रित होने से नीले जलवाली नदियॉ, इस पर यमुना के जल से सुशोभित अर्थात् मिश्रित गगा की शोभा को धारण करती है। अर्थात् तीर्थराज प्रयाग में हुए गंगा–यमुना के समान शोभती है। सुमेरू के समान वप्रवाले इस पर मणिमय शिखरों के रंग इधर–उधर शोभ रहे हैं। और नये प्रेमवाले पति में अनुराग युक्त एवं देवांगनाओं के समान स्त्रियॉ भी इधर–उधर विलास कर रही हैं। इस पर सघन चूने के समान तथा सोने की रेखा से सुशोभित ऊँची चॉदी की दीवाल भस्म से श्वेतवर्ण शंकर जी के आग निकलते हुए नेत्र से सुन्दर ललाटकी शोभा को धारण कर रही है। यह अत्यन्त कठोर अत्यन्त उन्नत अत्यन्त नीचे लटकते हुए स्तनों, अत्यन्त ऊँचा एवं वीहड होने से सर्वदा जीवधारियों से अगम्य[1] अर्थात् कोई जीव वहॉ नहीं पहुॅच सकता हो ऐसे हांथियों ने जिनमें दाँतों से प्रहार किया है ऐसी तटियों को वृद्धा स्त्रियों के समान धारण कर रहा है।

आकाश स्पर्शी विकसित पुष्पोंवाले[2] चम्पकों के समान पिंगल शोभावाली स्वर्णमयी तटियों को धारण करते हुए सुमेरू[3] पर्वत के मध्यभाग की शोभा को प्राप्त इस रैवतक पर्वत से यह भारतवर्ष स्वर्ग के समान शोभता है। मनोहर अनेक वर्णो के रोमवाले घूमते हुए प्रियंक नामक मृगाविशेषों से जंगमता को प्राप्त, अर्थात्

1. रघुवंश पृ0 56
2. शि0 पा0 व0 4/30
3. मेघदूतम् 1/42

जंगम बने हुए अनेक रत्नमय अवयवों के समान यह सब ओर सुशोभित हो रहा है। इस पर्वत पर जलाशय में प्रविष्ट तीन वर्ष की अवस्था वाले हांथी के बच्चे खिले हुए कमलों में आनन्दपूर्वक रमण कर रहे हैं। तथा अव्यक्त मधुर एवं उद्दीपक स्वरवाले सिद्धगण[1] स्त्रियों के समीप में उच्च स्वर से गा रहे हैं दैव के नियम से रात्रि में सूर्य अन्धकार से आक्रान्त हो गया है। तथा फिर अन्धकार से छूटकर प्रभायुक्त होने की इच्छा करता है। तब तक उनकी पत्नी प्रभा को ये महाऔषधियां धारण कर रही हैं। जिस प्रकार व्यसन में पड़े हुए तथा फिर उससे छूटकर समय पर सम्भोग की इच्छा करते हुए किसी पुरूष की स्त्रियों की रक्षा कोई दूसरा करता रहता है और उसके लौटने पर उन्हें सुरक्षित रूप में उस व्यक्ति के लिए वापस कर देता है। वैसे ही ये महौषधियां कर रही हैं। रात्रि में महौषधियों के प्रचलित होने से उक्त कल्पना की गयी है। रैवतक पर्वत पर अमृतसंजीवनी आदि महौषधियॉ उत्पन्न होती हैं। रैवतक पर वनस्पति के स्कन्ध पर स्थित नवपल्लव रूप हाथ वाली तथा भ्रमर समूहों से आच्छादित तारकायुक्त पुष्परूप नेत्रों से युक्त लताएँ अंगनाओं के समान दृष्टिगोचर होती हैं।

कदम्ब पुष्पों से सुरभित इस पर पक्षिगण प्रत्येक क्षण अपने लयों के साथ कूज रहे हैं। तथा नये कदम्ब वनों को कम्पित करती हुई, तथा मेघ को बार–बार उडाती हुई हवा समीप में आ रही है।

यह रैवतक पर्वत श्रेष्ठ द्विज के समान भूगर्भविद्या के तत्पर विद्वानों के द्वारा किसी प्रकार बतलाए गए सुनकर भी चंचल बुद्धि पुरूषों को दुर्लभ, दरिद्रता[2] को दूर करने में समर्थ तथा जिसमें धन छिपा है ऐसे मन्त्र समूहों के समान निधियों को धारण करता है।

---

1. मेघदूतम् पृ0 80
2. मृच्छकटिकम् 1/20, 22

विम्बोष्ठं बहु मनुते तरंगवक्त्र

श्चुम्बन्तंमुखमिहकिंनरं प्रियायाः।

श्लिष्यन्तं मुहुरितरोऽपितांनिजस्त्री

मुत्तुंगस्तनभार भंगभीरूमध्याम्।। [1]

घोडे के समानमुख वाला किन्नर[2] प्रिया के मुख को चूमते हुए श्रेष्ठ मानता है तथा दूसरा किन्नर ऊँचे–ऊँचे स्तनों के भार से भययुक्त कटिवाली अर्थात् घटस्तनी एवं कृशकटिवाली अपनी स्त्री का आलिंगन करते हुए उसको श्रेष्ठ समझता है। सघन कीचकों के वन में उलझे हुए एक बाल के टूटने के भय से खिन्न चित्तवाली चमरी गायें मानों थोडी–सी हवा से पूर्ण उस के छिद्रसे निकलते हुए ध्वनि को सुनने से उत्पन्न आनन्द के कारण वहाँ से चलने का उत्साह नहीं करती है। वायु शीतल शिखरों पर बसने वाले अत्यन्त सज्जनों के हर्ष को उत्पन्न करता हुआ यह रैवतक पर्वत जल के बरस जाने से शुभ्र मेघ समूह रूप पर्दे को धारण कर रहा है।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय

क्लेशप्रहाण मिह लब्धसबीज योगाः।

ख्यातिं च सत्वपुरूषान्यतयाधिगम्य

वांछन्ति तामपि समाधिमृतोनि रोद्धुम्।। [3]

रैवतक पर्वत पर समाधि धारण करने वाले मैत्री आदि चित्त–वृत्तियों को जानकर तथा क्लेशों को नष्ट कर सबीजयोग को प्राप्त किए प्रकृति तथा पुरुष[4]

---

1. शि0 पा0 व0 4/38
2. कदम्बरी पृ0 25
3. शि0 पा0 व0 4/55
4. साख्यकारिका– 11

में परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्त कर अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष भिन्न हैं, यह जानकर उसे भी रोकने के लिए स्वयं प्रकाश भाव से स्थित होने के लिए इच्छा करते हैं। मरकत मणि की भूमियों पर पेडों की डालियों के मध्य से गिरने वाली तथा जिनमें महीन धूलिकण चमक रहे है। ऐसी सूर्य किरणें नीचे की ओर झुकी हुई मयूर की गर्दन की शोभा को धारण कर रही हैं। अत्यन्त श्यामवर्ण वाली तथा चन्चल जो अव्याप्त मधुर वीणातन्त्री[1] के ध्वनि को धारण करती है। समीप में गान करती हुई उस भ्रमर श्रेणि से सुखपूर्वक नम्र करने योग्य कौन स्त्री पति को प्रणाम नहीं करती है? अर्थात् अवश्य प्रणाम करती है।

—: रैवतक की शोभा :—

सायं शशांककिरणाहतचन्द्रकान्त—

निस्यन्दिनीरनिकरेण कृताभिषेकाः।

अर्कोपलोल्लसितवहि भिरहि तप्ता—

स्तीव्रंमहाव्रतमिवात्रचरन्ति वप्राः।। [2]

रात्रि में चन्द्र किरणों के स्पष्ट चन्द्रकान्त मणि से बहने वाले जल प्रवाह से स्नान किए हुए तथा दिन में सूर्यकान्तमणि[3] से निकली हुई अग्नि से सन्तप्त तटभाग मानो महाव्रत कर रहे है। इस पर हांथी के हर्षित तीन वर्ष के बच्चे प्रत्येक दिशाओं में भागकर शब्द कर रहे हैं। वन के समीप में चमरी गायों का झुण्ड तथा सुवर्णमयी एवं रत्नमयी भूमि की किरणें स्फुरित हो रही हैं।

1. नैषधीयचरितम पृ0 20
2. शि0 पा0 व0 4/58
3. नीतिशतकम् श्लो0 30

प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि

सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते।

सर्वर्तुनिर्वृतिकरेनिवसन्नुपैति

न द्वन्द्वदुखमिह किंचदकिंचनोऽपि। [1]

ईश्वर भी मोटे गजचर्म को पहने तथा ओढे हुए बर्फ से ठण्डे कैलासपर सोते हैं किन्तु सब ऋतुओं में सुख देनेवाले इस पर निवास करता हुआ दरिद्र कुछ भी द्वन्द्वदुःख को नहीं पाता है।

नवनगवनलेखाश्याममध्याभिराभिः–

स्फटिककटकभूमिर्नायत्येष शैलः।

अहिपरिकरभाजो भास्मनैरंगरागै–

रधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम्।। [2]

यह नयी वृक्षों के वनों के श्रेणियों से अन्धकारयुक्त मध्यभाग वाली स्फटिकमय मध्य भाग की भूमियों से वासुकिरूपी परिकर को धारण किये हुए तथा भस्ममय अंगलेप से शुभ्रवर्ण शिवजी की शोभा का अनुकरण कर रहा है। विकसित कमलों वाले जल है जिनमें ऐसे तटद्वय को दोनों भाग में धारण करते हुए नदी से दिन के श्रम को दूर किए हुए तथा सुवर्ण भूषणों से अलंकृत यादव लोग स्वादिष्ट गन्ने के रस से बने हुए मधु को पीकर रति के लिए एकान्त में प्रियतमा के शरीर से वस्त्र को हटा रहे है।[3] सूर्य दर्पण के समान स्वच्छ सामने रजतमयी दीवारों पर गिरी हुई घने अन्धकार को दूर करने वाली किरण के सुवर्णमयी गुफाओं में

1- शि० पा० व० 4/64
2- शि० पा० व० 4/65
3- मेघदूतम् 1/45

बार–बार प्रतिफलित होते रहने पर पतियों से वस्त्र हीन कीगयी तरूणियों को स्वयं सम्मुख नहीं होता हुआ भी अर्थात् परोक्ष में रहता हुआ भी लज्जित करता है।

अनुकृतशिखरौघश्रीभिरभ्यागतेऽसौ

त्वयिसरभयमभ्युतिष्ठतीवाग्निरूच्चैः।

द्रुतमरूपनुन्नैरून्नमद्‌भिः सहेलं

हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहैः।। [1]

यह ऊँचा पर्वत आपके आने पर शिखर समूह के समान शोभित तीव्र वायु से प्रेरित अनायास ऊपर की ओर उठते हुए तथा श्री बलरामजी के धौतवस्त्र के समान श्यामवर्णवाले मेघो से मानों वेगपूर्वक अभ्युत्थान कर रहा है।

–: सूर्यास्त की साम्यता :–

वीक्ष्य रन्तुमनसः सुरनारीरान्तचित्रपरिधान विभूषाः।

तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्तं भानुमानुपपयोधि ललम्बे।। [3]

भगवान अंशुमाली ने देखा–जलक्रीडा करके सुरनारियाँ अनेक तरह के चित्र विचित्र वस्त्राभूषणों को धारण कर रमणाभिलाषिणी हैं। अतः मानों उनके अभिलषित मनोरथ सिद्ध में अवसर प्रदानार्थ अस्त होने के लिए पश्चिम समुद्र की ओर खिसकने लगे।

हारावली के मध्यमणि के सदृश किरण शोभी भगवान् भास्कर के एक दिशा के परित्याग कर देने पर गौर बाला ने मध्यान्ह का अतिक्रमण करने से गमनशीला दिनश्री को हारावली की तरह धारण किया। (किरातार्जुनीयम्)

1. शि० पा० व० 4/68
2. किरा० 9/1

महाकवि माघ ने भी सूर्यास्त का वर्णन किया है जो निम्न श्लोक से प्राप्त होता है।

अभिताप संपदमथोष्णरूचिर्निजितेजसामसहमान इव।

पयसि प्रपित्सुरपराम्बुनिधेरधिरोढुमस्तगिरिमभ्यपतत्।।[1]

अपने तेज समूह के सन्ताप को नहीं सहन करने के कारण भगवान भास्कर पश्चिम दिशा की ओर दौड पडे। अर्थात् अस्त होने की तैयारी कर रहे हैं। मरीचिका माली ने अत्यन्त तृषार्त होकर अपने किरणरूप अंजलियों से कमलों के मकरंद रूप मधु को खूब छक कर मत्त हुए की भांति पृथ्वी पर लुढते हुए अरूण वर्ण का शरीर धारण किया है। जब सहस्रांशु लोहितवर्ण होकर नेत्रों के लिए अवलोकनीय हो गया तब सन्ताप ने पृथ्वी को छोडकर चक्रवाक पक्षियों के हृदय में समावेश किया। तात्पर्य यह कि दिन भर तो सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी को तपाता रहा अब चक्रवाको के हृदय को विदग्ध करेगा, क्योकि सुना जाता हैं कि चक्रवाक पक्षी रात्रि के समय अपने प्रिय से अलग हो जाते हैं।[2] जिस तरह आश्रित व्यक्ति अपने आश्रय का परित्याग कर देता है।[3] उसका गौरव न्यून हो जाता है। और खिन्न होकर किसी नीच स्थान में पहुँच कर मलिन और उदास रहता है। उसी तरह सूर्य बिम्ब के अर्द्धभाग के अस्त हो जाने पर सूर्य का किरण–पुंज जो सूर्य का आश्रय परित्याग करने के कारण लघु हो जाता है। तथा दिशा का परित्याग कर चुका है। पश्चिम दिशा में संहत होकर निष्प्रभ हो रहा है। सूर्य अपने अत्यन्त पिंगल करों से अस्ताचल के शिखरों के वृक्षों का सहारा लेकर उस पहाड के घने जगल में प्रविष्ट हो गया अथवा पृथ्वी में धंश गया अथवा समुद्र में डूब गया क्या? ऐसा प्रतीत होता है।

---

1. शि0 पा0 व0 9/1
2. नीतिशतकम पृ0 63
3. अ0 शा0 4/16

सायंकाल की ठण्डी हवा मानों लोगों को शीत का अनुभव करा रही है आकाश में पश्चिम दिशा की ओर लालिमा छा रही है। और सूर्य की किरणे धीरे–धीरे तिरोभावित होती जा रही हैं। पक्षी गण आकाश मार्ग से अपने–अपने स्थान को वापस हो रहे हैं।[1] मनुष्य अपने–अपने कार्य से निवृत्त होकर घर को वापस आ रहे है। सूर्य का गमन और मानव का अपने–अपने स्थान अथवा घर को आगमन एक प्रकृतिसंयोगहै। उधर सूर्य का गमन हो रहा है तो चन्द्रमा और तारों का आगमन हो रहा है। एक ताप प्रदान करता है तो दूसरा शीलता प्रदान कर करता है एक कष्ट प्रदान करता है तो दूसरा सुख प्रदान करता है। इस प्रकार दोनो का विरल मिलन भी है।

महाकवि भारविने चन्द्रोदय का बहुत सुन्दर वर्णन किया है।:–

व्यानशे शशधरेण विमुक्तः केतकीकुसुमकेसरपाण्डुः।

चूर्णमुष्टिरिव लम्भितकान्तिवासवस्य दिशमंशुसमूहः।। [2]

चन्द्रमा ने केतकी पुष्प के पराग के सदृश पाण्डरवर्ण की किरणों को हांथ में लेकर कपूर के चूर्ण की तरह उडा दिया। उससे प्रकाश आ गया। उन किरणों का समूह इन्द्र की दिशा के व्याप्त कर दिया।

इधर महाकवि माघ ने सुन्दर चन्द्रोदय का वर्णन किया है अन्धकार को नष्ट करते हुए चन्द्रमा अपने पूर्णरूप को विकसित करता हुआ उदयाचल की ओर अग्रसर हो रहा है। महाकवि भारवि ने अपने ग्रन्थ में शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा का वर्णन किया है तो माघ ने भी उन्ही का अनुसरणकर प्राकृतिक चित्रणों का अनुसरण किया है।

---

1. मेघदूतम 1/10
2. किरा0 9/17

प्राची दिशा में चन्द्रमा को समीप आते हुए देख अन्धकार को दूर भगा कर निर्मलता रूप गुण से युक्त तथा हास के समान किरणों से विशद मुख धारण किया हिमांशु को जिसका मण्डल उदयाचल की ओर में था। तुषार के सदृश शुभ्र किरणों का पुंज नीलकमल सदृश नीलनभ में प्रसरण करता हुआ इस प्रकार शोभित हुआ कि जिस प्रकार समुद्र में गिरता हुआ गंगा (जान्हवी) का जल विशोभित होता है।

महाकवि माघ ने कहा है कि विकसित श्वेतकमल के समान शुभ्रकान्तिवाला चन्द्रमा मानों पहले ही जगी हुई, नदी के स्वामी की कन्या[1] अर्थात् लक्ष्मी के मुखचन्द्र के समान कैटभासुरविजेता की शय्या से ऊपर उठा है।

भारवि और माघ ने प्रियांगनाओं का सुन्दर वर्णन किया है कि प्रियांगनायें रात्रि में अपने प्रमियों के चुम्बन लेते हुए मदिरा पान के नशे में संलिप्त थीं। वे अपने प्रेमियों को किसी तरह से हिलने तक नही देती थी। रमणियॉ अपने–अपने पति के वक्षस्थल पर लेटी हुई थीं और रोमांच हो जाने पर नये सम्पर्क से उत्पन्न श्रमकण धारण करती थी जिससे उनके मण्डल की सामग्री मिट गई किन्तु वहीं उनकी शोभा हो गई। मधु पान करने से वे अप्सरायें मतवाली हो गई थीं और अपने प्रेमियों के पास स्वयं पहुँच गई थीं। उनमें उनके मान को शीघ्र ही भंग करते हुए तथा उनकी लज्जा को भी दूर करते हुए कामदेव और मद दोनो लक्षित होने लगे। दोनों महाकाव्यों के प्राकृतिक चित्रणों में समता किस प्रकार है इस विषय में यथा ज्ञान के अनुसार विचार प्रस्तुत किया गया है।

* * * * *

अ
ध्या
य
छः
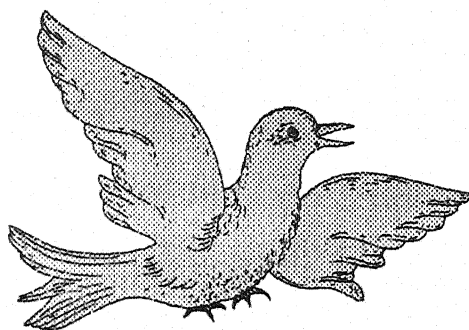
दोनों महाकाव्यों के प्राकृतिक चित्रणों में वैषम्य

महाकवि भारवि ने अपने ग्रंथकिरातार्जुनीयम् में ऋतुओं के वर्णन के प्रसंग में सिर्फ शरद्ऋतु का वर्णन किया है।[1] वहीं पर महाकवि माघ ने शिशुपाल वध में छः ऋतुओं का वर्णन क्रमशः किया है।

भारवि ने सुन्दर ऋतु का वर्णन निम्नलिखित पद्य में किया है।

विनम्रशालिप्रसवौघशालिनीरपेतपंका ससरोरूहाम्भसः।

ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थलोरूपायनीभूतशरद्गुणाश्रियः।।[2]

गांवो की सीमाओं के समीप झुके हुए धान की बालों से शोभित कीचड से रहित, स्वच्छ, खिले कमलों से पूर्ण जल वाले भूमि खण्डों को देखकर अर्जुन बहुत खुश हुआ। इस प्रकार शरद् ऋतु का सुन्दर वर्णन किया है।

उधर शिशुपालवध में महाकवि माघ ने एक ऋतु का वर्णन न कर छः ऋतुओं का वर्णन कर विषमता दिखलाई है शिशुपाल वध में छः ऋतुयें एक साथ प्रकट होती है। क्रम से उनका कवि वर्णन करते है।

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागमतपंकजम्।

मृदुलतान्तलतान्तभलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनो हरैः।।[3]

बसन्त ऋतु में पुराने पत्ते झडजाने के बाद नवीन पत्तों का आगमन होता है। इस प्रकार सुशोभित कमलों से युक्त खिले हुये कमल के पुष्पों से सुशोभित नवीन पुष्पोंवाले तथा पुष्पसमूहों से सुरभित बसन्त का आगमन हुआ ।

महाकवि भारवि ने शरद् ऋतु के प्रत्येक अंग प्रत्यंग का वर्णन किया है। उसके अन्दर धान एवं उसकी बालों और वर्षा को महत्वपूर्ण है वहीं पर महाकवि माघ ने एक ही सर्ग के अन्तरगत सभी ऋतुओं को समाहितकर उसके मुख्य

---

1. शि० पा० व० 1/66
2. किरा० 4/2
3. शि० पा० व० 6/2

अंगों को ही प्रकट किया है। इस तरह ग्रीष्म ऋतु का महाकवि माघ ने वर्णन निम्नश्लोक से किया है।

दलितकोमलपाटलकुंगमले निजवधूश्वसितानुविधायिनि।

मरुति वाति विलासिभिरुन्मदभ्रमदलौ मदलौल्यमुपाददे।।[1]

कोमल अंगनाओं को विकसित करने वाली अपने अंगों के निःश्वास के सदृश जिसके भ्रमर भ्रमण कर रहे हैं। इस प्रकार की ग्रीष्म ऋतु का आगमन हो रहा है।

महाकवि भारवि धानों के खेतों में प्राकृतिक सुन्दर चित्रण करते हुए कहते है कि–

तुतोष पश्यन्कलमस्य सोऽधिकं सवारिजे वारिणिरामणीयकम्।

सुदुर्लभे नार्हति कोऽभिनन्दितुं प्रकर्षलक्ष्मीमनुरूपसंगमें।।[2]

अर्थात् धानों के खेत पानी से लबालब भरे हैं निरन्तर पानी रहने से उनमें बीच–बीच में कमल भी खिल गये हैं। कमल तालाब में होते हैं। इन पदार्थो के संयोग से उक्त खेतों की जो विलक्षण शोभा हो रही है उसकी कोई भी प्रशंसा किये बिना न रहेगा।

महाकवि ने शरदऋतु के बारे में कहा है कि पानी में इतना केसर झड रहा था कि पानी भूमिसा और उसमें खिले गुलाब जैसे लगे रहे थे, जब पाठीन नामक महामत्स्य इधर–उधर घूमता था तब पानी स्पष्ट दीखने पर अर्जुन का भ्रम दूर होता था।[3] वर्षा के पानी स्पष्ट दीखने पर अर्जुन का भ्रम दूर होता था। वर्षा के पानी का वेग ज्यों–ज्यों कम होता जा रहा था त्यो–त्यो बालू में लहरों के चिन्ह स्पष्ट दीख रहे थे जिनसे स्वच्छ बालू[4] लहरीले रेशम के वस्त्र जैसा चमक रहा था। धानोंकी रखववाली करती हुई कृषकांगनाओं के माथेपर केतकीके लसीले पराग से चिपकाया हुआ दुपहरियाका फूल होंठो में लगी लिपिस्टिक की लाली से समानता कर रहा था।

1. शि0 पा0 व0 6/23
2. किरा0 4/4
3. किरा0 4/7
4. नीतिशतकम् पृ0 7, श्लो0 5

उनके स्तनों पर लगे लाल–लाल कमल परागपर पसीने की बूँदे बडी अच्छी लगरहीं थीं। उनके कानों में खोंसे हुए उत्पल, नेत्रों की कान्ति से दुगुने शोभा पा रहे थे और उनकी इस शोभा से अर्जुन ने शरद ऋतु को कृतार्थ समझा। रात के पिछले पहर से बछडों से बिछुडी हुई अतः उनसे मिलने को उत्कंठित होने पर भी बडे–बडे ऊधसों के भार से दौड न सकती हुई गायों के झुण्ड अर्जुन को अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उन गायों के बीच रंभाता हुअ सांड साक्षात् दैत्य की मूर्तिसा लग रहा था। नदियों के किनारो से ज्यों–ज्यों गायों के झुण्ड खिसक रहे थे, ऐसा लगता था मानो किसी नायिका की कमर से वस्त्र सरक रहा हो।[1] इसके बाद अर्जुन ने उन ग्वालों को देखा जो निरन्तर पशुओं के साथ रहने से सीधे–सादे पशु जैसे ही स्वभाव के हो गये है। फिर दही मथती हुई ग्वालिनों को जो कि नाचती हुई नरतकियों जैसी लग रहीं थी अर्जुन देखता ही रह गया।

इसके बाद वह उन मार्गो से चलने लगा जो वर्षाकालीन टेढापन कर सीधे हो गये थे, जिनके आस–पास के धान बैल चर गये थे। और जिनपर गाडियों के पहियों के निशान बन गये थे। वह जिनसे होकर जा रहा था वे गांव प्रत्येक घरों में खिले फूलोवाले लताकुंज और भोले–भाले ग्रामीणों से अधिष्ठित हुए आश्रमों जैसे लगते थे।

अर्जुन से यक्ष ने कहा[2] हे पार्थ! मंगलमय भाग्य के फलदान का काल यह शरद् जो कि निर्मल जल तथा स्वच्छ बादलोंवाली है। तुम्हे भी विजयश्री प्रदान करे। यद्यपि इस ऋतु में न तो वकपंक्तियाँ आकाश में उडती हैं। न इन्द्रधनुष ही दीखता है। फिर भी आकाश सुन्दर लग रहा है। जैसे पति के विरह में स्त्रियॉ कश हो जाती है। वैसे ही वर्षा रूप पति के विरह में दिशाएं जैसे कृश हो गई है। किन्तु यह कृशिमा भी सुन्दर नहीं लग रही है ऐसी बात नहीं भौरों की ध्वनि

1. मेघदूतम् 1/45
2. मेघदूतम् पृ0 18

अब कानों को अच्छी नहीं लगती प्रत्युत हंसों का कलरव अच्छा लगने लगा है। पके धानों के गुच्छे जो नीचे को झुक रहे हैं।

कमलिनी का हरा रंग फूलों के लाल रंग तथा धान के पौधों के पीले रंग की छाया पडने से जल में इन्द्रधनुष सा प्रतीत हो रहा है। ये बकपंक्तियाँ उडती हुई छितौनकी सफेद धूल से हंसती हुई सी तथा कटसरैया के नीले फूलो से आंखवाली सी लग रही है। आकाशमार्ग बादलों द्वारा सूर्य के ढक जाने से शीतल, साधारण जलकणों से युक्त होने से मन्द तथा कमलों की गन्ध से सुगन्धित वायु से शुभ तथा बिजली की चकाचौध से रहित है। दौडते हुए हंसों के कलरव से ऐसा प्रतीत होता है जैसे बादलों के पंजे से छूटी हुई।

दिशाएं आपस में बात कर रही हों। ये गायें[1] अपने–अपने कोठो में जाने के लिये झुण्डों से अलग हो रही हैं। स्तनों से झरता हुआ दूध ही जैसे वे अपने बछडों के लिए उपहार लाई हैं। संसार की रक्षा करने में समर्थ और पवित्र इन गायों के झुण्ड कोठों में अपने बछडों से ऐसे मिल रहे हैं, जैसे ऋगादि मंत्र आहुतियों[2] से मिल रहे हों। इन गोपाललनाओं के मधुर गीतो में आसक्त हुई हरिणियां भूख प्यास सब भूलगई हैं। मकलिनी से तिरस्कृत हुआ शालिधान ऐसे सूखकर पीला पडता जा रहा है जैसे किसी कामिनी से फटकारा हुआ कामी। ये कमल–पराग तथा जल कणों से युक्त भौंरे, शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन से आकृष्ट हुए, रक्षा के लिये कहाॅ जायें यह निश्चय नहीं कर पा रहे हैं। ये हरे–हरे तोते अपनी लाल–लाल चोचों से पीले धान की बालियों को लिये हुए इन्द्रधनुष जैसे लगते हैं। इस प्रकार से शरद्ऋतु का वर्णन महाकवि भारवि ने अपने ग्रंथ में किया है।

महाकवि भारवि ने अपने ग्रंथ में अर्थ पर प्रधानता प्रकट की है वही महाकवि माध ने एक ऋतु को प्रधानन मानकर सभी ऋतुओं को यथोचित स्थान

---

1. रघुबंस 2/1
2. वै0 सा0 का इति0 पृ0 15

प्रकट कर उनका तत्व प्रकटकर समाज को नई दिशा देने का प्रयास किया है। भारवि ने शरद् ऋतु में होने वाले सभी कार्यो पर प्रकाश डाला है। लेकिन कवि माघ ने तो हंसों,[1] मोरों[2] इत्यादि पक्षियों की ध्वनि और उसकी सुन्दरता का बहुत कम शब्दों में बखान किया है।

—: हिमालय पर्वत और रैवतक पर्वत में विषमता :—

महाकवि भारवि ने अपने ग्रंथ मे हिमालय पर्वत का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। अर्जुन हिमालय पर्वत पर चढनेलगा जो सुमेरू को जीतने की इच्छा से या दशो दिशाओं[3] के छोरों को एक साथ देखने की इच्छा से आगे बढा रहा हो। जो एक ओर सूर्य के प्रकाश और दूसरी ओर निरन्तर अन्धकार से हसते हुए और गजचर्म ओढें हुए शिवजी सा लग रहा था।[4] जिसमें भू—भूवः स्र्गलोको के जीव रहते थे किन्तु अत्यन्त ऊँचाई के कारण स्पष्ट दीखते नहीं थे। मानों अपनी व्यापकता को विख्यात करने के लिए शिवजी ने उसे संसार का प्रतिनिधि बना दिया हो। शेषराज जैसे सफेद, गगनचुम्बी और सोने की रेखाओं से युक्त जिसके शिखर बिजली की चमकवाले शरद के बादलों से लगते थे। जो मणिकिरणों से चमकती हुई देवागनाओं से उपभुक्त झाडियोंवाली ऊँची—ऊँची चट्टानों के द्वारवाली भूमि को धारण किये था और आकाश में लगे बादल मध्यभाग में होने से उसके पंख जैसे लगते थे। अत्यन्त वेगवती नदियॉ जिसमें बहती थीं। अढउल के फूल जैसे पद्यराग की किरणें जिसके सुनहरे शिखरों पर टकराकर सन्ध्याकाल का दृष्य उपस्थित करती थी। जो खिले हुए विशाल कदम्बो से युक्त गुथी हुई तमालकी झाडियों से व्याप्त छोटी हिमकाणों की फुहार छोडते हुए तथा मदजल बरसाते हाथियों से पूर्ण था। जिसका कोई शिखर ऐसा न था जिसमें रत्नों की

1. मेघदूतम् 1/11
2. मेघदूतम् 2/19
3. मेघदूतम् पृ0 38
4. शि0 पा0 व0 पृ0 11

खान न हो, जिस पर लताए न हों, कोई नदी ऐसी न थी जिसमें तट न हो और कमल[1] न खिले हो तथा कोई वृक्ष ऐसा न था जो फूला न हो। स्वर्ग की सुन्दरियॉ जिसकी नदियों में नहाने आती थी और पाताल से सर्प, फूलों के केशर की गन्ध लेने अनेक रंगोंवाले रत्नों की किरणें परस्पर मिलकर जिसमें इन्द्रधनुष[2] का दृश्य उपस्थित किये देते हैं। जो पवित्र मानसरोवर[3] को और भगवती पार्वती सहित शंकर जी को अपने–अपने में धारण करता है। जिसमें निरन्तर चमकती हुई औषधियाँ आकाश के विमानों को रास्ता दिखाती हैं। तथा नित्य त्रिपुरदाह की याद दिलाती हैं। अपने सफेद जलकणों से चवर डुलाती हुई गंगा जिस पर बहती है। यह हिमालय जैसे ऊँचे शिखरों से आकाश को हजारों भागों में बाट देता है। ऐसे ही दर्शन मात्र से लोगों के पाससमूह को भी नष्ट–भ्रष्ट कर देता है। इसके मध्य भाग का अनुमान केवल ऊँचे वृक्षो से होता है। यह परम पुरूष[4] की भांति आगमवेध है और इसकी वास्तविकता को केवल ब्रहमाजी ही जान सकते है। इसके सुन्दर पल्लवों वाले लतागृह गम्भीर प्रकृतिवाली रमणियों के चित्त में भी उत्सुकता जागृत करते हैं। बहुमूल्य रत्नों का निधि होने से यह स्वर्ग और पाताल की अपेक्षा पृथ्वी के महान् ऐश्वर्य को प्रकट करता है। पार्वती का पिता होने से तथा जिनके विभवका पता ही नहीं ऐसे शिव की वासभूमि होने से इसकी समता त्रिभुवन भी नहीं कर सकता। यह मुमुझुओं के लिए जन्म–मरण का नाशक धर्म क्षेत्र तथा मुक्ति क्षेत्र है। स्वर्ग की स्त्रियों द्वारा विविध सुरतक्रीडायें इसकी शिला शय्याओं पर की जाती है। निरन्तर चमकती हुई औषधियाँ[5] इसके तेज को व्यक्त करती हैं। खिले हुए आम के बौर की सी गन्धवाला हाथियों का मद यहाँ सदा कोयलों को उन्र्मत बनाये रहता है। इसकी नदियों में सदा अमृत बहता है।

---

1. उ0रा0च0 4/3
2. मेघदूतम् 2/1
3. मेघदूतम् पृ0 40
4. सा0का0–11
5. नीतिषतकम् पृ0 141

वनों में फैली हुई सुनहरी कान्ति को लम्बी चादर की तरह फैलता हुआ, अनेक स्वर्णमय गुफाओं से युक्त तुम्हारे पिता का प्यार यह इन्द्रनील पर्वत है। इसकी सुनहरी तट भूमियोंकी किरणों वायु से हिलाई गई लताओं के बीच से बिजली सी चमकती हैं।

इसके चन्दनद्रुमों में लपटे हुए सर्प ऐरावत के खुजलाने पर भाग जाते हैं तो उनसे बने हुए चिन्हों से इस पर ऐरावत के देह का अनुमान होता है। इस पर प्रखर सूर्य की किरणों को भी मरकत मणियोंकी कान्तियॉ वर्षाकाल के मेघों जैसा श्यामल बना देती हैं।

महाकवि भारवि ने पर्वतराज हिमालय का वर्णन बहुत ही मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है जहॉ पर भगवान शंकर स्वयं वास करते है जो तीनों लोकों के पालनकर्ता एवं संहारकर्ता है। दुसरी तरफ महाकवि माघ ने शिशुपालवधम में रैवतक नामक पर्वत का वर्णन किया है जो कि उसके नाम से ही प्रतीत होता है कि कहॉ राजा और कहाँ एक प्रजा? यहाँ पर ये ही विषममा प्रतीत होती है।

–: माघ द्वारा रैवतक का वर्णन :–

बडी–बडी चट्टानों के ऊपर उठते हुए बादलों से सूर्य मार्ग को पुनः रोकने के लिए उद्यत विन्ध्यपर्वत[1] के समान प्रतीयमान रैवतक को देखा। भगवान को उत्कंठित देख उनका सारथि दारूक उस रैवतक पर्वत का वर्णन करने लगा। उसने कहा–सूर्य के उदय तथा चन्द्रमा के अस्त होते रहने पर दोनो पाश्वों में लटकते हुए दो घण्टाओं वाले हाथी के समान[2] यह पर्वत शोभता है। स्वर्णमयी भूमिवाला यह रैवतक पर्वत ऊँचे शिखरों से गिरते हुए झरनों के ऊपर उछले हुए जल बिन्दुओं से स्वर्गीय देवांगनाओं का शरीर शीतल करता है। पानी में एक ओर स्फटिक[3] तथा दुसरी ओर नीलमणि की कान्ति से गंगायमुना के संगम के समान

1. मेघदूतम् पृ0 49
2. सं0सा0 का इति0 पृ0 203
3. कादम्बरी पृ0 17

इसका जलाशय शोभता है। एक ओर सुवर्णमयी तथा दूसरी ओर रजतमयी दीवाल से यह पर्वत भस्मोधूलित एवं नेत्र से अग्निकंण निकलते हुए शिवजी के समान प्रतीत होता है। विकसित चम्पक से पिंगलवर्ण, कनकमयी दीवालो से सुमेरूतुल्य

इस पर्वत द्वारा भारतवर्ष इलावृत के समान शोभता है। यहाँ कम्बल मृग विचरते है, स्त्रीसहित सिद्धगण विहार करते है। रात्रि में औषधियाँ चमकती हैं पुरूिति कदम्ब को कम्पित करती हुई वायु बहती है। यहॉ दारिद्रयनाशक रत्नों की खानें हैं तथा यह किन्नरों की बिहार स्थली है। अनेक प्रकार से भोग भूमि होता हुआ भी यह पर्वत सिद्धभूमि भी है। क्योकि यहॉ पर मैत्री आदि चारों वृत्तियों के ज्ञाता, अविधा आदि पॉच क्लेशों का त्याग कर साबीज योग की प्राप्त किये हुए प्रकृति–पुरूष की[1] भिन्नता से हुए बहुत से सिद्धपुरूष निवास करते है। इस प्रकार परम श्रेष्ठ यह रैवतक पर्वत ऊपर उठते हुए श्यामजल मेघों से मानो कमलोवाले जल है जिनमें ऐसे तटद्वय को दोनों भाग में सुवर्ण भूषणों से अलंकृत यादव लोग स्वादिष्ट, गन्ने के रससे बने हुए माद्य को पीकर रति के लिए एकान्त में प्रियतमा के शरीर से वस्त्र को हटा रहे हैं।

—: महाकवि माघ के द्वारा समुद्र का वर्णन :—

समुद्र का वर्णन निम्नलिखित श्लोकों के माध्यम से किया है—

पारेजलं नीरनिधेरपश्यन्मुरारिरानील पलाशराशीः।

बनावलीरूत्कलिकासहस्रप्रतिक्षणोत्कूलितशैव लाभाः ।। [2]

श्री कृष्ण भगवान् ने समुद्र के जल के पार से अत्यन्त श्यामवर्ण पत्तों के समूह वाले सहस्रों तरगों से प्रतिक्षण किनारे ढेर किये गये शैवाल के समान शोभायमान वन पक्तियों को देखा। श्री कृष्ण ने समुद्र तट पर लक्ष्मी युक्त, नील मेघ के समान कान्ति वाले लतारूपिणी स्त्रियों से संयुक्त वृक्षों को अनेक रूप

---

1. सा0 का0 पृ0 25
2. शि0 पा0 व0 3/70

ग्रहण किये हुए उच्च ध्वनि करते हुए चन्चल बाहु के समान विशाल तरगों वाले फेनयुक्त नदीपति समुद्र को मिर्गी का रोगी समझा। समुद्र अत्यन्त लोभसे चन्द्रकिरणों को अधिक मात्रा में पीकर बढे हुए भी अपने में वहीं समाती हुई चन्द्र किरणों के समान तटपर पडे हुए मोतियों को माना। दर्प के साथ सदा गरजते हुए मेघ जिनसे पृथ्वी को प्लावित कर देंगे। उन जलों को समुद्र के एक भाग से निश्चलता पूर्वक पीते हुए मेघो को उन्हीं ने देखा मुनिराजों ने वेदार्थ को लेकर स्मृतियों की रचना की है और वे स्मृतियॉ वेदोके ही अर्न्तगत होती हैं, उसी प्रकार मेघ ने समुद्र से जल को लेकर और उसे वरसा कर नदियों का निर्माण किया है तथा पुनः वे नदियॉ कही से भी घूम–फिरकर समुद्र में ही प्रविष्ट होती है समुद्र में गिरती हुई उन नदियों को श्री कृष्ण भगवान् ने देखा।

विभिन्न दिशाओं में होने वाले बहुत से रत्नों को बेचकर अधिक लाभ किए हुए तथा वहॉ होनें वाले बहुमूल्य पदार्थो को समुद्रगामी नावों में रखते हुए समुद्र द्वीप वासी व्यापारियों में श्री कृष्ण भगवान् ने अभिनन्दन किया। समुद्र के जल के भीतर रहने वाले बडे–बडे सॉप उछलना चाहते थे अत एव जब उन्होने दीर्घश्वास लिया फुफकारा तब समुद्र का जल ऊपर की ओर फौब्बारे के समान उछल पडा उस पर कवि ने कल्पना की है कि सर्पराजों ने श्रीकृष्ण भगवान पर भक्ति होने के कारण अनके आने पर पताकाओं को ऊपर उठाया है। प्रलयकाल के बान्धव तथा उत्संग रूपी शय्यापर सोने वाले आये हुए उन्हें देखकर समुद्र अतिशय हर्ष से तरंगरूपी बाहुओं को फैलाकर प्रत्युप्तामन किया। अपने मध्य में जलकंण को ग्रहण किया हुआ तथा छोटी इलायची की लता को कम्पित करने से गन्धयुक्त वायु तीरपर चलते हुए उन के घोडे से पसीनों को प्रतिक्षण दूर करता था लवंगमाला से शिरोभूषण बनाए नारियल के भीतर के पानी के पीते हुए तथा कच्ची सुपारीको चखे हुए सैनिक समुद्र से अतिथसत्कार को प्राप्त किए।

तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरंगजन्मनः

प्रमथितभूभ्रतः प्रतिपथं मथितरय भ्रशंमहीभृता।

परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सतत धृतश्रिय-

श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदनंतमहत्।। [1]

सब तरफ सैकडों घोडो से व्याप्त प्रत्येक मार्ग में भूभृत का मथन करने वाली और सर्वदा श्री से युक्त सर्वतो गामिनी श्रीकृष्ण भगवान् की सेना में तथा केवल एक घोडा ऊचश्रवा को उत्पन्न करने वाले भूभृत से स्वयं मथे गए और बहुत समय से श्री रहित चंचल समुद्र में बड़ा भारी अन्तर था।

—: महाकवि माघ द्वारा सूर्यास्त का वर्णन :—

अपने तेज समूह के अतिशय तीव्र सन्ताप को सहन नहीं करते हुए सूर्य पश्चिम समुद्र के जल में गिरने के इच्छुक होकर अस्ताचल पर चढने के लिए दौड पडे। जैसे रति केलिए अत्यन्त उत्कंठित कोई रमणी खिड़की की ओर गयी हुई दृष्टि से अर्थात् खिडकी की ओर नेत्र लगाकर अस्ताचल के तथा सूर्य और अस्ताचल के बीच में एक हाथ बाकी है अब आधा हाथ बाकी है इस तरह का अनुमान लगा रही थी। सूर्य की दशा का वर्णन निम्नलिखित पद्य से प्रकट होता है।

विरलातपच्छविरनुष्णवपुः परितो विपाण्डु दधदभ्रशिरः।

अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः।। [2]

समाप्ति को प्राप्त विरल धूप की कान्ति वाला सब ओर शुभ्र आकाशरूप मस्तक को धारण करता हुआ तथा मन्द सूर्यरूपी नेत्र वाला दिन शिथिल व्यापारवाला होगया। सायंकाल की अधिक ठण्डी हवा से धीरे-धीरे हिलती हुई लतारूपी अगुलियों वाले बुलाते हुए निवासस्थान वृक्षों के लिए पक्षिसमूह मानों प्रत्युत्तर दे रहे थे। संध्याकाल के समीप होने पर सूर्य के सूक्ष्म किरण समूह उस समय अर्थात् अस्तगमनरूप विपत्तिकाल में भी अस्ताचल के शिखरों पर ठहर गया

1. शि० पा० व० 3/82
2. शि० पा० व० 9/3

क्योकि विनाश के समय में भी बड़े लोगों का स्थान अत्यन्त ऊँचा ही रहना उचित होता है। भाग्य के प्रतिकूल होने पर बहुत साधन भी निष्फल ही हो जाते है। शीघ्र ही गिरने वाले दिवापति की सहस्रो किरणें भी अवलम्बन के लिए नहीं हो सके।

ज्योतिषशास्त्र में चन्द्रमा का भी प्रतिकूल होना अनिष्टकारक कहा गया है। सूर्य ने ये कुंडल के समान लाल मेघोंवाली अपनी किरणों से सम्बद्ध मनोहर आकाश लाल हो गया। ओढउलके फूलों के गुच्छों की कान्ति के समान लाल कान्ति वाले सूर्य के नम्र होने पर दिग्मण्डल ऐसा शोभने लगा कि मानों वह अत्यन्त लाल परमराग मणि के टुकडों से मध्य भाग में जडा गया हो। पिघलाये गये सुवर्ण के समान तथा जल में आधा डूबा हुआ सूर्य बिम्ब ब्रह्मा के नख से दो भागों में विदीर्ण विशाल संसार के ब्रह्माण्ड के एक टुकड़े के समान शोभने लगा।[1] पश्चिम दिशारूपिणी वेश्या ने अनुराग युक्त तथा नेत्रों के सुखप्रद एवं शीतल शरीर को धारण करते हुए भी किरण रहित सूर्य को आकाश रूपी घर से निकाल दिया। कमलिनी बहुत समने सूर्य के समाने निर्निमेष होकर देखती थी, किन्तु अब उसे सामने देखने में खिन्न होती हुई अर्थात् उस ओर देखने की इच्छा नहीं करती हुई भ्रमर समूह रूपी अश्रुजल वाले कमल नेत्र बन्द कर लिया। जिसमें ताराएँ दिखलाई नहीं पड रही हैं। चन्द्रमण्डल भी दिखलायी नहीं पड रहा है। सूर्य अस्त हो गया है, गर्मी शान्त हो गयी है और अन्धकार भी नहीं हुआ है ऐसा आकाश शोभ रहा था, क्योंकि गुणहीन निर्दोष होना ही गुण होता है।

प्रभात का प्रविष्ट होना–

रूचिद्याम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।

ज्वलनं त्विषः कथमि वेतस्था सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः।। [2]

---

1. शि० पा० व० 9/5
2. शि० पा० व० पृ० 110

तेजों के आने पर पति के परलोक में जाने पर विमल नायिकारूपिणी प्रभाएँ अग्नि में प्रविष्ट होगयीं अर्थात् सूर्यास्त हो जाने पर अग्नि प्रभायुक्त हो गयी। क्योकि जन्मान्तर में वही पति किस प्रकार सुलभ होता है। जन समूह से नमसकृत विकसित होते हुए कुसुम्भपुष्प के समान लालिमा को धारण करती हुई, पितरों की जननी इस सन्ध्यारूपिणी ब्रह्मा की मूर्ति ने चिर काल से छोडी गयी होने पर भी अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ा।

संध्या हाने के बाद सन्ध्या काल की सघन किरणों से लाल किया गया, विष्णु भगवान् के अस्त्र के नामवाला दो पक्षियों का मिथुन् अर्थात् चकवा और चकई की जोड़ी[1] विरह–पीडा से भटते हुए हृदय से बहे हुए रक्त से अनुलिप्त हुए के समान अलग–अलग होकर उड गयी। कमल ही लक्ष्मी के नित्य निवास करने का स्थान है। उसका भी उस लक्ष्मी ने सायकाल में त्याग कर दिया चंचल स्वभाव वाली स्त्री के विषय में आश्चर्य जनक नहीं है। दिनरूपी पुरूष मित्र के बाद नष्ट होगया अब अबला मैं किस प्रकार इस संसार में निवास करू? अर्थात् पतिरूप सूर्य तथा उसके मित्र दिन के नष्ट हो जाने पर बलहीन मुझ स्त्री जाति को अकेली यहाँ रहना उचित नहीं है, मानों ऐसा विचार का सन्ध्या भी नष्ट हो गयी। अपने प्रतिबिम्ब से क्रुद्ध किये गये सूर्यरूपी सिंह को समुद्र में कूदने पर हाथियों के झुण्ड के समान काले–काले अन्धकार ने सम्पूर्ण संसार का आच्छादित कर दिया।

दिन के बीत जाने पर अत्यधिक बडे हुए तथा गाढे पंक के समान काली कान्तिवाला यह अन्धकार का समूह पर्वत की गुफाओं से फेला है क्या? क्यो गुफाओं में घुस गया था? आकाश में स्थित बढता हुआ अन्धकार नीचे पृथ्वी की ओर लटकता था या अथवा पृथ्वीतल से ऊपर की ओर बढ रहा था क्या? दिशाओं से तिर्छे फैल रहा था क्या? इस अन्धकार का निर्णय नहीं हो सका।

---

1. अ0 शा0 अं0 4

आकाश तथा भूतल को आच्छादित करने वाले अन्धकार के लोगों की दृष्टि को अन्धा करते रहने पर अर्थात् किसी पदार्थ के दृष्टिगोचर नहीं होने पर सुलोचनाओं ने अपूर्व सुमे को धारण किया और इससे वे प्रियतमो के भवन के मार्ग को देखने लगीं अर्थात् प्रिय के भवनों का रास्ता ग्रहण कर अभिसार करने लगी। अत्यन्त घनीभूत अन्धकार रमणी के प्रियतम को प्प्तिरूप कार्य, गौरव को निश्चय कर भय के लिये नहीं हुआ और दोनो स्तन भी पतले रोमावलि मार्ग को कम्पित करने के लिए नहीं हुए अर्थात् अत्यन्त अन्धकार के होने पर भी रमणी निर्भय होकर प्रियतम के पास जाने के लिए तैयार हो गयी।

जो तारा समूह दिन में सूर्य की प्रभा से दिखलायी भी नहीं दिया वह बहुत अन्धकार से व्याप्त रात्रि को प्राप्त कर चमकने लगा, क्योंकि छोटे लोग मलिनों के आश्रय से प्रकट होते है।[1] प्रदोषकाल में लेप, पुष्प, पतियों के ऊपर कुछ रमणियों और दीपको की लौ इन सबों ने चिरकाल से सोये हुए कामदेव को प्रतिबोधित करते हुए एक साथ प्रकट कर दिया।

—: चन्द्रोदय का वर्णन :—

विशद प्रभापरिगतं विबभावुदयाचलव्यवहितेन्दुवपुः।

मुखमप्रकाशदशनं शनकैः सविलासहासमिव शक्रदिशः।। [2]

शुभ्र चाँदनी से व्याप्त तथा उदयाचल से छिपा हुआ चन्द्रमण्डलवाला पूर्वदशा का अग्रभाग जिसमें दाँत नहीं दिखलायी पडते है ऐसे मन्द—मन्द विलासपूर्वक किये गये हास के समान शोभने लगा। चन्द्रमा की कला से थोडा विदीर्ण किये गये अन्धकाररूपी जटावाले आकाश को लोगों ने यह गणों के नायक की मूर्ति है ऐसा क्षणमत्र के लिए ठीक ही समझा नयी चॉदनी रूपी पुष्पों से

1. शि० पा० व० (भूमिका) पृ० 7
2. शि० पा० व० 9/26

व्याप्त अन्धकाररूपी केश समूह को धारण करती हुई पूर्वदिशा के अग्रभाग में ललाट प्रदेश के समान मनोहर चन्द्रमा का आधा भाग मलयज चन्दन से गोले के समान दृष्टि गोचर होने लगा।

विकसित श्वेत कमल के समान शुभ्र कान्ति वाला चन्द्रमा मानों पहले ही जगी हुई नदी के स्वामी की कन्या अर्थात् लक्ष्मी[1] के मुखचन्द्र के समान कैटभासुर विजेता की शय्या अर्थात् समुद्रतल से ऊपर उठा। तदनन्तर शशांक रूप चिन्ह से अनुगत सुन्दर शरीर वाले चारों ओर से नक्षत्र समूह से घिरे हुए चन्द्रमारूपी रामचन्द्र ने समुद्र को लॉघकर अन्धकारसमूह रूपी राक्षसवंश का नाश कर दिया। समुद्र बनिये के समान सुन्दरता को धारण करते हुए मेघमार्ग रूपी बाजार में उतरे हुए नक्षत्र स्वामी की कलाओं को अपनी उन्नति से जल की वृद्धि के लिए सेवन करने लगा अर्थात् चन्द्रकलाओं का पान कर समुद्र का जल उस प्रकार बढगया जिस प्रकार बाजार में आये हुए व्यापार की कला को नहीं जानने से किसी व्यपारी के धन को कपटपूर्वक लेकर किसी चतुर बनिये की सम्पत्ति बढ जाती है। रात्रि को प्राप्त कर चन्द्रमा शोभित हुआ तथा इस चन्द्रमा ने भी उस रात्रि को शोभित कर दिया, क्योकि बडे लोगों का स्वभाव होता है कि परस्पर में एक दूसरे का तत्काल उपकार कर दिया करते है। चन्द्रमा ने दिन में अत्यन्त उष्ण किरण वाले की किरणों से ताडित निरन्तर भ्रमर ध्वनियों से मानो रोती हुई सी कुमुदिनीरूपी अपनी स्त्री का किरणाग्रों से बार–बार सहलाता हुआ आश्वस्त किया। सुलोचना ने पति के सम्मुख चन्द्रकिरणों से टपकते हुए जल बिन्दुओं वाली चन्द्रकान्तमणिरूप स्त्री की कामजन्य स्वेदजल से व्याप्त सपत्नी जानकर उसे चकित होकर देखा। औषधियों के गुणागुण को सम्यक् प्रकार से जानने के कारण उनका स्वामी अमृत से सरस किरणों से कमलनयनियों के शरीर का परिमार्जन करता हुआ सर्वत्र फैले हुए अत्यन्त सन्तप्त करने वाले मानरूप विष को

---

1. कादम्बरी (शुक0) पृ0 17

उतार रहा था। भाव यह है कि चन्द्रोदय होने पर मानवती रमणियाँ अपना मान छोडकर कामोन्मुख होने लगी।

अमलात्मसु प्रतिफलन्नभितस्तरूणीकपोलफलकेषु मुहुः।

विससारसान्द्रतरमिन्दुरूचामधिकावभासितदिशानिकरः।। [1]

दिशाओं को अधिक प्रकाशित करने वाली चन्द्रमा की कान्तियों का समूह रमणियों के स्वच्छतम कपोल मण्डलों पर बार–बार प्रतिम्बित होता हुआ अधिक सघन होकर फैल गया। निशाकर ने बडे–बडे तरंगरूपी बाहुओं से बेला का आलिगंन करने वाले नदियों के प्रति को भी क्षुब्ध कर दिया। तब कामदेव ने लघु अनुरागी यादवों को क्षुब्ध कर दिया, इसमें आश्चर्य ही क्या है? असमर्थ होने से घर के भीतर में सोया हुआ अतएव आलसयुक्त कामदेव खिडकियों के अग्रभाग से आयी हुई तथा स्फटिकमणि की छडी के समान कान्तिवाली चन्द्रमा की किरणों का अवलम्बन कर उठ खडा हुआ।

मानवती रमणी प्रियतम को देखकर वस्त्र के नीविरहित होने पर लज्जा से मुखचन्द्र को नीचे की हुई, जो स्थित हुई वह मानो शीघ्र ही भगे हुए मान के चरणों के चिन्हों को देख रही थी अर्थात् जिस प्रकार कोई व्यक्ति भगे हुये व्यक्ति के चरण चिन्हों को झुककर देखता है। उसी प्रकार मानों वह नायिका भी नम्रमुखी होकर तत्काल ही भागे हुए अपने मान के चरणों के चिन्हों को ढूढ रही थी। पति के नवीन अपराध से तप्त यौवनावस्था की गर्मी से युक्त तथा कामाग्नि से सन्तप्त, त्रिविध प्रकार की अग्नी से सन्तप्त सुलोचना का स्तन भार वेग पूर्वक आलिंगन किए हुए प्रियतम के लिए क्यों सन्ताप कारक नहीं हुआ? अर्थात् हुआ। बडे–बडे तथा उष्णता से युक्त दोनों स्तनों को धारण करती हुई नायिका अनुपम मुख से शोभने लगी और उसके प्रति मेनका भी शोभा से अधिक नहीं हुई । महाकवि माघ ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। निम्नलिखित पद्य के माध्यम से–

---

1. शि0 पा0 व0 9/37

इत्थं नारीर्घटयितुमलं कामिभिः काममासन्

प्रालेयांशो सपदि रूचयः शान्तमानान्तरायाः।

आचार्यत्वं रतिषु विलसन्मन्मथश्री विलासा

ह्रीप्रत्यूहप्रशमकुशलाः शीधवश्च क्रुरासाम्।।[1]

मानरूप विध्न को तत्काल शान्त करने वाली चन्द्रमा की किरणें रमणियों को कामियों के साथ संयुक्त करने केलिए सम्यक् प्रकार से समर्थ हुई तथा काम श्री के विलास को विलसित करने वाली और लज्जारूपी विध्न को दूर करने में निपुण मदिरा ने इन की रति में आश्चर्य किया।

—: महाकवि माघ द्वारा प्रभात का वर्णन :—

श्रुतिसमधिकमुच्यैः पंचमंपीडयन्तः

सततमृषभहीनंभिन्नकीकृत्य षड्जम्।

प्राणिजगदुरका कुश्रावकस्निग्धकण्ठाः

परिणतिमिति रात्रिर्मागधा माधवाय।।[2]

बहुत दूर तक सुनाई पडने वाली विकार हीन ध्वनि वाले एवं मधुर कंठ वाले बन्दी लोग श्रुति से अतिशयित षड्ज स्वर को छोडकर एवं पंचम स्वर से पीडित करते हुए अर्थात् पंचम स्वर को भी छेड़ कर वीणादि बाद्यों के साथ ऋषभ स्वर को भी छेडकर रात्रि के समाप्ति को श्री कृष्ण भगवान् से गानद्वारा कहने लगे। सुरोत्कंठा में बार—बार विलास करने से खिन्न दोनों नेत्र जब तक बन्द भी नहीं हुए अर्थात् जब तक कामीजनों को अच्छी तरह से निद्रा भी नहीं आयी तभी तक रात्रि के पूरा होने की सूचना देनेवाला मृदंग वियोग की नीद को भंग करता हुआ उच्च स्वर से बजने लगा।

स्फुटतरमुपरिष्टादल्पमूर्तेध्रुवस्य स्फुरति सुरमुनीनामंण्डलंव्यस्तमेतत्।

शकटमिव महीयः शैशवे शारंगपाणे श्वपलचरणकाब्जप्रेरणोतुंगिताग्रम्।।[3]

1. शि० पा० व० 9/87
2. शि० पा० व० 11/1
3. शि० पा० व० 11/3

सूक्ष्म आकार वाली ध्रुव तारा के ऊपर स्पष्ट चमकता एवं फैलता हुआ यह सप्तर्षि मण्डल बाल्यावस्था में श्रीकृष्ण भगवान के चपल चरण कमल द्वारा मारने के ऊपर उठे हुए अग्रभाग वाले विशाल शंकट के समान शोभता है। अपने प्रहर को पूरा कर सोने के लिए चाहता हुआ पहरेदार ने आगे पहरा देने वाले साथी को जागो उठों। ऐसा उच्च ध्वनि से बार–बार कहकर जगाया किन्तु नीद से अस्पष्ट अक्षरों को एवं अर्थरहित वचन को कहता हुआ भी वह मनुष्य भीतर से नहीं जागा। रमणी के अतिशय बडे–बडे नितम्ब मण्डल से अवरूद्ध शय्यापर सोने के लिए स्थान को नहीं पाता हुआ प्रियतम बार–बार रात्रि के सेवन करने से निद्रा सम्बंधी तन्द्रा को दूर करता हुआ किसी प्रकार अर्थात् बडे कष्ट के साथ रात्रि को बिता रहा है।

वह विचार कर रहा है। क्या करे? थोडी देर सोकर जागे हुए राजा लोग रात्रि के अन्तिम प्रहर में बुद्धि के नैर्मल्यको पाये हुए तथा समुद्र के समान हाथी–घोडे[1] आदि से अभिधा लक्षणादि एवं रस भावादि से गम्भीर और काव्य के समान दुष्प्रवेश्य राज्य में सामादि उपाय की कल्पना करते हुए कवि के समान पुरूषार्थ का विचार कर रहे हैं। महावत भूतलरूपिणी शय्यासे उठे हुए, मदजल के पंक से लथपथ शरीरवाले हांथी को करवटबदलकर पुनः सुला रहा है। तथा ऐसा करने से उस हाथी के पिछले पैर के लोहे की सांकल धीरे–धीरे हिलने से बज रही है।

हाथ को यथा शीघ्र चलाने में निपुण गोपलोग मथनीरूपी पर्वत जिसमें छोडा गया है, ऐसे गम्भीर ध्वनि करते हुए दही में से मक्खन निकालने के लिए समुद्रवत बडे महड़े को इस प्रकार आलोडितकर मथ रहे हैं।[2] जिस प्रकार शिध्रतापूर्वक हाथ चलाने में निपुण देवतालोग मन्दराचल पर्वत डाले हुए अत एवं

1. मेघदूतम् 1/35 तथा 2/14
2. सं० सा० का स० इति० पृ० 213

गम्भीर ध्वनियुक्त समुद्रजल में से चन्द्रमा को निकालने के लिए समुद्र को आलोड़ित किये थे। पति के मनाने से नहीं मानी हुई, अतएवं पति को ओर पीठ करके छलपूर्वक सोई हुई रमणी प्रातः काल में उच्च स्वर से मुर्गेका बोलना सुनकर किसी प्रकार उलटकर मानों नींद से नहीं देखती हुई नेत्रों को बन्द किये ही प्रियतम का आलिंगन कर रही है। वीणा के साथ बजते हुए वेणुके स्वर में एकता को प्राप्त किए हुए तथा कर्णमधु ध्वनि युक्त एवं सोते हुए राजाओं को जगाने के लिए बन्दियों द्वारा बार–बार गाये गये प्रशंसा परक गीतों को सुनते हुए। आनन्द से नेत्रों को बन्द किए हुए राजा लोग पुनः सो रहे है।

उदयमुदितदीप्तिर्याति यः संगतौ मे

पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा।

स्मितरूचिरिव सद्यः साम्यसूयं प्रभेति

स्फुरति विशदमेषा पूर्व काष्ठांगनायाः।। [1]

जिस प्रकार कोई रमणी अपने साथ सम्भोग कर उन्नति पाये हुए पति को परस्त्री के साथ सम्भोग करने पर पतित होता हुआ देख कर ईर्ष्या करतीहुई उस कार्य को अनुचित मानकर मुस्कुराती है। उसी प्रकार यहाँ चन्द्रमा को पश्चिम दिशा में गिरते हुए देखकर पूर्व दिशारूपिणी नायिका के करने की कल्पना की गयी है। बादमें सोने पर भी पहले ही जगी हुई रमणियाँ अपने अंगो को सर्वथा स्थिर रखतीहुई चिरकालतक रति करने से सुखपूर्वक सोये हुए प्रियतमों की बाहु के गाढालिंगन को नहीं हटा रही हैं। यह चन्द्रमा लालिमा से रंगी जाती हुई तथा परिपाक कमलनाल के समान शुभ्रवर्ण वाली किरणों से मानों कुंकुम से शुभ्रता को कुछ कम किये हुए चन्दन रेणुओं से पश्चिम दिशा को विभूषित करता हुआ सा शोभ रहा है। चन्द्रमा का किरण–समूह निकलते हुए अरूण से मधु की शोभा को प्राप्त अर्थात् अरूण वर्ण चिरस्थायिनी लज्जा को शीघ्र छोडते हुए मानों पूर्व दिशा रूपिणी तरूणी के मुख के कपडे के समान इस समय गिर रहा है।

---

1. शि0 पा0 व0 11/12

अविरतरतलीलायासजातश्रमाणा–

मुपशममुपयान्तं निःसहेऽगेऽग नानाम्।

पुनरूषसि विविक्तैर्मातरिश्ववचूर्ण्य–

ज्वलयति मदनाग्निंमालतीनांरजोभिः।।[1]

निरन्तर सुरतलीलासक्त रहने से थकी हुई रमणियों के शिथिल पडे हुए अंग में मन्द कामाग्नि की वायु प्रातः काल में पुनः शुभ्र वर्ण मालती पुष्प के परागों से चूर्णयुक्त कर उदीप्त कर रही है अर्थात् मालती के पुष्प परागों से युक्त वायु से वहने से रातभर सुरत करने से थकी हुई रमणियों की मन्द पडी हुई कामाग्नि प्रातः काल में पुनः उदीप्त हो रही है। मन्द होती हुई प्रकाशश्री वाली दीपक की लौ निरन्तर निर्निमेष होकर सम्पूर्ण रात्रि में अनुरागी पुरूषों एवं अनुरागिणी रामणियों की नयी–नयी सुरतक्रीडाओं को देखकर मानों निद्रा इनके नेत्रों में समान घुस रही है।

हर्ष तथा कामवासना से उन्मत्त एवं युवावस्था से गर्वयुक्त रमणियों के सुरत के वेग से उत्पन्न थकावट में होने वाले पसीने की बूंदों को दूर करने में निपुण अर्थात सुखाने वाली यह हवा, विकसित हुए कमलों के ग्रन्थों से भ्रमर समूहो को अन्धा तथा मकरन्द को सुगन्धयुक्त करती हुई मन्द–मन्द बहरही है। निद्रा से कलुषित नेत्रों की पुतलियों वाली क्षीण मुखरूप चन्द्रोवाली निद्रा से खिन्न नीलकमलतुल्य नेत्रोंवाली नीचे की ओर लटकते काले–काले केश समूह को धारण करती हुई रात्रियों के समान मे वरांगनाएँ राजाओं के महलों में जा रही हैं।

शिशिर किरण कान्तं वासरान्तेऽभिसार्य–

श्वसनसुरभिगन्धिः साम्प्रतं सत्वरेव।

व्रजति रजनिरेषा तन्मयूरवांगरागैः

परिमिलितम निन्धैरम्बरान्तं वहन्ती।।[2]

---

1. शि० पा० व० 11/17
2. शि० पा० व० 11/21

यह रात्रि, रात्रि में चन्द्र रूप प्रियतम का अभिसरण कर इस समय वायु से सौरभयुक्त तथा उस चन्द्रकी किरणरूपी अंगरागों से व्याप्त वस्त्राचल को धारण करती हुई मानों शीघ्रता से जा रही है।

कविमाघ ने चन्द्रमा का अस्ताचल की ओर जाना निम्नलिखित पद्य में सुन्दर वर्णन किया है–

नवकुमुदवन श्री हास के लिप्रसंगा–

दधिकरूचिर मेषामप्युषां जागरित्वा।

अयमपर दिशोऽके मुंचति स्रस्तहस्तः

शिशयिषुरिव पाण्डुं म्लानमात्मायमिन्दुः।। [1]

अतिशय सोभायुक्त यह चन्द्रमा नवीन कुमुदवनों की शोभा की क्रीडा के प्रसगं से रातभर जागकर इस समय सोने की इच्छा करता हुआ सा हाथ को शिथिलकर पश्चिम दिशाकी गोद में पाण्डुवर्ण एवं मन्द करके, अपने को छोड़ रहा है।

आलिंगन करने के उपक्रम में आकुल प्रियतम ने रमणी के जिस कपड़े को हटा दिया था। उसे प्रभात काल में भी पहिये के समान विशाल रमणी के नितम्बभाग में चन्चल नेत्रवाला प्रियतम देने की ईच्छा नहीं करता है। जब चन्द्रमा उदय होता है तब कुमुदिनी खिलती है और चन्द्रमा के अस्त होने पर कुमुदिनी भी बंद हो गयी। रात्रि के नष्ट होने पर वे सभी तारे भी नष्ट हो गये। इस प्रकार चिन्ता करता हुआ पत्नी वत्सल चन्द्रमा मानों शोक से शोभाहीन सम्पूर्ण अंगो को धारण कर रहा है। सूर्य जब तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तभी तक अरूण ने सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर दिया। दुसरों के परिभव कारक तेज को फैलाने वालें का प्रथमसर भी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए समर्थ होता है।

---

1. शि0 पा0 व0 11/22

विगततिमिरपंक पश्यति व्योम याव–

द्धुवति विरहखिन्नः पक्षतीयावदेव।

रथचर समाहस्तावदौत्सुक्यनुन्भा–

सरिदपरतरान्तादागता चक्रवाकी।। [1]

विरह से खेद युक्त चकवे ने पंकोपम अन्धकार से रहित आकाश को जब तक देखा तथा जब तक अपने पंखमूल को फड़फडाया तभी तक उत्कंठाप्रेरित चकई नदी के उस पार से आ गयी। रात्रि में युवकों के मन को मुदित करने वाला उपभोग के लिए कल्पित एवं वस्त्र तथा भूषण से अलंकृत पुष्पमालाएं तथा रमणियॉ दोनों ही समान शोभा धारण करती थीं। किन्तु प्रभात काल में उपभोग से कान्तिहीन पुष्पमालाओं को मर्दनादिजन्य सुगन्धि से रूचिर रमणियों ने तिरस्कृत कर दिया। प्रत्येक बन में कमल–समूहों को कम्पित करने वाली लताप्रतान को अस्तव्यस्त करने पर स्थिर नहीं होती हुई यह हवा रमणियों के पुष्पों के मर्दन से अधिक सुरभित भवनों के भीतर में स्थिर हो गयी है।

भगवान भास्कर के द्वारा तम को नष्ट करना–

सरसिजवबान कान्तं बिभ्रदभ्रान्तवृत्तिः

करनयनसहस्रंहेतुमालोकशक्तेः।

अखिलमति महिम्नां लोकमाक्रान्तवन्तं–

हरिरिव हरिदश्वः साधु वृत्रं हिनस्ति।। [2]

कमलवन का प्रिय, लोगों के नेत्रों के विषय ग्रहण करने की शक्ति का कारण भूल नेत्रों के समान सहस्र किरणों को धारण किए हुए आकाश के बीच में चलने वाले हरित वर्ण के घोडों वाला यह सूर्य इन्द्र के समान अत्यधिक महिमा से अर्थात् सर्वत्र फैलने से सम्पूर्ण लोकों में आक्रान्त किये हुए अन्धकार को सम्यक प्रकार से नष्ट कर रहा है। घने अन्धकार को नष्ट करने के लिए उदय को प्राप्त

1. शि० पा० व० 11/26
2. शि० पा० व० 11/56

किए हुये सूर्य ने रमणीय तारा समूह को भी बलपूर्वक नष्ट कर दिया क्योकि शत्रु का नाश करने की इच्छा करने वाले व्यक्ति के लिए जो शत्रु के आश्रय से श्री को पाये हुए है वे भी नष्ट करने योग्य ही हुआ करते है ताराओं को नष्ट करना सूर्य का उचित ही कार्य था।

प्रलयमखिल तारा लोकमन्हाय नीत्वा

श्रियमनतिशयश्रीः सानुरागां दधानः।

गगनसलिलराशिं रात्रिकल्पावसाने

मधुरिपुरिव भास्वानेष एकोऽधिशेते।।[1]

सम्पूर्ण तारो के समूह को संसार के समान शीघ्र नष्ट कर सर्वाधिक महिमावाला तथा उदयकाल की अरूणिमा से युक्त शोभा को धारण करता हुआ यह सूर्य एकांकी श्रीविष्णु के समान रात्रिरूपी कल्प के बीतने पर आकाश रूपी समुद्र में सो रहा है। समस्त संसार को प्रबुद्ध करने वाला तथा अन्धकार के उदर को नष्ट करने वाला कुमुदों तथा नक्षत्रों की शोभा को नष्ट करने वाला और कामिनियों एवं कामियों को विरहयुक्त करता हुआ अधिकतर गुणों के दिखलाई पडने से थोडे से दोषयुक्त कृतार्थ यह दिनपति हे वर देने वाले! आपका सुप्रभात करे।

—: वनविहार का वर्णन :—

महाकवि भारविने अपने ग्रंथ में वनविहार का वर्णन किया है[2] किन्तु माघ ने वन विहार का वर्णन कर प्राकृतिक विषमता दिखलाई हैं। यादव लोग अनेक प्रकार के पुष्पों को धारण करते हुए वनों में स्त्रियों के साथ जाने की इच्छा किये। वे यादव लोग कामदेव के महान अस्त्र, केवल पांच बाणों को भी सहन करने में समर्थ हो सकते थे। उस अवसर को पाकर हृदय को वशीभूत करती हुई

1. शि० पा० व० 11/66
2. सं० सा० का स० इति० पृ० 185

स्वभावतः सुन्दरी उन रमणियों ने भूमिपर रखा अर्थात् वन में बिहार करने से वे पैदल ही चल पडी। और उस समय उन रमणियों में विलास श्री ने पैर रखा। जब तरूणि पति के साथ विहारार्थ रैवतक पर्वत पर पैदल चलने लगी तब बार–बार अपने विशाल नितम्बों पर अपना हांथ रखती एवं हटाती। उस समय उसकी नखकान्ति, इन्द्रधनुष की रचना कर रही थी तथा उसके कंगन झंकार कर रहे थे।[1] दूसरी किसी नायिका के विशाल जघन प्रदेश पर बहुतबडी तथा अत्यधिक लगे हुए रत्नों के घुघुरूओं वाली एवं मधुर ध्वनि करती हुई करधनी बहुत शब्द करने लगी। भारयुक्त नितम्बमण्डल के भार के दबाव से अत्यन्त पीडित युवतियों के दोनो चरण पैर रखने के स्थान में महावर के कपट से मानों अविच्छिन्न अपना रस बहा रहे हैं।

मदन रस महौधपूर्णनाभीहृदपरिवाहितरोमराजयस्ताः ।

सरित इवसविभ्रमप्रयातप्रणदितहंसभूषणा विरेजुः ।। [2]

श्रृंगार के महाप्रवाह से पूर्ण नाभिरूप तडाग के जलोच्छवास के समान रोमावली है जिनकी ऐसी तथा विलास पूर्वक चलने से बजते हुए नूपुररूप भूषण वाली वे यादव स्त्रियॉ जिनके जल के महाप्रवाह तडागों को भरकर वह रहे है।

ऐसी तथा विलास के साथ चलते हुए हंसवाली नदी शोभती थी। उन्ही ने नदियों के पास में लोगों के मनोरूप लक्ष्य को वेधने में समर्थ कामधनुष के टंकार का सन्देह उत्पन्न करते हुए कर्णमधुर सारस पक्षियों के ध्वनि को सुना उत्कंठित भ्रमर समूह श्री कृष्ण भगवान की वधुओं को जो बुलाते हुए से गूंजने लगे उपवनों की श्रेणि ने नवपल्लव रूप अंगुलियों से मानो उसी का अभिनय स्त्रियों को हिलाहिलाकर बुलाने का प्रदर्शन सा किया।

---

1. किरा० (भूमिका) पृ० 15
2. शि० पा० व० 7/23

उपवनपवनानुपातदक्षैरलिभिरलाभि यदंगना जनस्य।
परिमल विषयस्वदुन्नतानामनुगमने खलु सम्पदोऽग्रतस्था।।[1]

वन में वायु का अनुगमन करने में चतुर वायु के रूख से उडने वाले भ्रमरों ने अंगनाओं का परिमल रूप वस्तु को जो प्राप्त किया । वह बडों के अनुगमन करने में सम्पत्तियाँ आगे पडी हुई रहती है वह प्रकट कर रहा था अर्थात् बडों के अनुसरण करने पर अनायास ही योग्य विषय की प्राप्ति होती है। चक्रधारी की अंगनाओं के करकमल के संसर्गरूपी श्री से सौमनस्थ को प्राप्त किये हुए सुमनस अर्थात् पुष्प उस समय से सचमुच ही अन्वर्थता को प्राप्त कर लिये। हर्षित भ्रमर बैठे हैं, जिनपर ऐसी शाखा को चंचल तथा नियत्रणरहित शंख वलय के साथ हिलाती हुई दूसरी अंगनाओं को पराजित की हुई किसी अंगना के मस्तकपर मानों हर्ष से वृक्ष पुष्प वृष्टि की ।

सरजसकरन्दनिर्भरासु प्रसवविभूतिषु भूरूहां विरक्तः।
ध्रुवममृतपनामवांछयासावधरममुंमधुपस्तवाजिहीते।।[2]

वृक्ष की लताओं की मधु तथा मकरन्द से यदि पूर्ण पुष्प समृद्धियों में विरक्त यह मधुप मानों अमृतपान की इच्छा से तुम्हारे अधर पर आ रहा है। भूवासियों की रज तथा वीर्य पर निर्भर सन्तान परम्पराओं में विरल यह मधुप अमृतपान की इच्छा से शाश्वत पृथ्वी के सम्बन्ध से रहित इस परलोकमार्ग को ढूढ रहा है।

सखी के कहने पर बन्द नेत्र के पलको को दुगुना सान्द्र की हुई कोई नायिका भ्रमरों के भय से पति की गोद में गिर पडी, क्योकि स्त्रियों का भीरू होना गुण है।

भ्रमरों के समूह तोडें गये फूलों वाली लताओं को छोडकर कोमल माला पहनी हुई युवतियों पर बैठ गये मलिन आत्मावालों के लिए परिचय प्रधान नहीं होता है। प्रियतमों के चुम्बनों के द्वारा मर्दन करने से म्लान्त हुए कुंकुम परागवाले

---

1. शि० पा० व० 7/27
2. शि० पा० व० 7/42

पराग छूट जाने के कारण परिबिम्बित होती हुई चन्द्र किरणों वाले एवं कुंकुम पराग के छूट जाने पर भी प्रतिबिम्बित चन्द्रकिरणों से अधिक लालिमा को धारण करने वाले कपोलों से युक्त सुकुमार क्रियाओं को भी न करते हुए अत्यन्त कोमल तथा दुर्बल दोनों भुजाओं वाली तथा सरस नवपल्लवों से अनुरचित एवं द्विगुणित कान्ति वाले कर कमलों वाली, कामवश अनुराग सहित पति के वक्ष स्थल से अंगरागों का परस्पर में अदल–बदल किये हुए तथा मानों अत्यन्त खेद के कारण परस्पर में अत्यधिक सटे हुए दोनों स्तनों वाली, बडे–बडे स्तनों के भार से नम्र तथा परिश्रम से अधिक नम्र सुकुमार शरीर वाली और अभ्यास से रहित अर्थात् अभ्यास के बिना पैदल चलने से उत्पन्न कृशता से असमर्थता को धारण करने वाले चलने में असमर्थ हांथी के सूड के समान मोटे जघनों वाली बहुत दूर तक भूतलपर चलने से नष्ट हुए नये महावरों वाले तथा पृथ्वी पर पैदल चलने से ही दिये गये रागवाले तथा परस्पर में अत्यन्त स्थिरता से जमा–जमाकर रखने के कारण किसी प्रकार चलते हुए नितम्बिनी स्त्रियॉ फिर इस प्रकार वनबिहार में आसक्त होने से अत्यन्त खिन्न हो गयी ऐसा थकजाना उचित ही था। अत्यन्त सुकुमार शरीर वाली अंगनाएं स्वाभाव से ही आलसी होती है। तब फिर बहुत देर तक परिश्रम करने पर कैसी हो गयी होंगी?

गत्वोद्रेकं जघनपुलिने रूद्धमध्यप्रदेशः

क्रामन्नूरूद्रुमभुजलताः पूर्णनाभीछदान्तः।

उललंघयोच्चैः कुचतटभुवंप्लावयनकूपान्

स्वेदापूरो युवति सरितां न्याप गण्डस्थलानि।। [1]

युवतिरूपिणी नदियों का स्वेद प्रवाह जघनरूपी तटप्रदेशों में बढकर मध्य प्रदेश को रोककर नाभिरूपी तडाग के मध्य भाग को पूर्व कर ऊँचे–ऊँचे स्तनरूपी दोनों तटों को भूमि को लॉघकर रोमछिन्द्रो को प्लावित करता हुआ गण्डस्थलों

1. शि० पा० व० 7/74

पर फैल गया । जब प्रियतम के हाथों से पोछने पर अंगनाओं का पसीना बहना फिर अधिक हो गया। तब निर्मल शोभावाली उन अंगनाओं ने वन विहार के खेद से मलिन शरीर को जल से अभिषिन्चत करना चाहा।

—: जल विहार का वर्णन :—

महाकवि माघ ने जल विहार का वर्णन प्राकृतिक ढंग से किया है— बहुत बडे—बडे स्तनों से शब्द करते हुए भूषणों से श्रम के कारण[1] अविकसित अधमुदे नेत्रकमलों से थकी हुई रमणियों के समूह जल के सम्मुख किसी तरह पैर रखकर चलने लगे। श्रेणीबद्ध होकर जाती हुई काली भौहों वाली उन रमणियों के कन्धे के नम्र होने के कारण मध्य में बहुत अवकाश होने पर भी बडे होने से परस्पर में सटे हुए नितम्बों से चौडा भी वह मार्ग बहुत संकीर्ण हो गया। सघन पेडों से ठण्डी भूमिपर जाती हुई उन रमणियों को सूर्य ने क्षणमात्र हवा से हिलायी गयी शाखाओं के अन्तरालों से बार—बार कौतुक से सशंक हो उत्कंठापूर्वक किरणों से स्पर्श किया। मुख कमल से पराजित हुई कान्तिवाले चन्द्रमा ने सूर्य किरणों से सन्तप्त हुई किसी एक रमणी की सेवा के लिए आकर तत्काल श्वेतच्छत्रभाव को धारण करते हुए मानो उस रमणीका प्रिय सा किया। शीत को न सहने वाली तडाग में उतरने के लिए इच्छा नहीं करती हुई किनारे पर बैठी हुई तथा हाथ को हिलाती हुई रम्भोरू को पानी में पहले ही प्रविष्ट मुस्कुराते हुए पति ने विलास देखने के लिए भिगो दिया। कन्धे तक पानी में स्थित पति को देखकर अपने भी कन्धे तक ही पानी को समझती हुई किसी सुन्दरी ने अज्ञान के कारण निर्भय हो पति के पास जाना चाहा उस पति ने यह डूब रही है, यह जानकर झट उसका आलिंगन कर लिया अर्थात् उसे पकड लिया। नम्र नाभितक तडाग में प्रवेश करने पर चंचलता के कारण पानी के तरंगरूपी हांथ ऊँचे—ऊँचे दोनो स्तनों पर पहुँच गये अथवा प्रवेश प्राप्त व्यक्तियों की मर्यादा कहॉ रहती है? प्रवेश पाये हुए पुरूषों की मर्यादा सुरक्षित नहीं रह सकती है।

1. सं0 सा0 का स0 इति पृ0 203

—: जलक्रीडा के साधन :—

श्रंगाणिद्रुतकनकोज्ज्वलानि गन्धाः—

कासुम्भंपृथकुचतुम्भसेगिवासः ।

मार्द्वीकं प्रियतम सन्निधानमासन्ना—

रीणामिति जलकेलिसाधनानि ।। [1]

पिघलाये गये सुवर्ण से निर्मल गन्ध, स्तनकलश का आवरण भूत कुसुम से रंगा हुआ मोटा कपडा दाख की बनी हुई मदिरा प्रियतम का सामीप्य, सब नारियों के जलक्रीडा के साधन थे। वायु से उडते हुए वस्त्र वाली अंगनाएं भय की आशंका करने वाले प्रियतमों के चित्त के साथ में बडे—बडे नितम्ब होने के कारण थोडा उछलती अर्थात् धीरे—धीरे दौडती हुई ऊँचे तट से पानी में कूद पडीं।

अन्यूनंगुणममृतस्य धारयन्ती

सम्फुल्लस्फुरित सरोरूहावतंसा।

प्रेयोभिः सह सरसी निषेव्यमाणा

रक्तत्वं व्यधित बधूदृशां सुरा च ।। [2]

पानी के माधुर्यादि सम्पूर्ण गुणों को धारण करती हुई तथा अच्छी तरह से विकसित एवं उज्जवल कमलरूपी आभूषणों वाली और प्रियतमों के साथ में सेवित उस नदी ने तथा अमृत के सम्पूर्ण गुणों को धारण करती हुई। तथा अच्छी तरह से विकसित एवं उज्जवल कमल रूपी भूषणों वाली और प्रियतमों के साथ सेवित मदिरा ने रमणियों के नेत्रों को लाल कर दिया।

पानी से यदुवंशी पुरूषों के वक्ष स्थल से सघन अंगलेप का अपहरण कर लिया। तथा नेत्रों की मदजन्य कान्ति वैसी ही रही तथा जलक्रीडा करने पर भी वैसी ही लाल बनी रहीं।

---

1. शि0 पा0 व0 8/30
2. शि0 पा0 व0 8/52

शीतार्ति बलवदुपेयुषेव नीरैरासेकाच्छिशिरसमीर कम्पितेन।
रामाणामभिनवयौवनोष्मभाजोराश्लेषि स्तन तटयोर्नवांशुकेन।।[1]

पानी से सींचने के कारण मानो अत्यन्त शीत से पीडित ठण्डी हवा से काँपते हुए नवीन वस्त्र ने अत्यन्त नयी यौवनवस्था की गर्मी से युक्त रमणियों के दोनो स्तन प्रदेशों का आलिंगन कर लिया, शीतार्त रमणियों ने स्तनों के नये वस्त्र से ढक लिया। इसके बाद शरीर के संसर्ग से प्राप्त चंचल तरगरूपी रंगस्थली में प्रवीण वस्त्राचंल से युक्त रमणी समूह जलाशय से बाहर निकला।

महाकवि भारवि ने अपने ग्रन्थ में जलक्रीडा,[2] वन बिहार,[3] प्रभात[4] इत्यादि प्राकृतिक चित्रों का वर्णन किया है। लेकिन माघ ने भारवि की अपेक्षा जलक्रीडा[5] वन बिहार,[6] समुद्र, सूर्यास्त,[7] सूर्यप्रभात[8] इत्यादि का वर्णन कर विषमता का प्रतिपादन किया है। महाकवि माघ के द्वारा वर्णित जलक्रीडा और वन बिहार अपनी अनुपम छटा बिखेरते हैं।[9] इसी प्रकार प्रभात का वर्णन[10] हर व्यक्ति के मन का हरण कर लेता है मानो ऐसा प्रतीत होता है कि हम उसी में डूबे हुए है। उसके आनंद की अनुभूति स्वतः ही प्राप्त होने लगती है।

प्रस्तुत अध्याय में दोनो महाकाव्यों के प्राकृतिक चित्रणों में वैषम्य पर विचार प्रस्तुत किया गया है।

---

1. शि० पा० व० 8/62
2. किरा० सर्ग 8
3. किरा० सर्ग 8
4. किरा० सर्ग 9
5. शि० पा० व० सर्ग 8
6. शि० पा० व० सर्ग 7
7. शि० पा० व० सर्ग 10
8. शि० पा० व० सर्ग 11
9. सं० सा० का स० इति० पृ० 185, 201
10. सं० सा० का इति० पृ० 183, 201

* * * * *

अध्याय सात
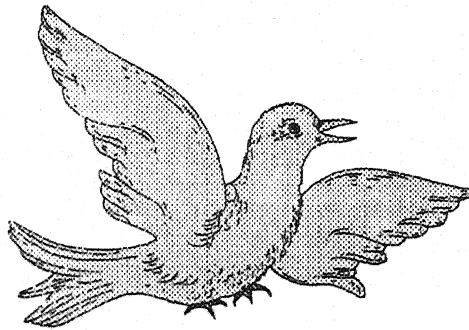
दोनों महाकाव्यों में चित्रित प्राकृतिक दृश्यों की उपयोगिता आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

महाकवि भारवि ने शरद् ऋतु का वर्णन कर महनीय प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन प्रतिपादित किया है।[1] वहीं पर महाकवि माघ ने सभी ऋतुओं का वर्णन प्रतिपादित किया है। यदि ये ऋतुयें नहीं रहेंगी तो मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।[2] ऋतुओं के बगैर इस धरातल पर कुछ नहीं हो सकता। यदि वर्षा ऋतु का आधिक्य हो जायेगा तो बाढ़ इत्यादि कि समस्यायें उत्पन्न होने लगेंगी। ग्रीष्म का आधिक्य हो जायेगा तो गर्मी से मनुष्य, जानवर और पक्षियों का अस्तित्व ही समाप्त होने लगेगा। इसलिए सभी का अस्तित्व बना रहे। किसी का आधिक्य न हो। अतएव हमको प्रकृति की रक्षा करनी है। प्राकृतिक दृश्यों के साथ हमें किसी प्रकार की छेड़कानी नहीं करनी है। प्रकृति हमको सारी चीजें प्रदान करती है। हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए ये ही हमारा मूल कर्तव्य है।

अर्जुन शरद् ऋतु का अवलोकन कर रहे हैं तो शिशुपालवध में भगवान् श्री कृष्ण, स्वयं परमात्मा के द्वारा अवलोकित की जा रही है। जिस प्रकार सभी ऋतुओं का घूम–घूमकर आनन्द लिया और हर जगह जाकर तालाब, बाग, बगीचे, जंगल इत्यादि का भ्रमण किया है उसी तरह से मनुष्य को हर प्रत्येक वस्तुओं का निरीक्षण करना चाहिए। तालाब बांध, कुंए इत्यादि खुदवाकर पानी को रोककर सद उपयोग में लाना चाहिए। सुन्दर–सुन्दर पुष्पों का वृक्षारोपण करना चाहिए। जिससे वातावरण और अनुकूल हो। जगह–जगह पानी को रोककर पानी के स्तर को नीचे जाने से बचाया जा सकता है। सुन्दर वृक्षों को लगाकर प्रदूषण से बचा जा सकता है। सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण की समस्या से संघर्ष कर रहा है। उसका समुचित उपाय ये ही है कि प्राकृतिक चित्रणों के साथ छेड़कानी न करें। अधिक

1. किरा0 4/2
2. शि0पा0व0 6/2

से अधिक उनकी रक्षा और नये उत्पादनों में सहयोग करें। ऋतुओं से नया जीवन प्राप्त होता है। एक जाती है तो दूसरी का आगमन होता है। जब हम दूसरी ऋतु में प्रवेश करते हैं तो तीसरी का आगमन होता है और जब हम तीसरी ऋतु में प्रवेश करते हैं तो उसके वातावरण में ढलने में कुछ कठिनाईयां आती हैं, लेकिन कुछ समय बीतने पर सब सामान्य हो जाता है। उसी प्रकार से हमें एक नया अनुभव प्राप्त होता है कि प्रकृति का नियम परिवर्तनशील है। हम उसमें नहीं ढल पाते लेकिन वह हममें ढल जाती है।

महाकवि भारवि ने पर्वतराज हिमालय का वर्णन किया है जो शान्ति प्रदान करता है। उस पर्वत पर ऋृषि मुनि तपस्या करते हैं। होम करने से लोक और परलोक दोनों ही बनते हैं। उसके धुंए से वातावरण शुद्ध होता है और मनुष्य का अन्तःकरण भी शुद्ध होता है। ऋषि मुनियों को शान्ति भी मिलती है। यह परम पुरुष की भांति आगमवेध है और इसकी वास्तविकता को केवल ब्रह्माजी ही जान सकते हैं। इसके सुन्दर पल्लवों वाले लतागृह गम्भीर प्रकृति वाली रमणियों के चित्त में भी उत्सुकता जागृत करते हैं। इसमें बहुमूल्य रत्न होने से यह स्वर्ग और पाताल की अपेक्षा पृथ्वी के महान् ऐश्वर्य को प्रकट करता है। पार्वती का पिता होने से तथा जिनके विभव का पता ही नहीं ऐसे शिवकी वासभूमि होने से इसकी समानता त्रिभुवन भी नहीं कर सकता। यह मुमुक्षुओं के लिए जन्म–मरण का नाशक धर्म–क्षेत्र तथा मुक्ति–क्षेत्र है। स्वर्ग की स्त्रियों द्वारा विविध सुरत क्रीड़ायें इसकी शिलाशय्याओं पर की जाती है। निरन्तर चमकती हुई औषधियाँ इसके तेज को व्यक्त करती है। आयुर्वेद ही पूरे चिकित्सा शास्त्रों का शास्त्र है। आयुर्वेद के माध्यम से दुरूह से दुरूह बीमारियों को नष्ट कर स्वस्थ जीवन प्रदान करता है। यहाँ पर कोयलों की गूंज सदा संगीत का अनुभव कराती है जो मन को शान्ति एवं उत्साह प्रदान करती है। इसकी नदियों में सदा अमृत बहता है। विश्व प्रसिद्ध पतित पावनी गंगा का प्राकट्य स्थल यही है। जिसका जल हजारों वर्ष वाटल (पात्र) में सुरक्षित अथवा यथावत रहता है जो लोगों के शोध का विषय है। गंगा

जल ही सभी औषधियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसके पीने मात्र से रोग, दुःख, पापकर्म सभी नष्ट हो जाते हैं। इसी हिमालय में शिवजी के लिए तपस्या करती हुई पार्वती का उन्होंने पाणिग्रहण किया। भगवान श्री कृष्ण ने अमृत मन्थन किया वह मन्दराचल पर्वत भी इसी में है। इसके स्फटिक और चांदी के शिखरों पर पड़ी हुई सूर्य की प्रखर किरणें इन्द्रनीलमय शिखरों को किरणों से मन्द होकर चाँदनी का भ्रम करा देती है। इसके स्फटिकमय शिखरों पर पड़कर आकाश की ओर जाती हुई सूर्य किरणें दूनी हो जाती हैं जिससे प्रतीत होता है कि सूर्य सहस्र रश्मियों वाला है क्या? शिवाजी को प्रसन्न करने के लिए बड़े फाटक जैसी अलकापुरी[1] के कुबेर ने इसी हिमालय के कैलाश पर बसायी है। इसमें घास सदा हरी, कमलिनी समूह सदा श्यामल रहते हैं, तथा वृक्षों के पल्लव कभी मुरझाते नहीं। इसके मरकत मणियों की किरणों के हरिणियाँ सदा घास समझकर चरने दौड़ती हैं। वायु से उड़ाया हुआ स्थल – कमलिनियों का सुनहरा केशर आकाश में सकत्र होकर इसके सुनहरे छत्र का अनुसरण करता है। सूर्य की किरणें जब हिलते हुए वृक्षों के बीच–बीच में इसकी भीतों पर पड़ती हैं तो दर्पण की तरह चमकती है। शीतलता को प्रदान करने वाला चन्द्रमा भगवान शंकरजी के मस्तक पर शोभता है। प्रातः काल यहां पर घूमने से सुन्दर वातावरण और अधिक प्रफुल्लित हो जाता है। शरद् काल में निकली हुई बहुरंगी किरणें सुन्दर इन्द्रधनुष को बना देती हैं। इसकी सुनहरी तटभूमियों की किरणें वायु से लताओं के बीच से बिजली सी चमकती हैं। इस पर प्रखर सूर्य की किरणों को भी मरकत मणियों की कान्ति वर्षाकाल के मेघों जैसा श्यामल बना देती हैं।

यक्ष ने अर्जुन से कहा कि तुम भव्य शरीर वाले हो प्रमादरहित होकर तथा निरन्तर शस्त्र ग्रहण किए हुए इसी पर्वत पर तपस्या करो। क्योंकि कल्याण के कार्यों में बहुत बिघ्न हुआ करते हैं। तुम्हारी इन्दियाँ कुपथगामी न हों। विपत्ति के

1. मेघदूतम् पृ0 90

समय में भगवान शंकर तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें। लोकपाल तुम्हारे बल और तपस्या की रक्षा करें तुम अपने अभीष्ट की सिद्धि को प्राप्त होओ। तुम हमेशा एश्वर्य को प्राप्त करो।

महाकवि माघ ने शिशुपालवध में रैवतक पर्वत का वर्णन किया है पर्वतों में बड़े–बड़े वृक्ष होते हैं, उससे बादल बनते हैं वर्तमान समय में पर्वतों को काटकर रास्ते बनाये जा रहे हैं जंगलों को नष्ट किया जा रहा है। वहां नये–नये उद्योग धंधे लगाये जा रहे हैं। एक तरफ तो आधुनिकता का विकास हो रहा हे लेकिन दूसरी तरफ प्राकृतिक संपदा की क्षति की जा रही है। आने वाले समय में मनुष्य शुद्ध वायु लेने के लिए तरसने लगेगा। पर्वतों से अच्छी कंकरीट, सीमेन्ट, बालू और पत्थर तैयार किये जा रहे हैं। उनके द्वारा सुन्दर भवनों, सड़कों का और पुलों का निर्माण किया जा रहा है। जिससे मनुष्यों को रहने, आने–जाने में किसी भी प्रकार की समस्याओं का सामना न करना पड़े। सुन्दर भवनों का निर्माण कर बहुत कम जगह में बहुमंजिलें मकानों का निर्माण कर बहुत लोगों को कम जगह में स्थान सुलभ कराया जा रहा है। ये सब पर्वतों से प्राप्त द्रव्यों का कार्य है। पहले रहने के लिए बहुत जगह की आवश्यकता होती थी किन्तु बहुत कम जगह में अच्छी–अच्छी सुविधाओं का विकास कर लिया जा रहा है। जंगलों का, बगीचों का कुओं का अनुकरण कर मकानों में ही सुन्दर–सुन्दर एवं छोटे–छोटे बगीचे, स्वीमिंग पुलों का विकास कर प्रकृति की संपदा को बहुत कम जगह में समेट कर उसके आनन्द का अनुभव किया जा रहा है। पहले मनुष्यों को प्राकृतिक चित्रों को देखने अथवा उससे रूबरू होने के लिए भ्रमण करना पड़ता था लेकिन अब सारी सुख सुविधाओं के साधन बन गये हैं। इसलिए मकानों में उनके लिए पहले से ही उनके लिए स्थान सुरक्षित कर दिया जाता है।

पर्वतों में ही हीरे, कोयला, पारस आदि द्रव्य पदार्थों की प्राप्ति होती है। पर्वत हमारी खनिज संपदा है। पर्वतों से प्राप्त कोयला से रेलगाड़ियाँ उद्योग धंधे

चल रहे हैं जो हमारी आय के मूल स्रोत हैं। पर्वतों पर नए–नए प्रयोग किये जा रहे हैं। पूरा जन–जीवन ही हमारा पर्वतों से ही चल रहा है।

ये पक्षिषः प्रथममम्बुनिधिं गतास्ते येऽपीन्द्रपाणितुलिता युघलूनपक्षाः।
ते जग्मुरद्रिपतयः सरसीर्विगाढुमाक्षिप्तकेतुकुश सैन्य गजच्छलेन।। [1]

जो पर्वत बड़े–बड़े थे उनके पंखों को इन्द्र के द्वारा[2] काटे जाने से कुछ समुद्र में चले जाने से और कुछ पताका तथा झूल वाले सेना के हाथियों के कपट से स्नान करने के लिए नदियों को प्राप्त किये। वर्तमान समय में बड़े–बड़े पर्वतों को मशीनों के माध्यम से उन्हें छोटा किया जा रहा है वहां पर शहरों को बसाया जा रहा है।

आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बितांग
मूर्मौ महत्यभिमुखापतितं निरीक्ष्य।
क्रोधादधांवदपभीर भिहन्तुमन्यनागा
भियुक्त इव शुक्तमहो महेभः।। [3]

जलाशय के तरंग में प्रतिबिम्बित शरीर वाले सामने पड़े हुए, आने को ही देखकर मानों दूसरे हाथी से आक्रान्त के समान गजराज निर्भय हो मारने के लिए क्रोध से दौड़ा। उसकी मूर्खता आश्चर्यजनक है परन्तु गजराज के लिए यह उचित ही है।

महाकवि भारवि ने गन्धर्व देवांगनाओं का वर्ण बहुत मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है– गन्धर्वगणों से शुक्त होकर देवांगनायें वन में बिहार करने की इच्छा से अनेक विध सुख–साधनों से सम्पन्न तथा अत्यन्त सुन्दर नगर को भी छोड़कर सघन वन में प्रवेश करती हुई अपनी कान्तिछटा से वन–लताओं को प्रकाशित करती हुई बिजली की तरह रूप। वन मालाओं से लिपटे हुए एवं पुष्परस का पान

---

1. शि०पा०व० 5/31
2. नीतिशतकम् श्लो० 29
3. शि०पा०व० 5/32

करने वाले भ्रमरों से युक्त चंचल किशलयों वाली अशोक यष्टि को देखती हुई परम आनन्द का अनुभव करने लगी। वर्तमान समय में उन्हीं का अनुकरण फिल्मों में देखा जा रहा है।

महाकवि भारवि और माघ ने सूर्यास्त का वर्णन कर समाज को यह उपदेश देना चाहा है कि जिस प्रकार सूर्य उदय होता है धीरे–धीरे उसका प्रकाश अथवा तेज बढ़ता जाता है। जब वह अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर लेता है तब धीरे–धीरे मन्द पड़ता जाता है लेकिन वह समाज को शिक्षा प्रदान करता है कि उसी प्रकार मनुष्य का जीवन अपने विकास और अस्त का है। उसी समय में उसे यशकीर्ति धर्म–कर्म इत्यादि। ऐसे कार्य करने है कि जिससे आने वाले लोगों को अथवा आगे की पीढ़ी को हमसे शिक्षा मिले। प्रकृति नियम चलता रहता है। सत–रज–तम ये तीन गुण हैं।[1] सत प्रकाशयुक्त है, रज चंचल अथवा चलायमान है, तम भारी अथवा अंधकारमय है।[2] जो सूर्य का प्रकाश होता है वह सत का द्योतक है जब रात्रि आती है तब तम की अधिकता होती है लेकिन जो क्रिया करती है वह रज है। रज अपनी क्रिया स्थिर कर दे तो पूरी प्रकृति ही जड़वत हो जायेगी। संसार की सभी वस्तुयें अचल ही रहेंगी। उसी प्रकार महाकवि ने सुन्दर सूर्यास्त का वर्णन कर यह प्रतिपादित किया है कि भगवान भास्कर जब अस्ताचल की ओर गमन करते है तब एक सुन्दर सायम् का आगमन होता है। सूर्य के बगैर सारा संसार अंधकार मय है तो चांद के बगैर सारा संसार गर्म ही रहेगा। एक शीतलता प्रदान करता है तो दूसरा तेज।

भगवान् सूर्य पूरे दिन की अशांति के बाद अस्ताचल की ओर बढ़ रहे हैं। जिस प्रकार कोई मनुष्य पूरे दिन कार्य करने के पश्चात् सायं थका हुआ घर वापस होता है। उसी तरह सूर्य भी अपने गन्तव्य स्थान को जा रहे हैं। जिस प्रकार आश्रित्य पुरुष अपने आश्रय का परित्याग कर देता है। उसका महत्व बहुत

---

1. वेदान्तसार पृ0 85
2. सांख्यकारिता – 13

कम हो जाता है और वह उदास अथवा मलिन रहता है। उसी प्रकार सूर्य किरण के अर्धभाग के अस्त हो जाने पर, सूर्य का किरणपुन्ज जो सूर्य का आश्रय परित्याग करने के कारण लघु हो जाता है तथा वंदिश का परित्याग कर चुका है पश्चिम दिशा में अस्त होकर निश्प्रभ हो गया है। मशीन भी कार्य करते करते अपने मूल रूप में परिवर्तित होती है, अथवा जब तक नई रहती है तब तक अच्छा कार्य करती है लेकिन भगवान् भास्कर हमेशा इसी प्रकार तेज प्रदान करते रहते हैं।

प्राँजलावपि जने नतमूर्ध्नि प्रेम तत्प्रवणचेतसि हित्वा।

संध्ययाऽनुविदधे विरमन्त्या चापलेन सुजनेतर मैत्री।। [1]

धीरे–धीरे जब सूर्य का गमन हो गया तब संध्या आयी लोगोंने उसका स्वागत सत्कार किया लेकिन उसने किसी की प्रतिक्षा नहीं की वह भी दुर्जनों की तरह चली गयी।

रात्रिरागमलिनानि विकासं पंकजानि रहयन्ति विहाय।

स्पष्टतारकमियाय नभः श्रीर्वस्तुमिच्छन्ति निरापदि सर्वः।। [2]

सूर्य के चले जाने पर उनके सहचर कमल भी उसी की तरह चले गये। जिस प्रकार सूर्य उदय होता है उसी प्रकार कमल के पुष्प खिलते है जब अस्त होता है तब कमल भी अपने स्थान को गमन करते हैं अर्थात बन्द हो जाते हैं। चन्द्रमा के उदय होने पर कुमुद का विकास होता है एक विरल ही संयोग है कि सूर्य अस्त हो रहा है और चन्द्र उदय तो वहीं पर कमल बंद हो रहा है और कुमुद खिलने को तत्पर है।

उज्झती शुचमिवाशु तमिभामन्तिकंव्रजति तारकराजे।

दिक्प्रसादगुणमण्डनमूहे रश्मिहास विशर्द मुखमैन्द्री।। [3]

---

1. किरा0 9/10
2. किरा0 9/16
3. किरा0 9/18

प्राची दिशा ने चन्द्रमा को देखकर अन्धकार को दूर भगाकर निर्मलता रूप गुण से युक्त तथा हास के समान किरणों से विशद मुख धारण किया अर्थात् जिस प्रकार विरहणी अपने पति को सामने देक्ष खुस हो जाती है उसी प्रकार प्राची दिशा का अग्रभाग चन्द्रमा को उदित देख अन्धकार को दूर भगा कर प्रकाशित हो उठा। रात्रि के आगमन से औरतें खुश होने लगीं, क्योंकि उनके पतिदेव घर वापस आ गये और कामदेव भी उन पर सवार होने लगे।

प्रस्थिताभिरधिनाथनिवासंध्वंसितप्रिय सखी वचनाभिः।

मानिनीभिरपहस्तितधैर्यः सादयन्नपिमदोऽबललम्बे।। [1]

जो अप्सरायें मान कर बैठी थीं वे अपनी प्रिय सहेलियों की बातों की आनाकानी करके पतिदेव के घर के लिये चल पड़ी। मद, जिसने उन्हें धैर्य भ्रष्ट कर दिया और जिसने उनके शरीर और मान को कृश कर दिया था, ये उसी का सहारा लीं। शीघ्रता से प्रिय के समीप जाती हुई सुरयुवतियों के मुखमण्डल ने जिनके कपोल श्रमकंण से आवृत्त हो रहे थे और जिस पर बनी हुई पत्रलेखा और तिलक की रचना मिट रही थी। अपनी शोभा से पूर्णचन्द्रमण्डल को भी जीत लिया।

महाकवि ने स्त्री के मान परित्याग का सुन्दर वर्णन किया है–

उच्यंतांसवचनीयमशेषंनेश्वरेपरूषतासखिसाध्वी।

आनयैनमनुनीय कथं वा विप्रियाणि जनयन्नुनेयः ।। [2]

नायिका – उस से स्पष्ट कह देना कुछ बात छिपा न रखना।

सखी – पति के साथ क्रूरता का व्यवहार अच्छा नहीं।

नायिका – अच्छा तो फिर किसी प्रकार समझा–बुझाकर यहाँ बुला लाना।

सखी – अप्रियकारी उस व्यक्ति के साथ अच्छा व्यवहार करके क्यों बुलाया गया?

---

1. किरा० 9/36
2. किरा० 9/39

किंगतेन न हि युक्तमुपैतुंकः प्रिये सुभगमानिनि मानः।

शोभितामिति कथासु समेतैः कामिभिर्बहुरसा धृतिरुहे।। [1]

नायिका – तो फिर उसके पास जाना ठीक नहीं, वहां जाने का प्रयोजन ही क्या?

सखी – ऐ अपने को सुन्दरी मानने वाली! प्रिय के विषय में मान ही क्या ?

सुर–सुन्दरियाँ परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप कर रही थीं कि उनके प्रेमीजन स्वयं उपस्थित हो गये और उनकी वार्तालाप को सुनकर असीम आनन्द प्राप्त किये। इस प्रकार कवि ने लोकमर्यादा, संस्कृति और आधुनिकता का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन प्रस्तुत किया है। उधर नारी को पूर्ण स्वतंत्र वार्तालाप के लिए प्रेरित किया। इधर उनके अभिमान को भी नष्ट किया। पति और पत्नी के व्यवहार की चर्चा निम्न पद्य से प्रस्फुटित होती है–

कान्तसंगम पराजितमन्यौ वरुणीरसनशान्तविवादे।

मानिनीजन उपाहितसंधौ संदधे धनुषि नेपुमनंगा।। [2]

प्रिय के संयोग से मानिनी जन का क्रोध ठंडा पड़ गया। मदिरा के आस्वादन से कलह भी मिट गया और अब उन्होंने अपने प्रिय के साथ सन्धि भी कर ली। अतः कामदेव ने धनुष की प्रत्यन्चा पर शर सन्धान नहीं किया अर्थात् वही किया जो उसका कार्य है।

निशावसान की वायु इस प्रकार मन्द–मन्द चल रही थी कि मानो वह सुर सुन्दरियों की जिन्होंने रतिखेद से अपनी आंखों को थोड़ा निमीलित कर रखा था, सेवा करने जा रही हो और उसने अटारियों पर पुष्पमाला, मद्य तथा अलंकारादि सामग्रियों को बिखेर दिया।

महाकवि माघ ने चन्द्रमा के माध्यम से कहा कि–

रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसवपिताम्।

अविलम्बित क्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमुच्चारितम्।। [3]

1. किरा0 9/40
2. किरा0 9/52
3. शि0पा0व0 9/33

रात्रि को प्राप्त कर चन्द्रमा शोभित हुआ तथा इस चन्द्रमा ने भी उस रात्रि को शोभित कर दिया, क्योंकि बड़े लोगों का स्वभाव होता है कि परस्पर में एक दूसरे का तत्काल उपकार कर दिया करते हैं अहो यह आश्चर्य है। चन्द्रमा ने दिन में अत्यन्त उष्ण किरणवाले की किरणों से ताड़ित, निरन्तर भ्रमर ध्वनियों से मानो रोती हुई सी कुमुदिनीरूपी अपनी स्त्री को किरणों से बार–बार सहलाता हुआ आश्वस्त किया। औषधिपति अमृत की सरस किरणों से कमलनियों के शरीर का परिमार्जन करता हुआ सर्वत्र फैले हुए अत्यन्त संतप्त करने वाले मानरूप विष को उतार रहा था। अर्थात् चन्द्रमा अमृतरस किरणों के स्पर्श से कमलनयनी रमणियों के सब शरीर में व्याप्त एवं अत्यन्त सन्तापदायक मान को उस प्रकार नष्ट कर रहा था, जिस प्रकार वैद्य औषधियुक्त गीले हाथ से स्पर्शकर लोगों के सर्वत्र शरीर में व्याप्त तथा अत्यन्त दाहकारक विष को झाड़कर नष्ट करता है।

उदयमुदित दीप्तिर्याति यः संगतौ मे,

पतति न वरमिन्दुः सोऽपरामेष गत्वा।

स्मितरूचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति,

स्फुरति विशदमेषा पूर्वकाष्ठांगनायाः।।[1]

अभी तो सूर्य अस्त हो रहा था और चन्द्रमा उदय लेकिन अब सूर्य उदय होने को तत्पर है तो चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है। यहां पर एक का तिरोभाव तो दूसरे प्रादुर्भाव देखने को प्राप्त हो रहा है। मन्द होती हुई प्रकाश श्री वाली दीपक की लौ निरन्तर निर्निमेष होकर सम्पूर्ण रात्रि में अनुरागी पुरुषों एवं अनुरागियों को नयी–नयी सुर क्रीड़ाओं को कौतुक से अत्यन्त देखकर मानों निद्रावश इन मकानों के नेत्रों के समान घुस रही है। हर्ष तथा कामवासना से उन्नत एवं युवावस्था से गर्वयुक्त रमणियों के सुरत के वेग से उत्पन्न थकावट में होने वाले पसीने की बूंदों को दूर करने में निपुण विकसित हुए कमलों के गन्धों से भ्रमर समूहों को

1. शि०पा०व० 11/12

अन्धा तथा मकरन्द को सुगन्धयुक्त करती हुई मन्द–मन्द वह रही है। वायु के चलने से प्रफुल्लित होने लगा। कोई व्यक्ति कितना भी तनावयुक्त हो उसे इस प्रकार की वायु का अनुभव होने पर वह तनाव से मुक्त अर्थात् रहित हो जाता है। वातावरण ही मनुष्य को कष्ट देता है और वही वातावरण सुखप्रदान करता है।

व्रजति विषयभक्ष्णामशुमाली न याव

तिमिरमरिवलमस्तं तावदेवारूणेन।

परपरिभिवि तेजस्व तन्वतामाशु कर्तुं

प्रभवति हि विपक्षोच्छेदमग्रेसरोऽपि।। [1]

सूर्य के दृष्टिगोचर होने से पहले अरुण ने सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट कर दिया दूसरों के परिभव कारक तेज को फैलाने वालों का अग्रसर भी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए समर्थ होता है। प्रत्येक वन में कमल–समूहों को कम्पित करने वाली, लता–प्रतान को अस्त व्यस्त करने वाली सम्पूर्ण वृक्षों के पुष्पों को हिलाने डुलाने वाली तथापि कहीं पर स्थिर नहीं होती हुई यह हवा, रमणियों के पुष्पों के मर्दन से अधिक सुरभित भवनों के भीतर स्थिर हो गयी है।

प्रकटमलिनलक्ष्मा भ्रष्ट पत्रावली कै

रधिगतरति शोभैः प्रत्युषः प्रेषितश्रीः।

उपहसित इवासौ चन्द्रमा कामिनीनां

परिणतिशरकाण्डा पाण्डुभिर्गण्डभागैः।। [2]

प्रातः काल में श्रीहीन होने से स्पष्ट कलंकवाले चन्द्रमा को नष्ट हुई पत्र रचना वालें, रतिकाल की शोभा को प्राप्त लिये हुए और परिपाक सरकण्डे के समान पाण्डु वर्ण रमणियों के कपोलों ने मानों हँस दिया अर्थात् प्रभात काल के कान्तिहीन चन्द्रमा की अपेक्षा रमणियों के उक्त रूप कपोल की शोभा अधिक हो गयी। अर्थात् चन्द्रमा के समान उसका कपोल हो गया।

---

1. शि०पा०व० 11/25
2. शि०पा०व० 11/30

जप करते हुए नियमतत्पर के ओष्ठ्य अक्षरों से बार–बार बन्द तथा दूसरे अक्षरों से दिखलाई पड़ता हुआ बाहर निकलती हुई प्रभा से युक्त दाँतोवाला मुख प्रतिक्षण तथा खुलते हुए सुन्दर मोती के बन्द शुक्तिपट की समानता को प्राप्त करता है।

नवकनकपिशंगंवासराणांविधातुः

ककुभि कुलिशपाणेर्भातिभासांवितानम्।

जनित भुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा

ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौवनी लार्चिः।। [1]

पूर्व दिशा में नये सोने के समान पिंगलवर्ण, सूर्य की किरणाों का समूह पानी को जलाकर संसार को जलाने के लिए उद्धृत महासमुद्र के ऊपर जलती हुई वडवाग्नि[2] ज्वाला के समान शोभता है। फैली हुई रस्सियों के समान किरणों से चंचल पक्षियों के कलरवरूप कोलाहल को करती हुई दिशाएं बड़े भारी घड़े के समान इस सूर्य को समुद्र के पानी के भीतर से बाहर निकाल रही हैं। रात्रि में समुद्र के पानी में डूबा हुआ यह सूर्य भीतर में स्थित वडवाग्नि की ज्वाला से मानों बहुत ही सन्तप्त हो गया है। क्योंकि ऊपर निकलता हुआ यह सूर्य इस समय जलती हुई खैर की लकड़ी के समान शरीर को धारण कर रहा है। क्षणमात्र ऊपर स्थिर हुए सूर्य से केवल उदयाचल ही नहीं, किन्तु ये सभी पर्वत, मानों क्षणमात्र ऊपर में स्थित नवीन किरण समूह से विकसित ओढ़उल के फूलों के गुच्छों से बनाये गये शिरोमाल्य को धारण कर रहे हैं। इस प्रकार सूर्य उदय होते हुए अपने पूर्ण विकास को प्राप्त कर रहा है। सूर्य की लालिमा एवं किरणों से ओस की बूंद ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे कि सीपि में रजत का भान होता है। सूर्य की किरणें मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, जिस प्रकार स्वास्थ्य के लिए अन्न–जल आवश्यक है उसी प्रकार स्वास्थ्य को रोगमुक्त रखने के लिए ऊष्णता

1. शि०पा०व० 11/43
2. नीतिशतकम् पृ० 112

आवश्यक है। मनुष्यों को मकानों का ऐसा निर्माण करना चाहिए, जिसमें सारी सुविधायें हो सकें। जिसमें तालाब, बगीचा एवं सूर्य की रोशनी इत्यादि की व्यवस्था भी रहे।

नदियाँ प्रातः काल की प्रभा से मिश्रित (अतएव) परिपाक मदिरा के समान अरुण वर्ण[1] में तथा दोनों तटों से अवरुद्ध जल को सूर्य के द्वारा किरण रूपी वाणों से सब ओर क्षत अन्धकाररूप गजों के समूह के रक्त के समान धारण करती हुई शोभ रही है। तप के बल पर अज्ञात से ज्ञात किया जाता है। होमादि करने से वातावरण को शुद्ध किया जाता है। महात्रऋषि कण्व प्रातः काल जब हवन करने के लिए अग्निशाला में प्रविष्ट हुए तब अशरीरिणी ध्वनि ने ही यह बात कह दी[2] कि–

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः ।

अवेहि तनयांब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव ।।[3]

हे ब्रह्मन! तुम अपनी पुत्री शकुन्तला को दुष्यन्त के द्वारा प्रजा के कल्याण के लिए अपने तेज–वीर्य इसमें स्थापित कर देने से उसी प्रकार गर्भवती समझो जिस प्रकार अग्नि के तेज से शमी वृक्ष गर्भवान् हो जाता है। शमी वृक्ष में अग्नि का निवास रहता है। इसलिए शमीवृक्ष के काष्ठ से अरणि–अग्नि मन्त्रार्थ आधार काष्ठ बनाकर पीपल के डण्डे से उसे मलकर यज्ञ आदि में अग्नि उत्पन्न की जाती है, जिसे बहुत ही पवित्र बताते हैं, शमी वृक्ष में अग्नि के अनुसार अग्नि अपने में भगवान शंकर का तेज मिलने पर न सहकर भागी और जल में जाकर छिपी। वहां अपने को सुरक्षित न पाकर शमी के वृक्ष में समा गई।[4] बाद में वहां से देवताओं ने उसे खोजा।

1. शि०पा०व० 11/49
2. अ०शा० पृ० 179
3. अ०शा० 4/4
4. महाभारत (अनुशासनपर्व)

दूसरी कथा– इसमें भी इसी तरह महर्षि भृगु के शाप के भय से भागने और पुनः देवताओं के द्वारा शमी वृक्ष में खोजे जाने का वृतान्त है।[1] प्रकृति से प्राप्त होने वाली वस्तुओं का चित्रण महाकवि कालिदास ने अपने पद्य में किया है जो निम्नलिखित है–

क्षौमकेनचिदिन्दुपाण्डुतरुणामांगल्यमायिष्कृतं

निष्ठ्यूतरश्चरणोपभोग सुलभो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येभ्यो वनदेवता करतलैरापर्वभागोत्थितै

र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।।[2]

किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान पाण्डुरवर्ण मांगलिक रेशमी साड़ियां प्रकट की, किसी ने पैरों में लगाने के निमित्त महावर दिया और किसी वृक्ष से बन देवताओं ने कलाई तक पल्लवों के समान कोमल हाथ बाहर निकाल कर नाना प्रकार के वे आभूषण भी दिये।

कालिदास ने प्रकृति को सजीव एवं सचेतन माना है। मेघदूत में अचेतन मेघ दौत्य कर्म ही करता, बल्कि प्रकृति विरहीयक्ष तथा विरहिणी यक्षप्रिया की समस्त मर्मदावक वेंदना को परस्पर बांट देता है।[3] कालिदास की पार्वती और शकुन्तला प्रकृति से सुकुमारियां हैं। प्रकृति और मनुष्य का आत्मीयता बोध कालिदास के अनेक सन्दर्भों में व्यक्त हुआ है।[4] प्रकृति, मनुष्य जीवन से भिन्न वस्तु नहीं है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति में मनुष्य का तथा मनुष्य जीवन में प्रकृति का दर्शन मिलता है। कालिदास की कुमारियां लतापादपों को स्नेह से सींचती हैं[5] और विनोदपूर्ण संलाप भी करती रहती हैं। निसर्गसुन्दरी शकुन्तला के सानिध्य में उन्हें आम्रवृक्ष लतायुक्त दिखाई पड़ता है। प्रियम्बदा

1. महाभारत (शल्यपर्व) 48/17–20
2. अ०शा० 4/5
3. मेघदूतम् पृ० 103
4. अ०शा० पृ० 21
5. अ०शा० पृ० 64

कहती है कि शखि शकुन्तले ! थोड़ी देर यहां ठहरो तुम्हारे पास रहने से यह लता सनाथ सा दीखती है।

प्रकृति की गोद में बिहार करते समय मनुष्य को जीवन का पूरा आनन्द मिलता है और प्रकृति के सच्चे सौन्दर्य का दर्शन होता है। शकुन्तला के प्रथम दर्शन के समय राजा दुष्यन्त के मुख से सहसा निकल पड़ता है कि यदि महलों के लिए दुर्लभ यह स्वरूप आश्रम वासिनी बालिकाओं में दीख रहा है तो मानों वनलताओं ने अपने गुणों से उद्यान की लता को जीत लिया है।

शुद्धान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनों यदि जनस्य।

दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।। [1]

इनके मत से कृत्रिम वातावरण की अपेक्षा वन के प्राकृतिक वातावरण में अधिक सौन्दर्य है। प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं है वह भी चेतनों सा व्यवहार करती दिखाई देती है। जैसे चेतन प्राणी दूसरे के सुख दुःख में सहायता करते हैं वैसे ही प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं है वह भी चेतनों सा व्यवहार करती दिखाई देती है। जैसे चेतन प्राणी दूसरे के सुख दुःख में सहायता करते हैं वैसे ही प्रकृति भी करती है। शकुन्तला की विदाई के समय तपोवन के वृक्ष विविध प्रकार के वस्त्र एवं आभूषण देकर कण्व का सहयोग करते हैं।[2] प्राकृतिक चित्रण से आधुनिकता को कुमारसम्भव में कालिदास ने कहा है कि–

यत्रांऽशुकाक्षेपलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषांऽागनानाम्।

दरीगृहद्वार विलम्बिबिम्बास्तिरस्कारिष्यों जलदा भविन्त।। [3]

जिस पर्वत हिमालय में वस्त्रापहरण से लज्जित किन्नरियों के रहस्य गोपनाथ गुहारूप गृहद्वार पर रखने वाले मेघ ही अकस्मात् आकर पर्दा बन जाते हैं। सात सप्तऋषियों के द्वारा हाथ से चुन लिए गए से शेष, हिमालय के ऊपर

1. अ०शा० 1/17
2. अ०शा० पृ० 186
3. कुमारसम्भव 1/14

के जलाशयों में उगे हुए कमलों को नीचे घूमता हुआ सूर्य ऊर्ध्व किरणों से विकसित करता है।[1] कवि कालिदास ने प्रकृति के सौन्दर्य में सूर्य का वर्णन किया है–

यात्येकतोऽस्तशिखरं परितोषधीना

माविष्कृतोऽरूणपुरः सर एकतोऽर्कः।

तेजोद्वयस्य युगपदव्यसनोदयाभ्यां

लोकोनियम्मत इवात्मदशान्तरेषु।।[2]

एक ओर पश्चिम में तो औषधियों के पोषक स्वामी भगवान् चन्द्रमा अस्ताचल पर जा रहे हैं दूसरी ओर पूर्ण दिशा में भगवान् भाष्कर सूर्य अब उगना ही चाहते हैं। इस प्रकार एक ही साथ दो तेज मण्डलों के उत्थान और पतन होने से इस संसार को भी नाना प्रकार की सूचना प्राप्त हो रही है। एक ओर चन्द्रमा का अस्त होना और दूसरी ओर सूर्य का उदय होना। इसी प्रकार इस विश्व में भी एक का अधः पतन होता है तो वह रोता है उसी समय दूसरे का अभ्युदय होता है तो वह हंसता है।[3] यही संसार की दशा है। सूर्य–चन्द्रमा के दृष्टान्त में इसी दशा को सूचित करना कवि का लक्ष्य है। जब विश्व के नियन्ता, ये दोनों तेज अस्त एवं उदय के वश में है तो साधारण मनुष्यों की क्या गति है?

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे

दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबालजनस्य

दुःखानि नूनमतिनावत्रसुदुःसहानि।[4]

चन्द्रमा के अस्त होते ही वही कुमुदिनी है जो चन्द्रमा के रहते विश्वसित रह कर हृदय को आनन्द देती थी, अब उसकी शोभा केवल याद करने की बात

1. कुमारसम्भव 1/16
2. अ०शा० 4/2
3. अ०शा० पृ० 174
4. अ० शा० 4/3

रह गयी है। अवलाजनों के लिए अपने प्रिय के वियोग से जनित दुःख को सहन करना बड़ा ही कठिन होता है। ठीक ही है, प्रिय के वियोग में स्त्रियों की यही दशा होती है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कवि कालिदास ने प्रकृति के सजीवता का चित्रण किया है–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुम प्रसूतिसमये यस्या भत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वेसुज्ञायताम्।। [1]

जो शकुन्तला जल से तुम्हारा रोचन किये बिना कभी भी जल तक नहीं पीती थी, जो पत्र पुष्पों के बने हुए आभूषणों की प्रिय होते हुए भी स्नेह से तुम्हारे कोमल पत्रों तक को नहीं तोड़ती थी और जो तुम्हारे पहले–पहल फूल निकलते समय अनेक उत्सव एवं आनन्द मनाती थी, वही शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। आप लोग सभी उसे जाने की अनुमति दीजिये। बन में साथ ही रहने से बन्धुभाव को प्राप्त हुए इन वृक्षों ने शकुन्तला को पतिगृह जाने की अनुमति दे दी है, क्योंकि उन्होंने मधुर एवं मनोहर कोकिल[2] का शब्द ही अपने उत्तर में उच्चरित किया है। शकुन्तला का मार्ग बीच–बीच में कमल की लताओं से हरे–भरे सरोवर से युक्त मन को हरने वाला घनी छाया से युक्त वृक्षों से सूर्य की किरणों के दुःखद सन्तापों से रहित कमलों की रज मृदुल[3] और शान्त, मन्द–मन्द पवन से सुखप्रद और कल्याणकारी हो। मनुष्य को प्रकृति से गहरा लगाव हो जाता है क्योंकि प्रकृति में ही पला–बढ़ा वह उसे त्यागना नहीं चाहता है।

1. अ०शा० 4/8
2. अ०शा० पृ० 195
3. अ०शा० पृ० 196
4. अ०शा० पृ० 197

उसी प्रकार शकुन्तला के पैर आश्रम को छोड़ना नहीं चाहते हैं– *"आश्रमदं परित्यजन्त्या दुःखेन में चरणौ पुरतः प्रवर्तते"।*[4] मनुष्य प्रकृति को नहीं त्यागना चाहता है– उसी प्रकार प्रकृति भी छोड़ना नहीं चाहता है–

उद्‌गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुंचन्त्यश्रूणीव लताः।।[1]

ये हिरण और हिरणियाँ मुख से कुशा के ग्रासों को भी छोड़कर दुःखित हो खड़ी है मोर तथा मोरनियों ने नाचना बन्द कर दिया है और ये लताएं भी अपने पुराने पत्रों को छोड़ने के बहाने से मानों आंसू ही बहा रही हैं।

वनभूमि राजर्षि के अधिष्ठित होने से गन्धर्वों और अमर रमणियों के तेज को अपहरण कर ली, क्योंकि परम प्रभाव सम्पन्न परम तेजस्वी और विजयी तपस्वियों के लिए कार्य ऐसा नहीं जो दुष्कर हो। जिस वन में मुनि निवास करते थे उस वन के वृक्ष लताओं के फल–फूलों के चुन लेने पर भी वे हरे–भरे दिखलाई पड़ते थे। अतएव वनों की शोभा से वे अधिक शोभा सम्पन्न थे, प्रयुक्त चिन्ह से जिस तरह ऋतु का निश्चय होता है उसी तरह सुर सुन्दरियों ने महामुनि अर्जुन के प्रभाव का निश्चय किया। अशोक बृक्ष[2] जिसकी शाखायें गीले वल्कलवस्त्र से झुकी हुई थी और उनके सुकोमल पल्लव मसल गये थे, उन देव वधूटियों के अतिशय सम्मान का भाजन बन गया। क्योकि उत्तम गुणशाली व्यक्तियों की परिचर्या भी उत्कर्ष की वृद्धि करती है।

यमनियमकृशीकृतस्थिरांक परिददृशेविधृतायुधः सताभिः।

अनुपमशमदीप्ततागरीयान् कृतपदपंलिरथर्वणेव वेदः।।[3]

अमर ललनाओं ने तपस्वी अर्जुन को देखा कि उनके अंग आदि नियम के पालन करने से क्षीण थे फिर भी सशस्त्र थे। उस समय उन्हें साक्षात् मूर्तिधारी

1. अ०शा० 4/7
2. किरा० पृ० 211
3. किरा० 11/10

चौथे वेद का भान हुआ जो सर्वोत्तम अभ्युदय काण्ड और अभिचार काण्ड से उदग्र है और जिसके मन्त्रों की रचना महामुनि वशिष्ठ के द्वारा हुई है।[1] नेत्रानन्दकर तथा आकाश व्यापी किरणों से आवृत्त मृगलांच्छन की तरह महामुनि एक ही शिला पर आसीन थे तो भी इन्द्रनील पर्वत के सम्पूर्ण शिखरों को व्याप्त कर लिये थे। शीघ्र ही सुर युवतियों के आदेशानुसार गन्धर्वों ने मनोरम वीणा और मृदंग[2] बजाया पुनः एक ही काल में छह ऋतुओं का अलग–अलग लोभ वनों में आविष्कृत करके विस्तृत कर दिया। गौर, नारद से आकाश आच्छन्न हो सुशोभित होने लगा। विपुल्लता की दमक स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी तथा जल भार से गम्भीर मेघगर्जन, जिससे रतिकालिक प्रणयिजनों का कष्ट दूर हो गया था दिगन्तों में गूंज उठा। वायु प्रत्येक दिशाओं की तरफ संचार करते हुए अर्जुन के नाम के पुष्प विकास के कारण अद्‌भुत सुगन्धित होकर प्राणीमात्र को तृप्त कर दिया। सब के हृदय में ऋतुराज का आविर्भाव हो गया। सबों ने धैर्य का परित्याग कर दिया और रति के प्रति सबके सब स्तब्ध हो गये। इस तरह से सब जीवलोकों ने और ही अधिक शोभा को धारण किया। वर्षाऋतु की उपमा वर के साथ और शरद ऋतु की उपमा वधू के साथ दी है।[3] कवि ने मृणाल तन्तुरूप कंकुण को तथा कुमुनिदी के वनरूप वस्त्र को धारण करती हुई शरदरूपी वधू के, जो नील झिण्टी के पुष्प को धारण करती है। सुकोमल कर कमलों का आलम्बन वर्षा ऋतु रूप वर ने किया। मतवाले मयूरों का कलकूजन राजहंसों के बिहार के साथ तथा कुमुदों के वन कदम्ब पुष्प की दृष्टि के साथ होकर अनुपम शोभा धारण करने लगे। क्योंकि उत्कर्ष गुणों का संयोग अतुलनीय गुणों का पोषक होता है। अतः समूह आसपास के कदम्बपुष्प पराग से व्याप्त जो केतकी का पुष्प, पराग से भरा हुआ था, उसे छोड़कर मकरन्द पूर्ण बन्धूक पुष्प को मलिन करने लगा।

1 किरा० पृ० 211
2 किरा० 10/18
3 किरा० पृ० 217

प्लुतमिव शिशिरांशोरंशुभिर्यभिशासु

स्फटिकमयमराजद्राजताद्रिस्थलाभम्।

अरुणितमकरौरैर्वेश्म गाम्भीर जाम्भः

स्नापित मिव तदैतदभानुर्भाति भानोः।। [1]

कैलासपर्वत के तट के समान जो मकान रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से लिप्त होकर स्फटिक मणिरचित के समान शोभता था, वही यह मकान सूर्य की मृदु किरणों से कुदुम्ब के पानी नहलाये गये के समान शोभता है। सरस नखक्षत्रों में सटे हुए केशों को जब प्रियतम छुड़ाने लगा तब सी—सी करने से दिखलायी पड़ते हुए रमणियों के दांतों पर पड़ती हुई लालसूर्य की किरणों से पद्रागमणि के समान शोभने लगे। कमलवन, प्रिय लोगों के नेत्रों के विषय ग्रहण करने की शक्ति का कारणभूत, नेत्रों के समान सहस्र किरणों को धारण करते हुए, आकाश के बीच में चलने वाले हरित वर्ण के घोड़ो वाला यह सूर्य इन्द्र के समान अत्यधिक महिमा से अर्थात् सर्वत्र फैलने से सम्पूर्ण लोकों में आक्रान्त किये हुए अन्धकार को सम्यक प्रकार से नष्ट कर रहा है।

चिरमति रसलौल्याइन्धनं लम्भितानां

पुनरयमुददया य प्राप्य धाम स्वमेव।

दलितदल कधारः षट्पदानां सरोजे

सरभस इव शुप्तिस्फोट मर्कः करोति।। [2]

यह सूर्य के लिये फिर अपने ही तेज को पाकर हिरणियों में अत्यन्त लोलुपता के कारण चिरकाल तक कमलों में बन्धन को प्राप्त हुए भ्रमरों को दल रूप किवाड़ खोलकर मानों बन्धन से मुक्त सा कर रहा है। समस्त लोक से प्रकाशित करने वाले सहस्र किरणों से युक्त मूर्तिवाले सूर्य के चिरकाल तक दूसरे

1. शि०पा०व० 11/53
2. शि०पा०व० 11/60

नेत्र के समान प्रकाशित होते रहने पर इस समय यह दिन किरणहीन चन्द्रमा से, वाणी सी दिखलाई पड़ रहा है।[1]

यद्यपि संस्कृत साहित्य के कवियों ने हिमालय को अपना वर्ण्य विषय माना है। परन्तु प्रकृति के सुकुमार कवि कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में हिमालय का सुन्दर एवं सजीव चित्रण किया है। कालिदास ने भी औषधियों एवं रत्नों का आकर (खजाना) हिमालय को बताया है।[2] इस हिमालय के उन्नत शिखरों पर गंगा प्रवाहित होती है। पत्थरों के ढेर के कारण जब उनका जल प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है तो पुनः उन प्रस्तरों के ढेर पर से उतरने लगता है। उस समय असंख्यजन कंण ऊर्ध्व गति से फब्बारे की तरह छूटते हैं। तो माता गंगा शुभ्रचामर धारण की हुयी सी प्रतीति होती है।[3] बताया जाता है कि पर्वतराज हिमालय वनजन्य पशुओं से युक्त थे उनमें बड़ी संख्या[4] में यूथचर हांथी, सरिसृप, अजगर, सांप और पक्षी आदि पाये जाते थे। पर्वतों और पहाड़ियों की खोह उनके लिए मादों का कार्य करती थी।[5] हिमालय समस्त लोक के मनुष्य को आश्रय देने वाला है। इसके गर्भ में अनेक धातु और मणि गुम्फित हैं। अतएव यह रत्नाकर की छवि को धारण किये हुए हैं। इसका शिखर प्रदेश हिमाच्छन्न और मध्य प्रदेश बहुत विशाल है। इसी मध्यप्रदेश पर मेघमण्डल विचारण करते हैं। इसके तट प्रदेश पर उच्च शिखरों से गंगा आदि सुरसरितायें गिर रही हैं।

—: वैदिक काल में माँ गंगा का उल्लेख :—

ऋग्वेद में सप्तसिन्धुओं को "आपोमातरः"[6] कहकर सृष्टि की माता, ऐसा उल्लेख किया गया है। आर्य नदियों को देवी के रूप में मानते थे। जिसमें

---

1. शि0पा0व0 11/63
2. इ0ऐ0डि0इन अर्ली टे0 ऑफ बु0एण्ड जै0 – पृ0 64
3. किरा0 5/15
4. कुमारसम्भव 1/1 से 10
5. ऐ0 इ0 ऐ0 एण्ड एरियन – पृ0 42
6. ऋग्वेद 8/96/1

गंगा को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त था।[1] ऋग्वेद संहिता के बाद यजुर्वेद सामवेद एवं अथर्ववेद संहिताओं में गंगा का कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। अथर्ववेद संहिता में वरुणावती का उल्लेख हुआ है जिसे लुड्विंग ने गंगा नदी माना है।[2] परन्तु सायण ने इसे एक पौधा माना है।[3] सातवलेकर के अनुसार यह "वारणा" नामक एक औषधि है जो विष को दूर करती है।[4] इस प्रकार अथर्ववेद में प्रयुक्त शब्द औषधि विशेष ही प्रतीत होती है अतः लुड्विग का मत त्याज्य है।[5]

वैदिक कोष[6] में भी गंगा शब्द की व्युत्पत्ति वा उसके विभिन्न नामों का उल्लेख हुआ है। जैमिनीय ब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण, तैतिरीय आरण्यक, तैतरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण, मुण्डकोपनिषद, छान्दयोग्यपनिषद, वौधायन श्रौतसूत्र, मानव श्रौतसूत्र, कात्यायन श्रौतसूत्र, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र इत्यादि विभिन्न ग्रन्थों में गंगा नदी के विभिन्न नाम उत्पत्ति इत्यादि पर विवेचनात्मक वर्णन हुआ है।[7] गंगा के झरने की जलबूंदों की वाहक देवदारू वृक्षों की पुनः–पुनः कंपाने वाली और मयूरों के पंखों को सुलझाने वाली हिमालय की हवा को शिकारी किरात सेवन किया करते हैं।[8] सात ऋषियों के द्वारा हांथ से चुनलिए गए से शिव, हिमालय के ऊपर के जलाशयों में उगे हुए कमलों को नीचे घूमता हुआ सूर्य ऊर्ध्व किरणों से विकसित करता है। ब्रह्माण्ड पुराण में सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। वह निम्नवत है–

शैलानां हिमवन्तांच नदीनान्चैव सागरम्।
गंधर्वाणामधियतिं चक्रे चित्ररथं विधिः।। [9]

1. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री – पृ0 30
2. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री – पृ0 30
3. अथर्ववेद 1/426 (सायण–भाष्य)
4. अथर्ववेद (सातवलेकर) पृ0 25
5. प्राचीन भारत में गंगा पृ0 12
6. वैदिककोष पृ0 126
7. जैमिनीय ब्रा0 2/3, ताण्डव ब्रा0 21/12/3 तैत्रीय, आ0 10/1
8. शतपथ ब्रा0 13/5/4/11 , मुण्डोकोपनिषद 2/19, छान्द्योग्योपनिषद 6/10/1
9. कुमारसम्भवम् पृ0 35

जिसको यज्ञ की साधनभूत वस्तुओं का उत्पत्तिकरण जानकर और जिसके भूभारवहन योग्य बल को देखकर ब्रह्मा ने मूलभाग के अधिकारी सहित की पदवी दी है।[1] सुमेरूगिरि के मित्र एवं मर्यादा के संरक्षक हिमगिरि ने पितरों के मनः संकल्प से उत्पन्न और मुनियों की भी आदरणीय स्वगुणानुरूप मैना नाम की कन्या[2] को वंश की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रों की विधि से ब्याहा। तत्पश्चात मैना ने मैनाक को जन्म दिया। तदनन्तर पर्वतराज हिमालय ने नियमवती मैना में कल्याणी कन्या को जन्म दिया जैसे सम्यक विहित अतएवं विफल न होने वाली नीति में उत्साह शक्ति की सम्पत्ति को जन्म देती है। निर्मल दिशाओं और रेणुरहित पवन से युक्त, शंखनाद के अनन्तर पुष्पवृष्टि से सुशोभित पार्वती का जन्मदिन चराचर प्राणियों को सुखकारक हुआ। जैसे रत्नगिरि की भूमि निवेदिता मेघशब्द से अद्विग्न रत्नशलाका से नितान्त शोभित होती है वैसे ही प्रभा ज्योति से दीप्यमान उस कन्या से माता मैना शोभित हुई। बन्धुजनप्रिया पार्वती को बन्धुजन वंश के नाम से पुकारने लगे अर्थात् पर्वत की पुत्री होने के कारण उसका नाम पार्वती हुआ। फिर जब माता ने ''तप मत करो'' ऐसा उसे रोका तब सुन्दरमुखी पार्वती का नाम ''उमा'' हो गया।[3]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्राकृत चित्रों का आधुनिकता में उपयोग देखा जाता है। प्राकृत चित्रों में सूर्य, चन्द्र, वन, तालाब, नदियां सदैव मानव को गतिशीलता प्रदान करते हैं वगैर इनके एक पल भी नहीं रह सकते हैं।

---

1. कुमारसम्भव 1/17
2. कुमारसम्भव 1/18
3. कुमारसम्भव 1/26

* * * * *
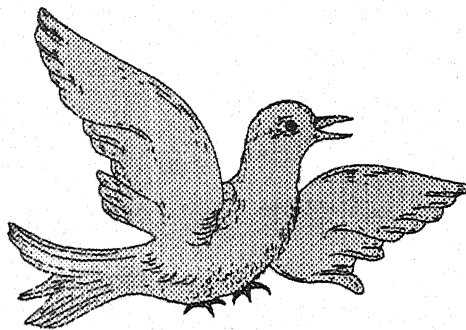
उपसंहार

उपसंहार

संस्कृत साहित्य की धारा वैदिक युग से लेकर आज तक अविभाज्य रूप से प्रवाहित होती आयी है। परिस्थितियों की विलक्षणता के कारण इनकी गति में कभी मन्दता, तो कभी तीव्रता देखने को मिलती है। इनके विपुल भण्डार में समस्त शाखाओं के ग्रन्थ रत्न भरे पड़े हैं। प्रत्येक कृति में प्रकृति ने अपनी अलौकिकता संजोई है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शिशुपालबधम् और किरातार्जुनीयम् के प्राकृतिक चित्रणों का समीक्षात्मक अध्ययन अभीष्ट है। मानव की साहित्यिक संवेदना जल बिन मीन सदृश है। वर्तमान समय में प्राकृतिक चित्रणों का संरक्षण करना नीतान्त आवश्यक है। क्योंकि इसके अभाव में तरह–तरह की बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं। ऐसे में संस्कृत साहित्य की महती आवश्यकता महसूस होती है। क्योंकि भारतीय संस्कृति का प्राण आध्यात्मिक भावना है। इसकी सुन्दर झांकी संस्कृत साहित्य में दिखायी देती है। यह भावना त्याग से अनुप्राणित तपस्या से पोषित तथा तपोवन से संबंधित है। यह बरबस ही सहृदयों के हृदय को खींचता है। बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, माघ, वाण तथा दण्डी आदि विद्वान, पाठकों की हृदयकली को विकसित करने वाले मनोरम काव्य की रचना के कारण जितने मान्य है, उतने ही वे भारतीय संस्कृति एवं प्रकृति के विशुद्ध रूप के चित्रण करने के कारण आदरणीय हैं। संस्कृत भाषा का कवि संकीर्ण विचारों का व्यक्ति नहीं था, जो परिमिति विचारों की परिधि में अपना जीवन व्यतीत करता था। वह प्रकृति के विशुद्ध वातावरण में विचरण करता था। उसका संदेश आज भी प्रासंगिक एवं उपादेय है। क्योंकि व्यापक है, उदात्त है, सत्यं शिवं सुन्दरं का वाहक है। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, पर आधारित है।

"द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्तिः रायः शान्तिरौषधायः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः विश्वदेवाः शान्तिः ब्रह्मः शान्तिः सर्वशान्तिः शान्तिदेवः शान्तिः सामाशान्तिः।" ऐसी कामना करता है।

वह जड़ चेतन की एकात्मकता का संयोजक है। संस्कृत साहित्य की हजारों–हजार वर्ष की यह सुदीर्घ परम्परा रही है पर उनकी मूल भावना एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण भोग से योग मुख्य रही है। महात्रऋषि तपस्या के बल पर पूरे संसार का अवलोकन करते हैं। वह सब प्रवृत्ति के ही कारण तपस्या में प्रवीण होते हैं। नदियों, वनों, तालाबों, जंगलों, वृक्षों, पर्वतों को संरक्षित रख मानव जीवन को सफल एवं सार्थक सिद्ध कर सकते हैं। संस्कृत साहित्य के कथानक एवं शिशुपाल वधम् और किरातार्जुनीयम् के प्राकृतिक चित्रण यही सन्देश देते हैं कि सब के सुख के लिए कल्याण के लिए, आरोग्य के लिए, शान्ति के लिए, प्राकृत चित्रणों को सुरक्षित रखना चाहिए।

कर्म का उद्देश्य स्व की अपेक्षा 'पर' होना चाहिए। हिमालय वर्णन और संस्कृत साहित्य, यज्ञों, पंचमहायज्ञों, ध्वनों एवं आराधनाओं द्वारा इसकी पूर्ति की प्रेरणा देता है, ताकि प्राकृतिकचित्रणों के माध्यम से विश्व को सार्वभौमिक सुखसमृद्धि एवं शान्ति उपलब्ध हो सके। इसी दिशा में यह शोध प्रबन्ध एक कदम है।

<u>हरिः ओम् तत्सत्</u>

* * * * *

सहायक ग्रन्थ सूची

क्रम	रचना	रचनाकार	व्याख्या (टीका)	व्याख्याकार (टीकाकार)	प्रकाशक	प्रकाशन वर्ष
1.	किरातार्जुनीयम्	भारवि	प्रकाशन टीका	आदित्य नारायण पाण्डेय	चौखम्बा सं0 सीरीज ऑफिस वाराणसी	1967 ई0
2.	शिशुपाल वधम्	माघ	मणिप्रभा	पं0 हरगोविन्द्र शास्त्री	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	1970 ई0
3.	सं0 सा0 का इति0	पं0 बल्देव उपाध्याय			शारदा निकेतन वाराणसी	2001 ई0
4.	सं0 दिग्दर्शिका	चित्रा त्रिपाठी			चौखम्बा प्रकाशन	2003 ई0
5.	शिशुपालवधम्	माघ		डॉ0 देवनारायण मिश्र	साहित्य प्रकाशन	2001 ई0
6.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास		डा0 बाबूराम त्रिपाठी	रतन प्रकाशन मंदिर	1992 ई0
7.	किरातार्जुनीयम्	भारवि		डा0 के0के0 त्रिपाठी / डॉ0 योगमाया	अनुसंधान प्रकाशन	1991 ई0
8.	सं0 सा0 का स0 इति0	डॉ0 कपिल देव द्विवेदी			राम नारायण लाल प्रकाशन	1999 ई0

					प्रकाशन	
10.	रसगंगाधर	पं0 जगन्नाथ	चन्द्रिका	पं0 मदन मोहन झॉ	चौखम्बा विद्याभवन	2001 ई0
11.	संस्कृत आलोचना	पं0 बल्देव उपाध्याय			उ0प्र0 हिन्दी संस्थान	1991 ई0
12.	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन		डॉ0 कृष्ण कुमार	साहित्य प्रकाशन	2000 ई0
13.	वक्रोक्तिजीवितम्	कुन्तक	सुधा	श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय	चौखम्बा प्रकाशन	2001 ई0
14.	साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	वटुतोषिणी	राजेन्द्र मिश्र	अक्षयवट प्रकाशन	2001 ई0
15.	महाभाष्य	पतंजलि	प्रदीप (भावबोधिनी)	डॉ0 जयशंकर लाल त्रिपाठी	कृष्णदास प्रकाशन	1989 ई0
16.	रघुवंश	कालिदास	चन्द्रकला	डॉ0 कृष्ण मणि त्रिपाठी	चौखम्बा प्रकाशन	1979 ई0
17.	सं0 हिन्दी कोष	वामन शिवराम आप्टे			ज्योतिष प्रकाशन	2001 ई0

19.	काव्य प्रकाशन	मम्मट		विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि	ज्ञानमण्डल प्रकाशन	1998 ई0
20.	ईशादिनौउपनिषद			हरिकृष्ण गोयन्दका	गीता प्रेस	1983 ई0
21.	नीतिशतकम्	भर्तृहरि		तारिणीश झा	रामनारायण लाल	2001 ई0
22.	काव्यमीमांसा	राजशेखर		पं0 मधुसूदन मिश्र	चौखम्बा सीरीज	1968 ई0
23.	कुमारसम्भवम्	कालिदास		पं0 जगदीश लाल शास्त्री		
24.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास		डॉ0 शेषमणि त्रिपाठी		
25.	किरातुर्जुनीयम्	भारवि		आदित्य नारायण पाण्डेय		
26.	वेद चयनम्			विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी	वि0 वि0 प्रकाशन	1984 ई0
27.	प्रतापरुद्रीय	विश्वनाथ	रत्नार्पण			
28.	काव्यलंकार	भामह				
29.	विक्रमांकदेव चरितम्	विल्हण				

31.	काव्यादर्श	दण्डी				
32.	लोचन टीका	अभिनवगुप्त				
33.	चित्रमीमांसा	अप्पयदीक्षित				
34.	वाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि				
35.	पाणिनीय अष्टाध्यायी	पाणिनि				
36.	अग्निपुराण	व्यास				
37.	काव्यलंकार	रुद्रट				
38.	व्यक्ति विवेक	महिम भट्ट				
39.	सरस्वती कण्ठाभरण	भोजदेव				
40.	श्रृंगार प्रकाशन	भोजदेव				
41.	औचित्यविचार चर्चा	क्षेमेन्द्र				
42.	कविकण्ठाभरण	क्षेमेन्द्र				
43..	प्रतापरुद्रीय	विश्वनाथ				
44.	काव्यानुशासन	वाग्भट्ट				

46.	वाग्भट्टालकार	वाग्भट्ट				
47.	काव्यनुशासनम्	हेमचन्द्र				
48.	चन्द्रालोक	जयदेव				
49.	अलंकारशेखर	केशवमिश्र				
50.	साहित्यसारम्	अच्युतराज				
51.	साहित्यरत्नाकर	धर्मसूरि				
52.	अलंकार चन्द्रिका	न्यायवागीश				
53.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि				
54.	विष्णुपुराण	पराशर				
55.	यजुर्वेद					
56.	महाभारत	ब्यास				
57.	प्राचीन भारत में गंगा	अनिल कुमार श्रीवास्तव				
58.	वैदिक कोष	सूर्यकान्त				

	हिस्ट्री					
60.	एन्सियण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइन्ड बाई मैगस्थनीज एण्ड एरियन	जे डब्लू मैक्रिन्डल				
61.	इण्डियन एज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म	विमल चरण लाहा				
62.	अन्य शोध ग्रन्थ तथा पत्र एवं पत्रिकायें					